गीतावली

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत

(हिन्दी-अनुवादसहित)

अनुवादक—

मुनिलाल

Gita wali

श्रीरामाय नमः

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत

गीतावली

Tulsi das goswami

(हिन्दी-अनुवादसहित)

अनुवाद

मुनिलाल
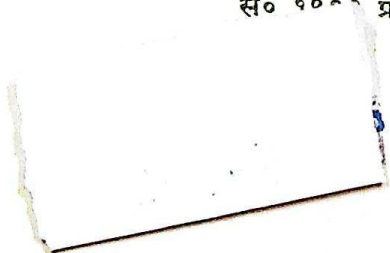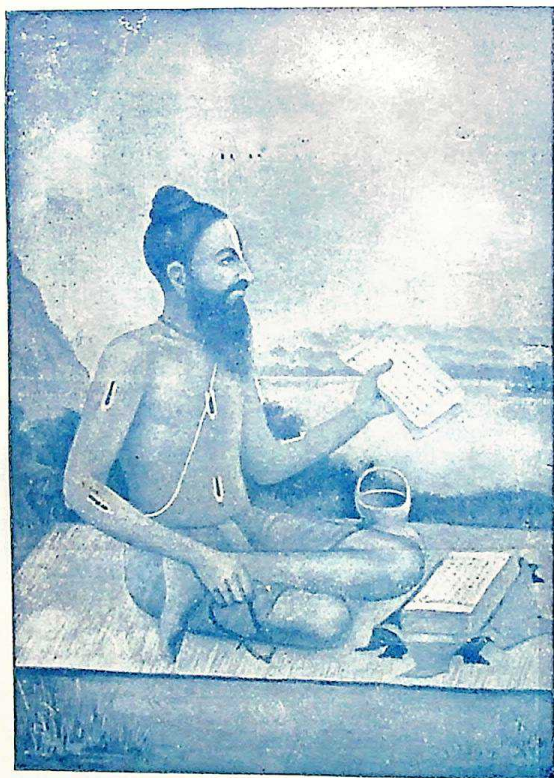
गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज

श्रीराम

श्रीरघुनाथ-कथामृत-पोसित

काव्यकला रति-सी छबि छाई ।

ताहि अनेकन भूषन भूषि

बरी तुलसी अति ही हरसाई ॥

जोवत सो जुग जोरी खरी

हुलसी हुलसी अति मोद उछाई ।

सो हुलसीके हियेको हुलास

हरै हमरे जियकी जडताई ॥

—अनुवादक
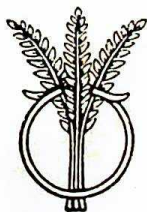
श्रीहरिः

दो शब्द

कविचक्रचूडामणि गोसाईं श्रीतुलसीदासजीके ग्रन्थोंमें कलेवरकी दृष्टिसे रामचरितमानसके पश्चात् दूसरा नम्बर गीतावलीका ही है। इसमें सम्पूर्ण रामचरित पदोंमें वर्णन किया गया है। परन्तु रामायणकी अपेक्षा इसकी वर्णन-शैली कुछ दूसरे ही ढंगकी है। रामायण महाकाव्य है, उसमें सभी रसोंका साङ्गोपाङ्ग दिग्दर्शन कराया गया है; वहाँ कविहृदयके सभी भावोंका गम्भीर विश्लेषण देखनेमें आता है। परन्तु गीतावलीमें आरम्भसे लेकर अन्तपर्यन्त कविका एक ही भाव दिखायी देता है; वह कथानकके क्रमकी अपेक्षा न करके अपने इष्टदेवकी मधुर झाँकी करनेमें ही संलग्न है। गीतावलीमें उसका ललित भाव ही व्यक्त हुआ है। जहाँ-जहाँ भगवान्के रूपमाधुर्य अथवा करुणारसके आस्वादनका अवसर मिला है वहाँ-वहाँ तो वे मध्याह्नकालीन सूर्यकी तरह मन्दगतिसे चलते हैं; इसके विपरीत जहाँ अन्य विषय है उसकी ओर दृष्टिपाततक नहीं करते। यहाँतक कि अन्य युद्धोंकी तो बात ही क्या, रावणवधका भी उन्होंने जिक्र नहीं किया; परशुरामजीके विषयमें 'भंज्यौ भृगुपति-गरब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥' (बाल० ९०) केवल इतना ही कहा है, किष्किन्धाकाण्ड केवल दो पदोंमें ही समाप्त हो जाता है, लंकादहनका भी हनुमान्जीने सीताजीसे विदा होते समय केवल जिक्र ही किया है, तथा लंकाकाण्ड, जो अन्य रामायणोंमें बहुत विस्तृत मिलता है, यहाँ अरण्य और किष्किन्धाको छोड़कर और सबसे छोटा है।

इसके विपरीत भगवान्की बाललीला, भरतमिलाप, जटायुउद्धार, विभीषणशरणागति, सीताजीकी वियोगव्यथा, रामहिंडोला तथा

होली आदि सुललित और करुण भावोंका बड़ा ही विशद और मर्म-स्पर्शी वर्णन मिलता है। बालकाण्डके आरम्भमें भगवान्के बालरूपका, अन्तमें जनकपुरकी स्त्रियोंद्वारा उनकी किशोर मूर्तिका, अयोध्याकाण्डमें ग्रामीण स्त्रियोंद्वारा प्रभुके तापसवेषका तथा उत्तरकाण्डमें उनके राजवेषका बड़ा ही अनूठा नख-शिख कहा गया है। परन्तु इतना होनेपर भी गोसाईंजीने अपना मर्यादा-रक्षणका स्वभाव कहीं नहीं छोड़ा। छोड़ते कैसे ? यह कोई कवि-कल्पनामात्र तो है नहीं; यह तो उनका प्रत्यक्ष अनुभव है। उनके प्रत्येक पदमें उनके परम पुनीत दास्यभावकी छाप लगी हुई है।

इस प्रकार यह ग्रन्थरत्न भक्तिरसज्ञ और साहित्यमर्मज्ञ दोनोंहीका धन है। इन पंक्तियोंके लेखकमें तो इनमेंसे किसी भी सम्पत्तिका लेशमात्र भी नहीं है। श्रद्धेय मित्रवर पं० श्रीलालजी याज्ञिकके मुखसे भरतमिलाप और जटायुउद्धार-सम्बन्धी कुछ पद सुनकर इसके हृदयमें इस ग्रन्थके अनुवादका मूक संकल्प हो गया, और यह उसका सुयोग देखने लगा। भगवान्की असीम कृपासे आज वह संकल्प पूरा हो गया। यह उन लीलामयकी ही लीला है कि मुझ-जैसे विद्या-भक्ति-विवेकहीन व्यक्तिको, इच्छा न रहते हुए भी, इस धन्धेमें जोड़ रखा है। जो हो, 'राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है।'

अबतक इस ग्रन्थके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सरस्वतीभण्डार, पटनाद्वारा प्रकाशित पाण्डेय श्रीरामावतार शर्माकी प्रति बी० ए० परीक्षाकी पाठ्यपुस्तकोंमें स्वीकृत है। उसके अनुसार इसके बालकाण्डमें १०८, अयोध्याकाण्डमें ८९, अरण्यकाण्डमें १७, किष्किन्धाकाण्डमें २, सुन्दरकाण्डमें ५१, लंकाकाण्डमें २३ और उत्तरकाण्डमें ३८—इस प्रकार कुल ३२८ पद हैं। यही क्रम नागरी-प्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित तुलसीग्रन्थावलीकी प्रतिमें तथा

श्रीरामनारायण बुकसेलरद्वारा प्रकाशित श्रीवामदेवजीकी टीकामें भी है। परन्तु नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊकी श्रीबैजनाथजीकी टीकावाली और खड्गविलास-प्रेसकी महात्मा हरिहरप्रसादकृत टीकावाली प्रतियोंके बालकाण्डकी पदसंख्या इससे भिन्न है। पद तो सभी प्रतियोंमें एक-से ही हैं, अन्तर केवल उनकी गणनामें है। प्रस्तुत पुस्तकके बालकाण्डमें जो १२ से लेकर १५ वें तक चार पद हैं उन्हें पहली तीन प्रतियोंमें एक माना है तथा ३७ वें पदको दो माना है। हमें उनका मत ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि पुस्तकके सभी पदोंमें यह क्रम रहा है कि प्रत्येक पदके अन्तिम चरणमें गोसाईंजीका नाम रहता है। इस न्यायसे खड्गविलास और नवलकिशोर प्रेसोंकी प्रतियोंका ही पद-विभाग उचित जान पड़ता है और हमने भी उसे ही स्वीकृत किया है। इसलिये इस संस्करणके बालकाण्डकी पदसंख्या ११० है और समस्त पद ३३० हैं।

प्रस्तुत पुस्तकके पाठ-संशोधन और अनुवादमें उपर्युक्त सब प्रतियोंसे सहायता ली गयी है। तथा इनके सिवा पूज्यपाद श्री-जयरामदासजी दीन (रामायणी) और श्रद्धेय गोस्वामी श्रीचिम्मन-लालजी एम० ए० शास्त्रीने भी इस अनुवादकी आद्योपान्त आवृत्ति करके मूल पाठ और अनुवादमें जहाँ-तहाँ संशोधन करनेकी कृपा की है। इसके लिये मैं उपर्युक्त सभी महानुभावोंका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आशा है, इन सबकी इस प्रसादीके द्वारा पाठकोंका कुछ मनोरञ्जन हो सकेगा।

विनीत–

मुनिलाल

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

श्रीहरिः

वर्णानुक्रमणिका

पद-सूचना — पृष्ठ-संख्या

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

बालकाण्ड

बधाई

राग आसावरी

[१]

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई॥ १॥
अति पुनीत मधुमास, लगन-ग्रह-बार-जोग-समुदाई।
हरषवंत चर-अचर, भूमिसुर-तनरुह पुलक जनाई॥ २॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि, नभ दुंदुभी बजाई।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई॥ ३॥
सुनि दसरथ सुत जनम लिए सब गुरुजन बिप्र बोलाई।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई॥ ४॥

सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई॥५॥
मनि-तोरन, बहु केतु-पताकनि पुरी रुचिर करि छाई।
मागध-सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई॥६॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई।
गावहिं देहिं असीस मुदित, चिर जिवौ तनय सुखदाई॥७॥
बीथिन्ह कुंकुम-कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई॥८॥
अमित धेनु-गज-तुरग-बसन-मनि, जातरूप अधिकाई।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई॥९॥
सुखी भए सुर-संत-भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई।
सबै सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई॥१०॥
जा सुखसिंधु-सकृत-सीकर तें सिव बिरंचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि, कौन जतन कहौं गाई॥११॥
जे रघुबीर-चरन-चिंतक, तिन्हकी गति प्रगट दिखाई।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई॥१२॥

आज बड़ा मङ्गलमय दिन है, आजकी शुभ घड़ी बड़ी सुहावनी है। आज रूप, शील और गुणके आगर भगवान् राम महाराज दशरथके भवनमें प्रकट हुए हैं॥१॥ अति पवित्र चैत्र मास है तथा लग्न, ग्रह, बार और योग, इन सबका समुदाय भी परम पावन है। चराचर प्राणी बड़े हर्षयुक्त हैं तथा ब्राह्मणोंके शरीरोंमें रोमाञ्च हो रहा है॥२॥ देववृन्द आकाशमें दुन्दुभी बजाते हुए पुष्पोंकी झड़ी लगा रहे हैं तथा कौसल्या आदि

माताओंका मन बड़ा ही हर्षित हो रहा है। हमसे इस सुखका वर्णन नहीं हो पाता ॥ ३ ॥ दशरथजीने पुत्रका जन्म हुआ सुन समस्त गुरुजन और विप्रवृन्दको बुला लिया है और बड़ी पवित्रतासे सम्पूर्ण वेद-विहित क्रियाएँ की हैं । इस समय उनके हृदयमें आनन्द समाता नहीं ॥ ४ ॥ महलमें ब्राह्मण लोग सुमधुर वेदध्वनि कर रहे हैं तथा तरह-तरहकी बधाइयाँ बज रही हैं। पुरवासियोंने भी अपने परम प्रिय नाथके लिये अपनी-अपनी सम्पत्ति लुटानी आरम्भ कर दी है ॥ ५ ॥ मणियोंकी तोरण और बहुत-सी ध्वजा-पताकाओंसे पुरीको बड़ी सुन्दरतासे छा दिया है । द्वारपर जहाँ-तहाँ मागध, सूत और बन्दीजन बड़ाई कर रहे हैं ॥ ६ ॥ पुरनारियाँ अपना स्वाभाविक शृङ्गार किये तरह-तरहकी मङ्गलसामग्री लिये चली आ रही हैं। वे गाती हैं और प्रसन्न चित्तसे आशीर्वाद देती हैं कि यह सुखदायक बालक चिरजीवी हो ॥ ७ ॥ गलियोंमें केसरकी कीच मच रही है तथा अरगजा, अगर और अबीर उड़ रहा है । पुरके नर-नारी प्रेममें भरकर नाच रहे हैं और उन्होंने अपने शरीरकी सुध भी भुला दी है ॥ ८ ॥ महाराज दशरथ बहुत-से वस्त्र, हाथी, घोड़े, गौ, मणि और सुवर्ण आदिमेंसे जिसके लिये जो चीज़ उचित है उसे वही दान कर रहे हैं। इस समय सारी सिद्धियाँ उनके घर आ गयी हैं ॥ ९ ॥ इस समय देवता, साधुजन और ब्राह्मण तो प्रसन्न हो रहे हैं किन्तु दुष्टोंका मन मलिन है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर सभी पुष्प खिल जाते हैं, किन्तु कुमुदवन सम्पुटित हो जाता है ॥ १० ॥ जिस आनन्दसमुद्रकी एक बूँदसे ही शिवजी और ब्रह्माजीकी जगत्में बड़ाई है वही सुखसागर इस समय अवधपुरीमें दशों दिशाओंमें उमड़ रहा है। उसका वर्णन मैं किस

प्रकार गाकर कहूँ ? ॥ ११ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हैं यहाँ उनकी गति स्पष्ट दीख रही है । हे प्रभो ! तुलसी-दासने भी आपकी अविरल, अमल और अनुपम सुदृढ़ भक्ति प्राप्त की है ॥ १२ ॥

राग जैतश्री

[२]

सहेली सुनु सोहिलो रे !

सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ॥

पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल-राज ॥ १ ॥

चैत चारु नौमी तिथि सितपख, मध्य-गगन-गत भानु ।

नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल-मोद-निधानु ॥ २ ॥

ब्योम, पवन, पावक, जल, थल, दिसि दसहु सुमंगल-मूल ।

सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं फूल ॥ ३ ॥

भूपति-सदन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे निसान ।

जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान ॥ ४ ॥

सींचि सुगंध रचैं चौकें गृह-आँगन गली-बजार ।

दल फल फूल दूब दधि रोचन, घर घर मंगलचार ॥ ५ ॥

सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत ।

लिए बोलि गुर-सचिव-भूमिसुर, प्रमुदित चले निकेत ॥ ६ ॥

जातकरम करि, पूजि पितर-सुर, दिए महिदेवन दान ।

तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान ॥ ७ ॥

आनँद महँ आनंद अवध, आनंद बधावन होइ।
उपमा कहौं चारि फलकी, मोहिं भलो न कहै कबि कोइ॥ ८॥
सजि आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि॥ ९॥
असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु बिषाद।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि प्रसाद॥१०॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन रायकी, नाचहिं राजदुवार॥११॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन सबनि सँवारे साज।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज॥१२॥
घंटा-घंटि, परवाउज-आउज, झाँझ, बेनु, डफ-तार।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन-झनकार॥१३॥
नृत्य करहिं नट-नटी, नारि-नर अपने अपने रंग।
मनहुँ मदन-रति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग॥१४॥
उघटहिं छंद-प्रबंध, गीत-पद, राग-तान-बंधान।
सुनि किंनर गंधरब सराहत, बिथके हैं बिबुध-बिमान॥१५॥
कुंकुम-अगर-अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल-अबीर।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर॥१६॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुर-गुर-आसिरबाद।
दसरथ-सुकृत-सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद॥१७॥
ब्राह्मण बेद, बंदि बिरदावलि, जय-धुनि, मंगल-गान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥१८॥

बारहिं मुकुता-रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि-जव-धान ॥१९॥
कीन्हि बेदबिधि-लोकरीति नृप, मंदिर परम हुलास।
कौसल्या, कैकयी, सुमित्रा, रहस-बिबस रनिवास ॥२०॥
रानिन दिए बसन-मनि-भूषन, राजा सहन-भँडार।
मागध-सूत-भाट-नट-जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥२१॥
बिप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन-पुरजन पहिराइ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस-रमेस मनाइ ॥२२॥
अष्टसिद्धि-नवनिद्धि, भूति सब भूपति भवन कमाहिं।
समउ-समाज राज दसरथको लोकप सकल सिहाहिं ॥२३॥
को कहि सकै अवधबासिनको प्रेम-प्रमोद-उछाह।
सारद-सेस-गनेस-गिरीसहिं अगम निगम अवगाह ॥२४॥
सिव-बिरंचि-मुनि-सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूप के भाग।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ॥२५॥

अरी सखी! सोहिला (बधाईके गीत) तो सुन। अहा! आज सारे जगत्में सोहिला-ही-सोहिला हो रहा है। आज कौसल्याने एक सपूत बालकको जन्म दिया है, जिससे उसका कुल और राज अविचल हो गया है ॥१॥ आज चैत्र शुक्ला नवमी तिथि है, सूर्यदेव मध्य आकाशमें प्रकाशमान हो रहे हैं, आजके शुभ दिनमें नक्षत्र, योग, ग्रह और लग्न सभी अच्छे हैं और आजका दिन मङ्गल और मोदका घर है ॥२॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और दशों दिशाएँ मङ्गलमूल हो रही हैं तथा सुरगण दुन्दुभी बजाकर गाते और प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करते

हैं ॥३॥ महाराज दशरथके घर सोहिला होता सुन सब ओर नक्कारोंकी गंभीर ध्वनि होने लगी है तथा जहाँ-तहाँ कलश, ध्वजा, चँवर, तोरण, पताका और मण्डप सजाये जा रहे हैं ॥ ४ ॥ घर, आँगन, गली और बाजारोंको सुगन्धित जलसे सींचकर उनमें चौक पूरे जा रहे हैं, तथा घर-घरमें पत्र, पुष्प, फल, दूब, दही और गोरोचन आदि सामग्रियोंसे मङ्गलाचार हो रहा है ॥ ५ ॥ पुत्रजन्मका समाचार सुन महाराज दशरथ सम्पूर्ण राजदरबारके सहित उठ खड़े हुए और गुरु, मन्त्री एवं ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक महलकी ओर चल दिये ॥ ६ ॥ वहाँ पुत्रका जातकर्म-संस्कार कर पितृगण और देवताओं-की पूजा की तथा ब्राह्मणोंको दान दिया। इसी समय उनके मङ्गल, आनन्द और कल्याणस्वरूप तीन पुत्र और उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ आज अयोध्यामें आनन्दमें आनन्द हो गया और चारों तरफ आनन्दका ही बधावा हो रहा है; यदि मैं उन्हें [अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप] चार फलोंकी उपमा दूँ तो मुझे कोई कवि भला नहीं कहेगा। [कारण कि चारों फलोंमें सर्वश्रेष्ठ मोक्ष है, तो यदि पहले किसीको मोक्ष मिल जाय तो अर्थादि तीनों फलोंकी पीछे प्राप्ति उसे आवश्यक नहीं होगी। इसी प्रकार यहाँ मोक्ष-स्वरूप श्रीरामजीका जन्म प्रथम ही हो चुका है। यदि अर्थ, धर्म, पहले संग रहें, काम, मोक्ष पीछे प्राप्त हों तो क्रम ठीक होगा। जैसे कि शत्रुघ्न, भरत राजाके साथ अयोध्यासे मिथिला बरातमें गये और लक्ष्मण, श्रीरामजी वहाँ मिले तब वहाँ चारों फलकी उपमा देना बन गया है। 'नृप समीप सोहैं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी ॥' तथा—'जनु पाये महिपालमनि, क्रियनसहित फल चारि ॥' इत्यादि तब कहा गया है]॥ ८॥ झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ विचित्र थालोंमें

आरती सजाकर अपने-अपने कुलके अनुसार बधावा लेकर गाती हुई चलीं ॥ ९ ॥ [और बालकको ऐसा आशीर्वाद देने लगीं कि] इन बालकोंकी उन्नतिको सहन न करनेवाले तथा इनसे द्वेष माननेवाले लोग मन-ही-मन मर जायँ और इनके वैरियोंके विषादकी वृद्धि हो तथा श्रीशङ्कर और पार्वतीजीकी कृपासे ये चारों ही सुन्दर राजकुमार दीर्घ-जीवी हों ॥ १० ॥ प्रजाजन प्रसन्न हो भाँति-भाँतिके उपहारोंके भार लेकर चले और राजभवनके द्वारपर आकर महाराजकी दुहाई देते हुए नाचने और गाने लगे ॥ ११ ॥ हाथी, रथ और घुड़सवार सेनाने अपने-अपने वाहन और साजोंको सजाया, मानो इस समय रतिराज (कामदेव) और ऋतुराज (वसन्त) अपने समाजसहित कोसलपुरमें विहार कर रहे हैं ॥ १२ ॥ घण्टा, घण्टी और पखावजों तथा तासोंका शब्द हो रहा है, झाँझ, बाँसुरी, डफ और करताल बज रही है तथा नूपुर, और मँजीरोंकी मनोहर ध्वनि और हाथोंके कङ्कणोंकी झनकार हो रही है ॥ १३ ॥ नट-नटी, नर-नारी अपने-अपने रंगमें भरकर नृत्य कर रहे हैं, मानो कामदेव और रति तरह-तरहके रूप धारणकर किसी सुन्दर देशमें सुन्दर ढंगसे नाच रहे हों ॥ १४ ॥ नाना प्रकारके छन्द, प्रबन्ध, गीत, पद, राग और तानके समूहका उद्घाटन हो रहा है, जिसे सुनकर गन्धर्व और किन्नरगण प्रशंसा कर रहे हैं तथा देवताओंके विमान भी थकित हो रहे हैं ॥ १५ ॥ केसर और अगरका अरगजा छिड़कते हुए गुलाल और अबीर लगाते हैं, आकाशसे फूलोंकी झड़ी लगी हुई है तथा नगरमें बड़ा कोलाहल और सुन्दर भीड़ हो रही है ॥ १६ ॥ महाराज दशरथको गुरु और देवताओंके आशीर्वादसे वृद्धावस्थामें विधाता अनुकूल हुआ है। इस समय दशरथजीके सम्पूर्ण सुकृतरूप अमृतसमुद्र

अपनी मर्यादा छोड़कर उमड़ आये हैं॥ १७॥ ब्राह्मण लोग वेदध्वनि, तथा बन्दी लोग विरदावली, जयघोष और मङ्गलगान कर रहे हैं। अतः कामकाजी लोग बाहर-भीतर आते-जाते समय [कोलाहलके कारण एक-दूसरेका शब्द न सुन सकनेसे] आपसमें कानसे लगकर बातचीत करते हैं ॥१८॥ राजमहिषी और नगरकी नारियाँ समानभावसे मोती और रत्न आदि निछावर कर रही हैं। सारे नगरमें निछावर किये हुए मणिगण मानो ज्वार, जौ और धानके समान बिखरे हुए पड़े हैं ॥१९॥ महाराजने परम आनन्दित होकर राजभवनमें सब प्रकार-की वैदिक और लौकिक रीति की है। इस समय कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि सभी रनिवास अति हर्षित हो रहा है ॥२०॥ रानियोंने वस्त्र, मणि और आभूषणादि दिये हैं तथा राजाने [रुपया, अशरफी आदि] बाहरी कोष दान किया है। उन्हें लेकर मागध, सूत, भाट, नट और याचक लोग आपसमें जहाँ-तहाँ लेन-देन कर रहे हैं॥२१॥ महाराजने विप्रवधू सुवासिनियों (पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता लड़कियों) का सम्मान कर अपने आश्रित और पुरवासियोंको वस्त्रादि पहनाकर सम्मानित किया है। अतः वे सब लोग महादेव और विष्णुभगवान्‌को मनाते हुए उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं ॥२२॥ इस समय आठों सिद्धियाँ, नवों निधियाँ और सब प्रकारकी विभूतियाँ महाराजके महलमें टहल कर रही हैं। महाराज दशरथके इस समय और समाज-को देखकर सभी लोकपालगण सिहा रहे हैं॥ २३॥ अवधवासियों-के इस समयके प्रेम, प्रमोद और उत्साहका वर्णन कौन कर सकता है? वह शारदा, शेष, गणेश और भगवान् शङ्करकी भी पहुँचके बाहर है और वेद भी उसका पार नहीं पा सकते ॥२४॥ महाराज दशरथके

सौभाग्यकी शिव, ब्रह्मा, मुनि और सिद्धगण भी प्रशंसा कर रहे हैं। इस समय तुलसीदास भी प्रेमसे उमँग-उमँगकर प्रभुका सोहिला गा रहा है ॥ २५ ॥

राग बिलावल

[३]

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृपके सुत चारि भए।
सदन-सदन सोहिलो सोहावनो, नभ अरु नगर निसान हए ॥ १ ॥
सजि-सजि जान अमर-किंनर-मुनि जानि समय सम गान ठए।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन, पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए ॥ २ ॥
अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गए।
जातकरम करि कनक, बसन, मनिभूषित सुरभि समूह दए ॥ ३ ॥
दल-फल-फूल, दूब-दधि-रोचन, जुवतिन्ह भरि भरि थार लए।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए ॥ ४ ॥
कनक-कलस, चामर-पताक-धुज, जहँ तहँ बंदनवार नए।
भरहिं अबीर, अरगजा छिरकहिं, सकल लोक एक रंग रए ॥ ५ ॥
उमगि चल्यौ आनंद लोक तिहु, देत सबनि मंदिर रितए।
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ॥ ६ ॥

महाराज दशरथके चार पुत्र हुए सुनकर आज कोसलपुरमें अत्यन्त मङ्गल हो रहा है। घर-घरमें सुहावना सोहिला हो रहा है तथा आकाश और नगरमें नगाड़े बजाये जा रहे हैं ॥१॥ देवता, किन्नर और मुनिजन अपने-अपने यान सजाकर आये हैं तथा गन्धर्वोंने समय जानकर एक साथ गाना आरम्भ कर दिया है। आकाशमें अप्सराएँ प्रसन्नचित्त-

से नृत्य कर रही हैं और बारंबार सुमनसमूह बरसाती हैं ॥ २ ॥ महाराज परम आनन्दसे गुरुजी तथा अन्य ब्राह्मणोंको बुलाकर [उन्हें अपने साथ ले] महलके भीतर गये और बालकोंका जातकर्म संस्कार कर उन्हें सुवर्ण, वस्त्र, मणि और सजी हुई गौओंके समूह दान किये ॥ ३ ॥ युवतियोंने थाल भर-भरकर पत्र, गोरोचन, नारियल आदि माङ्गलिक फल, फूल, दूब और दही लिया और गान करती हुई राजमन्दिरकी ओर चलीं, इससे गलियोंमें भीड़ हो गयी है । तथा वन्दीजन महाराजके वंशका अनोखा यश गा रहे हैं ॥ ४ ॥ जहाँ-तहाँ सुवर्णमय कलश, चँवर, पताका, ध्वजा और नयी-नयी बन्दनवारें बाँधी गयी हैं । सभी लोग एक ही रंगमें रँगकर परस्पर अबीर उड़ाते और अरगजा छिड़कते हैं ॥ ५ ॥ तीनों लोकोंमें आनन्द उमड़ चला है तथा सभी लोग [निछावर कर-करके] अपने घरोंको खाली किये देते हैं । किन्तु, तुलसीदासजी कहते हैं कि—रघुनाथजीके कृपादृष्टिसे निहारते ही वे सब पुनः ज्यों-के-त्यों भरे हुए ही दिखायी देते हैं ॥ ६ ॥

राग जैतश्री

[४]

गावैं बिबुध बिमल बरबानी ।
भुवन कोटि कल्यान-कंद जो, जायो पूत कौसिला रानी ॥ १ ॥
मास, पाख, तिथि, बार, नखत, ग्रह, जोग, लगन सुभ ठानी ।
जल-थल-गगन प्रसंन साधु-मन, दसदिसि हिय हुलसानी ॥ २ ॥
बरषत सुमन, बधाव नगर-नभ, हरष न जात बखानी ।
ज्यों हुलास रनिवास नरेसहि, त्यों जनपद-रजधानी ॥ ३ ॥

अमर, नाग, मुनि, मनुज सपरिजन बिगतबिषाद-गलानी ।
मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंक संक अकुलानी ॥ ४ ॥
देव-पितर, गुरु-बिप्र पूजि नृप दिये दान रुचि जानी ।
मुनि-बनिता, पुरनारि, सुआसिनि सहस भाँति सनमानी ॥ ५ ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी ।
'यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होउ महेस-भवानी' ॥ ६ ॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी ।
भयो सोहिलो सोहिले मो जनु सृष्टि सोहिले-सानी ॥ ७ ॥
गावत-नाचत, मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी ।
देत-लेत, पहिरत-पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥ ८ ॥
गान-निसान-कुलाहल-कौतुक देखत दुनी सिहानी ।
हरि-बिरंचि-हर-पुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी ॥ ९ ॥
आनँद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी ।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा-रमा-ब्रह्मानी ॥१०॥
बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथको देखि न जिनहिं सोहानी ।
कीरति, कुसल, भूति, जय, ऋधि-सिधि तिन्हपर सबै कोहानी ॥११॥
छठी-बारहौं लोक-बेद-बिधि करि सुबिधान बिधानी ।
राम-लषन-रिपुदवन-भरत धरे नाम ललित गुर ग्यानी ॥१२॥
सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि घानी ।
सुख-सनेह सब दिये दसरथहि खरि खलेल थिर-थानी ॥१३॥
अनुदिन उदय-उछाह, उमग जग, घर-घर अवध कहानी ।
तुलसी राम-जनम-जस गावत सो समाज उर आनी ॥१४॥

देवता लोग अति विशुद्ध और सुन्दर वाणीमें गाते हैं—महारानी कौसल्याने जो पुत्र उत्पन्न किया है वह करोड़ों भुवनोंके कल्याणरूप वृक्षका मूल ही है ॥ १ ॥ मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रह, योग और लग्न सभी बहुत शुभ आन बने हैं। जल, थल, आकाश और साधुओंके हृदय प्रसन्न हैं तथा दशों दिशाओंमें हुलास भरा हुआ है ॥ २ ॥ पुष्पोंकी वर्षा हो रही है तथा आकाश और नगरमें बधावा हो रहा है। इस समयका हर्ष बखाना नहीं जाता। जैसा आनन्द रनिवास और महाराजको है वैसा ही सारे देश और राजधानीको भी है ॥ ३ ॥ देवता, नाग, मुनि, मनुष्य और परिजन सभी विषाद और ग्लानिसे रहित हो गये हैं तथा साथ ही रावण और राक्षसोंके सहित सम्पूर्ण लङ्कापुरी शङ्कित होकर व्याकुल हो रही है ॥ ४ ॥ महाराजने देवता, पितर, गुरु और ब्राह्मणोंका पूजनकर उनकी रुचि देख-देखकर दान दिये हैं तथा मुनिपत्नियों, पुरनारियों और सुवासिनियोंका हजारों प्रकारसे सम्मान किया है ॥ ५ ॥ याचक लोग भरपूर द्रव्य पाकर दानी हो गये हैं, वे द्वारसे निकलते हुए आशीर्वाद देते हैं कि कैकेयी और सुमित्रापर भी भगवान् शङ्कर और पार्वतीजी इसी प्रकार प्रसन्न हों ॥ ६ ॥ इसके दूसरे ही दिन वे दोनों राजरानियाँ भी [भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजीके जन्म लेनेसे] मङ्गलकी खानि हो गयीं। इस प्रकार सोहिले-परसोहिला हो रहा है। मेरी दृष्टिमें तो मानो सारी सृष्टि ही सोहिलेमें सनी हुई है ॥ ७ ॥ सब लोग नाच-गा रहे हैं; अवधमें मेरे मनको भानेवाला वह सुख अधिकाधिक हो रहा है, सम्पूर्ण प्रजा आनन्दमें अघाकर आपसमें देन-लेन और पहनना-पहनाना कर रही है ॥ ८ ॥ गान तथा दुन्दुभीघोषका कुतूहल देखकर सभी दुनियाँ प्रसन्न हो

रही है। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीकी पुरियोंकी भी सारी शोभा कोसलपुरीपर लुब्ध हो रही है ॥ ९ ॥ सब राजमहिलाएँ अति आनन्दित हैं, क्योंकि [पतिसुखसे] उनकी माँग और [पुत्रजन्मसे] कोख जुड़ा गयी है। पार्वतीजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माणी भी आशीर्वाद देती हुई आदरपूर्वक उनके भाग्यकी प्रशंसा कर रही हैं ॥ १० ॥ महाराज दशरथका बढ़ा हुआ वैभव और विलास देखकर जिन्हें अच्छा नहीं लगा उनपर कीर्ति, कुशल, वैभव और ऋद्धि-सिद्धि सभी कुपित हो गयी हैं ॥ ११ ॥ विधिवेत्ता वशिष्ठजीने लोक और वेदकी विधिसे सब विधान करते हुए बारहों छठियाँ कीं और उन ज्ञानी गुरुदेवने उन बालकोंके राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत—ये अति सुन्दर नाम रक्खे ॥ १२ ॥ इस समय विधाताने मोदरूपी तिलोंको [स्वायम्भुवमनुके] सुकृतरूप (पुत्रवासनरूप) पुष्पोंकी गन्धमें बसाकर उन्हें यत्नरूप यन्त्रमें पेरकर उनसे निकला हुआ [प्रेमानन्दरूप] फुलेल तो दशरथजीको दिया है तथा [सांसारिक सुख] खली और खलेल पृथिवी और दिक्पालोंको दी है ॥ १३ ॥ इस समय सम्पूर्ण जगत्‌में भगवान्‌के आविर्भावका उत्साह और उमंग बढ़ी हुई है तथा घर-घरमें अवधकी ही कहानी सुनायी देती है। तुलसीदास भी उस समाजको हृदयमें धारणकर रामजन्मका यश गान करता है ॥ १४ ॥

राग केदारा

[५]

घर-घर अवध बधावने मंगल-साज-समाज।
सगुन सोहावने मुदित मन कर सब निज-निज काज ॥

निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह चारु चौकैं बिधि घनी॥
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी बिधि सुमति-जननी जनु जनी॥ १॥
चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनँद आज॥
आनंद उमगत आजु, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइकै॥
नर निरखि नभ, सुर पेखि पुरछबि परसपर सचु पाइकै।
रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै॥ २॥
जागिय राम छठी सजनि रजनी रुचिर निहारि।
मंगल मोदमढ़ी मुरति नृपके बालक चारि॥
मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथमई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन-जोग बिधि संकर दई॥
तिन्हकी छठी मंजुलमठी, जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई॥ ३॥

सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिबर सिखये लौकिकौ बैदिक बिबिध बिधान॥
बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान-पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै॥
जे देव-देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै।
ते जंत्र-मंत्र सिखाइ राखत सबनिसों पहिचानिकै॥ ४॥

सकल सुआसिनि, गुरजन, पुरजन, पाहुन लोग।
बिबुध-बिलासिनि, सुर-मुनि, जाचक, जो जेहि जोग॥
जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये।
जय कहत, देत असीस, तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये॥
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे, नेवते दिये।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिये॥ ५॥
भूपति-भाग बली सुर-बर नाग सराहि सिहाहिं।
तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं॥
अनिमादि, सारद, सैलनंदिनि बाल लालहि पालहीं।
भरि जनम जे पाए न, ते परितोष उमा-रमा लहीं॥
निज लोक बिसरे लोकपति, घरकी न चरचा चालहीं।
तुलसी तपत तिहु ताप जग, जनु प्रभुछठी-छाया लही॥ ६॥

अवधमें घर-घर बधावा हो रहा है; मंगलका साज सज रहा है। सुहावने शकुन हो रहे हैं और सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने कार्यों में जुटे हुए हैं, नगरके नर और नारी अपने-अपने कार्य सँभालकर सजाते हैं और अगणित रचनाएँ करते हैं। घर, आँगन, अटारी, बाजार और गलियोंमें अनेक प्रकारसे सुन्दर चौक पूरे गये हैं। चँवर, पताका, मण्डप, तोरण, कलश और दीपावलीसे सजी हुई तथा सुख, सुकृत और शोभामयी अयोध्यापुरीको मानो विधाताने सुमतिकी जननी ही रचा है॥ १॥ आज चैत्र शुक्ला चतुर्दशीके दिन, जब कि निर्मल निशानाथ प्रकाशमान हैं और दशों दिशाओंमें तारामण्डल जगमगा रहा है, आनन्दकी बाढ़ आ रही है। आज आनन्द उमड़ रहा है। देवता लोग अनेक

विमान सजाकर गाते, बजाते, नाचते और प्रसन्न होते हैं तथा आकाशमें आ-आकर फूलोंकी वर्षा करते हैं। पुरवासी आकाशकी ओर देखकर और देवगण नगरकी शोभा निहारकर परस्पर सुखी होते हैं और जी भरकर रघुराजके राज्यकी सराहना करते तथा नेत्रोंका लाभ लूटते हैं॥ २॥ [इसी समय कोई सखी कहने लगी] अरी सखि ! जाग पड़, आज रघुनाथजीकी छठी है। आजकी मनोहर रात्रिकी छबि देख। चारों राजकुमार क्या हैं मानो मंगल और मोदकी गढ़ी हुई मूर्तियाँ ही विराज रही हैं। विधाताने चार अति मनोहर परमार्थमयी मूर्तियाँ रची हैं और उनकी पूजाके लिये दशरथजीको उपयुक्त समझ उन्हींको ब्रह्मा और शिव दोनोंने मिलकर सौंप दी हैं। महाराजके मञ्जुल भवनमें आज उन्हींकी छठी है, जिनके आनन्दसे सम्पूर्ण जगत् आनन्दित हो रहा है। इस समय रानियोंने नींदको जागरणमें परिणत कर रक्खा है और रात्रि बड़ी सुहावनी जान पड़ती है ॥ ३॥ सेवक सब समयपर सावधान हो गये हैं और सुजान सचिवगण साधनमें संलग्न हो गये हैं तथा गुरुवर वशिष्ठमुनिने सब प्रकारके लौकिक और वैदिक विधानोंका आदेश दिया है। इस समय मुनिवर समझ-बूझकर अनेक वैदिक और लौकिक विधानोंका आचरण कर रहे हैं। उन्होंने बलिदान, पूजन आदिके लिये मूलिकामणि आदि सामग्रियाँ लाकर सजा रक्खी हैं। जो लोग देवताओं और देवियोंका अपने हितके लिये हृदयसे आदरपूर्वक पूजन करते थे वे सब लोगोंको यन्त्रमन्त्रोंका प्रभाव बतलाकर उनका प्रयोग सिखाकर रखते हैं ॥४॥ सुवासिनी, गुरुजन, पुरजन, पाहुने, सुरसुन्दरियाँ, देवता, मुनि और याचक,

इन सबमें जो जिस योग्य हैं—जिनकी जैसी योग्यता है, महाराजने उन्हें वैसी ही पहरावनी देकर पूर्णकाम किया है और वे भी जयजयकार करते हुए उन्हें आशीर्वाद देते हैं तथा तुलसीदासजीके समान ही हृदयमें आनन्द मानते हैं। 'जिस प्रकार आज हुआ है उसी प्रकार कल और परसों भी जागरण होगा' ऐसा कहकर न्यौता दिया गया है। वे लोग धन्य एवं पुण्यनिधि हैं जिन्होंने उस समय आनन्दमय जीवन धारण किया था ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े देवता और नागगण भी महाराजके सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होते हैं। स्त्रीरत्नरूपसे लक्ष्मीजी और सखी-रूपसे सिद्धियाँ उनकी परिचर्या करती हैं। अणिमादि सिद्धियाँ, शारदा और पार्वतीजी उन बालकोंका लालन-पालन करती हैं। पार्वती और लक्ष्मीजीको जो सुख सारे जन्ममें नहीं मिला वह इस समय प्राप्त हुआ है*। लोकपालगण अपने लोकोंको भूल गये। वे अपने घरोंकी चर्चा भी नहीं चलाते। तुलसीदासजी कहते हैं कि तीनों तापोंसे तपे हुए लोकको मानो प्रभुकी छठीरूप छाया प्राप्त हो गयी है ॥ ६ ॥

नामकरण

राग जैतश्री

[६]

बाजत अवध गहागहे आनंद-बधाए।
नामकरन रघुबरनिके नृप सुदिन सोधाए ॥ १ ॥

---

* क्योंकि यहाँ भगवान् उन्हें बालरूपसे प्राप्त हुए हैं।

पाय रजायसु रायको ऋषिराज बोलाए ।
सिष्य-सचिव-सेवक-सखा सादर सिर नाए ॥ २ ॥
साधु सुमति समरथ सबै सानंद सिखाए ।
जल, दल, फल, मनि-मूलिका, कुलि काज लिखाए ॥ ३ ॥
गनप-गौरि-हर पूजिकै गोबृन्द दुहाए ।
घर-घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाए ॥ ४ ॥
तुरत मुदित जहँ-तहँ चले मनके भए भाए ।
सुरपति-सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए ॥ ५ ॥
गृह, आँगन, चौहट, गली, बाजार बनाए ।
कलस, चँवर, तोरन, धुजा, सुबितान तनाए ॥ ६ ॥
चित्र चारु चौकैं रचीं, लिखि नाम जनाए ।
भरि-भरि सरवर-बापिका अरगजा सनाए ॥ ७ ॥
नर-नारिन्ह पल चारिमें सब साज सजाए ।
दसरथ-पुर छबि आपनी सुरनगर लजाए ॥ ८ ॥
बिबुध बिमान बनाइकै आनंदित आए ।
हरषि सुमन बरषन लगे, गए धन जनु पाए ॥ ९ ॥
बरे बिप्र चहुँ बेदके, रबिकुल-गुर ग्यानी ।
आपु बसिष्ठ अथरबणी, महिमा जग जानी ॥१०॥
लोक-रीति बिधि बेदकी करि कह्यो सुबानी—
'सिसु-समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी' ॥११॥
सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत बड़भागीं ।
उमा-रमा, सारद-सची, लखि सुनि अनुरागीं ॥१२॥

निज-निज रुचि बेष बिरचिकै हिलि-मिलि सँग लागीं ।
तेहि अवसर तिहु लोककी सुदसा जनु जागीं ॥१३॥
चारु चौक बैठत भईं भूप-भामिनी सोहैं ।
गोद मोद-मूरति लिए, सुकृती जन जोहैं ॥१४॥
सुख-सुखमा, कौतुक-कला देखि-सुनि मुनि मोहैं ।
सो समाज कहैं बरनिकै, ऐसे कबि को हैं ? ॥१५॥
लगे पढ़न रच्छा-ऋचा ऋषिराज बिराजे ।
गगन सुमन-झरि, जयजय, बहु बाजन बाजे ॥१६॥
भए अमंगल लंकमें, संक संकट गाजे ।
भुवन चारिदसके बड़े दुख दारिद भाजे ॥१७॥
बाल बिलोकि अथरबणी हँसि हरहि जनायो ।
सुभको सुभ, मोद मोदको, 'राम' नाम सुनायो ॥१८॥
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो ।
कंद सकल आनंदको जनु अंकुर आयो ॥१९॥
जोहि, जानि, जपि, जोरिकै करपुट सिर राखे ।
'जय जय जय करुनानिधे !' सादर सुर भाषे ॥२०॥
'सत्यसंध ! साँचे सदा जे आखर आषे ।
प्रनतपाल ! पाये सही, जे फल अभिलाषे' ॥२१॥
भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी ।
बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी ॥२२॥
देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी ।
लगे देन हिय हरषिकै हेरि-हेरि हँकारी ॥२३॥

राम-निछावरि लेनको हठि होत भिखारी।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन-धारी ॥२४॥
भरत लषन रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी।
फलदायक फल चारिके दसरथ-सुत चारी ॥२५॥
भए भूप बालकनिके नाम निरुपम नीके।
सबै सोच-संकट मिटे तबतें पुर-तीके ॥२६॥
सुफल मनोरथ बिधि किये सब बिधि सबहीके।
अब होइहै गाए सुने सबके तुलसीके ॥२७॥

अवधमें गहगहे आनन्द-बधावे बज रहे हैं। महाराजने रघुश्रेष्ठ बालकोंके नामकरणकी शुभ तिथियोंका शोधन कराया ॥ १ ॥ राजा दशरथकी आज्ञा पा ऋषिराज वसिष्ठजीने शिष्य, मन्त्री, सेवक और सखाओंको बुलाया और उन्होंने आदरपूर्वक आकर सिर नवाया ॥ २ ॥ गुरुजीने उन सारे साधु, सुमति और सामर्थ्यवान् सेवकोंको शिक्षा दी और [सब तीर्थोंका] जल, [तुलसी आदि] पत्र, [आम्र, नारियल आदि] फल और मूलिका नवग्रहकी मणियाँ आदि सारी पूजोपयोगी सामग्री लिखवायीं ॥ ३ ॥ गणेशजी, पार्वती और भगवान् शङ्करका पूजन कर गौओंका दोहन कराया गया है; घर-घरमें महान् आनन्दमंगल और सुन्दर गुणगान हो रहा है ॥ ४ ॥ अपनी मनभावनी बात हो रही है—यह देखकर तुरन्त ही मनमें आनन्दित होकर जहाँ-तहाँ चल दिये, मानो इन्द्रकी आज्ञासे मेघगण पवनके साथ मिलकर दौड़ रहे हों ॥ ५ ॥ घर, आँगन, चौक, गली और बाजारोंको सजाया गया है। सर्वत्र कलश, चँवर, तोरण, ध्वजा और चँदोवे लगाये गये हैं ॥ ६ ॥ अति विचित्र और सुन्दर चौक पूरे गये हैं; उनमें नाम लिख-लिखकर यह सूचित

किया गया है कि अमुक चौक अमुकका रचा हुआ है। तथा तालाब और बावड़ियोंको भर-भरकर उनमें अरगजा साना गया है ॥ ७ ॥ स्त्री-पुरुषोंने चार ही पलमें सारे साज सजा लिये हैं। इस समय दशरथपुरीने अपनी छबिसे देवलोकको भी लज्जित कर दिया है ॥ ८ ॥ देवता लोग अपने-अपने विमान सजाकर आनन्दपूर्वक आये हैं और अति हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे हैं, मानो उन्हें गया हुआ धन फिर मिल गया हो ॥ ९ ॥ वेदपाठके लिये चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण वरण किये गये हैं। उनमें अथर्ववेदी तो स्वयं रघुकुलगुरु ज्ञाननिष्ठ वसिष्ठजी ही हैं, जिनकी महिमा सारा जगत् जानता है ॥ १० ॥ उन्होंने लोकरीति और वेदविधि सम्पन्न कर सुमधुर वाणीमें कहा—'कौसल्यारानीको शीघ्र ही बालकके सहित बुलाओ' ॥ ११ ॥ यह सुनते ही बड़भागिनी सुवासिनी स्त्रियाँ उन्हें गाती हुई ले चलीं। यह दृश्य देख और सुनकर पार्वती, लक्ष्मी, शारदा और शची अति प्रेममग्न हुईं ॥ १२ ॥ वे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार वेष बनाकर हिल-मिलकर साथ-साथ हो लीं; मानो उस समय तीनों लोकोंका भाग जग गया ॥ १३ ॥ सुन्दर चौकोंमें बैठी हुई कौसल्यारानी गोदमें आनन्दमूर्ति बालकको लिये अति शोभायमान हो रही हैं; उन्हें पुण्यवान् लोग ही देख सकते थे ॥ १४ ॥ उस समयके सुख, सौन्दर्य और कौतुककी कला देख-सुनकर मुनिजन मोहित हो जाते हैं; भला ऐसा कौन कवि है जो उस समाजका वर्णन कर सके ॥ १५ ॥ फिर ऋषिराज वसिष्ठजी रक्षा-ऋचा* पढ़ने लगे। आकाशसे फूलोंकी झड़ी लग

* ॐ अङ्गाङ्गादभिजातासि हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदां शतम् ॥

गयी तथा जयजयकारके सहित बहुत-से बाजे बजने लगे ॥१६॥ लंकामें बड़े असंगल होने लगे, तरह-तरहकी शङ्काएँ और आपत्तियाँ उमड़ आयीं; किन्तु चौदहों भुवनके बड़े-बड़े दुःख और दारिद्रय दूर हो गये ॥ १७ ॥ अथर्ववेदी वसिष्ठजीने बालककी ओर देखकर हँसते हुए भगवान् शङ्करको बतलाया [कि तुम्हारे इष्टदेव ये ही हैं] और उनका शुभसे भी शुभ तथा परमानन्दमय रामनाम सुनाया ॥ १८ ॥ श्रीकौसल्याजी सुन्दर आलबाल (वृक्षका थाला) हैं, 'राम' नामके दो अक्षर सुन्दर दल हैं और सकल आनन्दका कन्द ही मानो अङ्कुरके रूपमें प्रकट हुआ है ॥ १९ ॥ [वसिष्ठजीने जो भगवान् शङ्करको यह सूचना दी थी कि ये आपके इष्टदेव हैं सो] शिवजीने उन्हें देखकर और पहचान-कर भगवान्का नाम जपते हुए हाथ जोड़कर सिरपर रक्खे । उस समय देवताओंने आदरपूर्वक 'जय जय जय करुणानिधे' ऐसा कहा ॥ २० ॥ हे सत्यसन्ध ! आपने जो अक्षर कहे हैं उन्हें सर्वदा सच करके दिखलाया है । हे प्रणतपाल ! आपसे जिन-जिन फलोंकी इच्छा की है उन सभी-को प्राप्त किया है ॥ २१ ॥ उस समय ब्राह्मण और देवताओंको देखकर महाराज दशरथ बड़े आनन्दित हुए और अपने मन्त्री, सेवक, सखा, पटधारी और भण्डारीको बुलाकर कहा—॥ २२ ॥ 'जाओ, जिसे जो चाहिये उसे वही वस्तु सम्मान और सावधानीसे दो ।' तब वे हृदयमें हर्षित हो याचकोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर तथा बुला-बुलाकर दान देने लगे ॥ २३ ॥ सब लोग भगवान् रामकी निछावर लेनेके लिये हठपूर्वक भिखारी बन जाते हैं और फिर वे ही दान देते हुए दिखायी देते हैं, मानो साक्षात् कुबेर ही हों ॥ २४ ॥ वसिष्ठजीने विचार करके [रामचन्द्र-जीके समान] भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भी नाम रखे । महाराज

दशरथके चारों पुत्र मानो अर्थ, धर्मादि चारों फलोंके फल देनेवाले ही हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार राजकुमारोंके सुन्दर एवं अनुपम नाम रक्खे गये। इससे तीनों लोकोंके सारे शोक और सङ्कट दूर हो गये ॥ २६ ॥ विधाताने सबके सभी मनोरथ सब प्रकार पूर्ण कर दिये। अब भी उनका गान या श्रवण करनेसे तुलसीदास तथा सबकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी ॥ २७ ॥

दुलार

राग बिलावल

[७]

सुभग सेज सोभित कौसिल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥ १ ॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये ॥ २ ॥
बिधि-महेस, मुनि-सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये ॥ ३ ॥

महारानी कौसल्या सुन्दर बालक रामको गोदमें लिये मनोहर शय्यापर सुशोभित हैं और अपने नेत्रोंको सुन्दर चकोर बनाकर बार-बार भगवान्‌का मुखचन्द्र निहारती हैं ॥ १ ॥ कभी शय्यापर पौढ़कर दुग्धपान कराती हैं, कभी हृदयसे लगा लेती हैं और कभी भगवान्‌की बाललीला गाती हुई उन्हें हिलाने-डुलाने लगती हैं और प्रेमामृत पानकर पुलकित होती हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, महादेव, ऋषि और देवता,

ये सभी बादलोंकी ओटमें छिपे-छिपे प्रसन्न होकर देख रहे हैं। किन्तु तुलसीदास कहते हैं कि रघुनाथजीका ऐसा सुख [कौसल्याको छोड़कर] और किसीको नहीं मिला ॥ ३ ॥

राग सोरठ

[८]

ह्वैहौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
राम-लषन भावते भरत-रिपुदवन चारु चार्यो भैया ॥ १ ॥
बाल-बिभूषन बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहों।
सोभा निरखि, निछावरि करि, उर लाइ वारने जैहों ॥ २ ॥
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि, ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिं बुलैहौ ॥ ३ ॥
पुरजन-सचिव, राउ-रानी सब, सेवक-सखा-सहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली ॥ ४ ॥
जा सुखकी लालसा लटू सिव, सुक-सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी ॥ ५ ॥

'हे लाल ! मैया बलि जाय, तुम कब बड़े होगे? प्यारे राम, लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न, तुम चारों ही सुन्दर भाई कब बड़े होगे ॥ १ ॥ ऐसा कब होगा कि मैं तुम्हारे मनोहर अङ्गोंके लिये बालोचित आभूषण और वस्त्र बना-बनाकर उन्हें सजाऊँगी तथा उस शोभाको देखकर नाना प्रकारकी निछावर कर तुम्हें हृदयसे लगाकर वारी जाऊँगी ॥ २ ॥ तुम सब बालक मगन

हो मिल-जुलकर कब आँगनमें खेलोगे, कब ठुमक-ठुमककर दौड़ोगे, तथा कब अति मधुर और मनोहर तोतली बोली बोलकर मुझे 'माँ' कहकर बुलाओगे ॥ ३ ॥ अपनी मनोरथरूपी सुन्दर बेलको सफल हुई देख पुरवासी, मन्त्रिमण्डल, राजा, रानी, सेवक, सखा और सहेलियाँ कब अपने नेत्रोंका लाभ लूटेंगे ?' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस सुखकी लालसामें शिव, शुकदेव और सनकादि विरक्त जन भी लट्टू हुए रहते हैं उसी सुखसमुद्रमें कौसल्या भी मग्न हैं, तो भी उन्हें प्रेमकी प्यास लगी हुई है ॥ ५ ॥

[९]

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया ।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भजि मिलनि मनोहरतैया ।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य-पयोधि उमँग, घर घर आनंद बधैया ॥ ४ ॥
ह्वैहैं सकल सुकृत-सुख-भाजन, लोचन-लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषनके चरित-सरित अन्हवैया ।
तुलसी तबके-से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया ॥ ६ ॥

सुमित्रा मैया सब बालकोंको प्रेमपुलकित हो, हृदयसे लगाकर कहती हैं—'तुम चारों भैया कब पैरों चलोगे? ॥ १ ॥ तुम्हारे सुन्दर शरीर-पर बालोचित वस्त्राभूषण तथा नखसिखकी सुन्दरता देख माताएँ [नजर न लग जाय, इसलिये] तिनका तोड़ेंगी और प्राण निछावरकर बलैया लेंगी ॥ २ ॥ तुम्हारे किलकने, नाचने, चलने, देखने और दौड़कर मिलनेकी मनोहरतासे तथा मणिमय खम्भोंमें तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़नेसे आँगनमें छवि छलकने लगेगी ॥ ३ ॥ तुम्हारे बालविनोदके आनन्दरूप मनोहर चन्द्रकी ललित लीलारूप चन्द्रिकासे महाराज दशरथका पुण्यरूप समुद्र उमड़ेगा और घर-घरमें आनन्द-बधाई होने लगेगी ॥ ४ ॥ सभी लोग नेत्रोंका आनन्द लूटकर पुण्य और सुखके भाजन होंगे तथा तुम्हारी तोतली बोली सुननेवाले अनायास ही अपने जन्मका फल पा लेंगे' ॥ ५ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके चरितरूप सरितामें स्नान करनेवाले जैसे तत्कालीन अवधवासी थे वैसे ही आज भी समझने चाहिये ॥ ६ ॥

राग केदारा

[१०]

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
    चिर रुचि तिलक गोरोचनको कियो है।
भ्रूपर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार
    बिलसत सीसपर, हेरि हरै हियो है ॥ १ ॥
मोदभरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि
    देव कहैं, सबको सुकृत उपवियो है।

मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ॥ २ ॥
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभाकी दीयटि मानो रूप-दीप दियो है ॥ ३ ॥
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ-सुनि
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर
ऐसे सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ ४ ॥

माताओंने बालकोंको तेल और उबटन लगाकर स्नान कराया और फिर नेत्रोंमें आँजकर अति प्रीतिपूर्वक गोरोचनका तिलक लगाया। भृकुटिपर अति अनुपम काजरकी बेंदी लगायी। शीशपर छोटे-छोटे बाल सुशोभित हैं, जो देखनेवालेके चित्तको हर लेते हैं ॥ १ ॥ सुमित्राको अति आनन्दपूर्वक बालकोंको गोदमें लेकर दुलार करते देख देवगण कहते हैं, 'इस समय सभीका पुण्य प्रकट हुआ है। ये माता, पिता, प्रिय परिजन और पुरवासी लोग धन्य हैं, जो अपने पुण्यपुञ्ज भगवान् रामको देख-देखकर प्रेमरस पान कर रहे हैं ॥ २ ॥ इनके अति ललित और लाल-लाल नन्हे-नन्हे चरणकमल तथा चारु गतिकी छविको चाहकर ही सुकविजनोंका हृदय जीवित रहता है। बालचापल्ययुक्त भगवान् राम ऐसे जान पड़ते हैं मानो शोभाकी दीवटपर रूपमय दीपक बालकेलिरूप वायुके

झकोरोंसे झिलमिला रहा हो ॥ ३ ॥ सत्पुरुषोंने आदरपूर्वक अनुज-सहित बालक रामका चरित्र गा-सुनकर अपने जन्मका लाभ पाया है।' तुलसीदासजी कहते हैं कि ब्रह्माने महाराज दशरथको छोड़कर ऐसा सुखका योग चौदहों भुवनमें और कहीं नहीं रचा ॥ ४ ॥

[११]

राम-सिसु गोद महामोद भरे दसरथ,
कौसिलाहु ललकि लषन लाल लये हैं।
भरत सुमित्रा लये, कैकयी सत्रुसमन,
तन प्रेम-पुलक, मगन मन भये हैं ॥ १ ॥
मेढ़ी लटकन मनि-कनक-रचित, बाल-
भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठये हैं।
चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर,
तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं ॥ २ ॥
घन ओट बिबुध बिलोकि बरषत फूल,
अनुकूल बचन कहत नेह नये हैं।
ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन बिधि
जानियत आयु भरि येई निरमये हैं ॥ ३ ॥
'अजर अमर होहु', 'करौ हरि-हर छोहु'
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दये हैं।
तुलसी सराहैं भाग तिन्हके, जिन्हके हिये
डिंभ-रामरूप-अनुराग-रंग रये हैं ॥ ४ ॥

बालक रामको गोदमें ले महाराज दशरथ बड़े आनन्दमें भरे हुए हैं, कौसल्या महारानीने भी ललककर लषणलालको ले लिया है तथा सुमित्राने भरतको और कैकेयीने शत्रुघ्नको उठा लिया है। इस समय उनका तन प्रेमसे पुलकित एवं मन आनन्दमग्न हो रहा है ॥ १ ॥ अनेक वेणियोंसे गुहकर बनायी हुई चोटीमें तथा अङ्ग-अङ्गमें मणि और सुवर्णके आभूषण बनाकर सजाये गये हैं। माता-पिता बड़े प्रेमसे चुचकार-चुचकारकर बालकोंको चूमते और लाड़ करते हैं तथा हृदयसे लगा लेते हैं। उन्होंने जैसे सुबीज बोये हैं वैसा ही फल पा रहे हैं ॥ २ ॥ देवता लोग बादलोंकी ओटमेंसे यह कौतुक देखकर फूल बरसाते हैं और नवीन नेहसे युक्त साधुवाद कहते हैं कि विधाताने अपने जीवनभरमें ऐसे माता, पिता, पुत्र, सुहृद् और परिजन ये ही रचे हैं ॥ ३ ॥ बड़ी आयुके स्त्री-पुरुष आशीर्वाद देते हैं कि 'तुम अजर-अमर होओ, भगवान् विष्णु और महादेवजी तुमपर सदा दयादृष्टि रक्खें।' तुलसीदास उनके भाग्यकी सराहना करते हैं जिनके मन बालरूप रामके अनुरागमें रँगे हुए हैं ॥ ४ ॥

राग आसावरी

[१२]

आजु अनरसे हैं भोरके, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो
सो सोच सबहीके ॥ १ ॥
देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिये घीके।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब
परत दृष्टि दुष्ट तीके ॥ २ ॥

बेगि बोलि कुलगुर छुयो माथे हाथ अमीके।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो
सुमिरत भय भीके ॥ ३ ॥

जासु नाम सरबस सदासिव-पारबतीके।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीतिकी हिय
हुलसति तुलसीके ॥ ४ ॥

आज राम सवेरेसे ही अनमने हो रहे हैं, अच्छी तरह दूध भी नहीं पीते। आज बैठने, खड़े होने और पालनेमें झुलानेसे भी नहीं रहते, बराबर रो रहे हैं। इससे मुझे और सबको ही बड़ा शोक हो रहा है ॥ १ ॥ देव, पितर और ग्रहोंकी पूजा करते हैं, घृतका तुलादान भी करते हैं; तो भी हे सखि! कभी-कभी जब किसी दुष्टा स्त्रीकी दृष्टि पड़ जाती है तो ऐसे ही मचल जाते हैं ॥ २ ॥ तुरन्त ही कुल-गुरुको बुलाना चाहिये। वे अपने अमृतमय हाथोंसे बालकका मस्तक स्पर्श करें। यह सुनते ही ऋषिवरने आकर नृसिंहमन्त्र * पढ़ते हुए बालकके हाथमें कुशा बाँधा, जिस मन्त्रका स्मरण करनेसे भयको भी भय होता है ॥ ३ ॥ जिनका नाम सदाशिव और पार्वतीजीका सर्वस्व है उन्हींको कौसल्याजी झाड़-फूँक करा रही हैं! इस प्रीतिकी रीतिको देखकर तुलसीदासके हृदयमें अति आनन्द होता है ॥ ४ ॥

---

* ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षःस्थलविदारणाय त्रिभुवनव्यापकाय भूतप्रेतपिशाचशाकिनीडाकिनीकीलनोन्मूलनाय स्तम्भोद्भवसमस्तदोषान् हन हन सर सर चल चल कम्प कम्प मथ मथ हुंफट् हुंफट् ठंठः महारुद्रजापित स्वाहा।

[१३]

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे ।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन, तनु पुलक,
रोम रोम जागे ॥ १ ॥

लिये गोद, धाये गोदतें, मोद मुनि मन अनुरागे ।
निरखि मातु हरषी हिये आली ओट कहति मृदु बचन
प्रेमके-से पागे ॥ २ ॥

तुम्ह सुरतरु रघुबंसके, देत अभिमत माँगे ।
मेरे बिसेषि गति रावरी, तुलसी प्रसाद जाके सकल
अमंगल भागे ॥ ३ ॥

जिस समय मुनिवरने रामके मस्तकपर हाथ रक्खा उसी समय वे किलकने लगे। भगवान्‌की महिमाको जानकर और उनकी लीला देखकर गुरुजीके नेत्रोंमें जल भर आया और रोमावली खड़ी हो गयी ॥ १ ॥ उन्होंने रामको गोदमें उठा लिया, किन्तु वे गोदसे उतरकर भाग गये। इससे मुनिवरका चित्त अति अनुरागमय हो गया। यह देखकर माता हृदयमें हर्षित हुई और सखीकी ओटमें खड़ी होकर प्रेमपगे सुमधुर वचनोंमें कहने लगीं ॥ २ ॥ हे गुरुजी ! आप रघुकुलके कल्पवृक्ष हैं, उसे माँगनेपर सभी अभीष्ट वस्तुएँ दे देते हैं। (तुलसीदास कहते हैं) मुझे तो विशेषतः आपहीकी गति है, जिनकी कृपासे सभी अमङ्गल दूर हो गये हैं ॥ ३ ॥

[१४]

अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिबर जब जोए।
तबतें राम अरु भरत, लषन, रिपुदवन सुमुख, सखि, सकल
सुवन सुख सोए ॥ १ ॥

सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए।
तुलसी नेवछावरि करति मातु अतिप्रेम-मगन मन,
सजल सुलोचन कोये ॥ २ ॥

हे सखि ! जबसे मुनिवरने कृपा करके अपनी अमृतमयी दृष्टिसे निहारा है तभीसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सभी बालक सुखकी नींद सोये हैं ॥ १ ॥ सर्प जैसे अपनी मणिको छिपा लेता है उसी प्रकार सुमित्राने बालकोंको हृदयसे लगा लिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि माता कौसल्या अत्यन्त प्रेममग्न होकर निछावर कर रही हैं। इसीसे उनके नेत्रोंके कोये सजल हो रहे हैं ॥ २ ॥

[१५]

मातु सकल, कुलगुर-बधू, प्रिय सखी सुहाई।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर
सबनि सुधेनु दुहाई ॥ १ ॥

बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई।
पूजि पायँ, सनमानि, दान दिये, लहि असीस, सुनि
बरषैं सुमन सुरसाई ॥ २ ॥

घर-घर पुर बाजन लगीं आनंद-बधाई।
सुख-सनेह तेहि समयको तुलसी जानै जाको चोरयो
है चित चहुँ भाई ॥ ३॥

कौसल्या आदि माता, कुलगुरुपत्नी अरुन्धती और प्रिय सखियोंने आदरपूर्वक सब मङ्गलकृत्य किये और पृथ्वीके अलङ्काररूप भगवान् शंकरपर दूध चढ़ानेके लिये सुन्दर गौओंका दोहन कराया ॥ १ ॥ फिर महाराजने अत्यन्त विनय और बड़ाई करके ब्राह्मणोंको बुलाया और उनके पाँव पूज सम्मानितकर तरह-तरहके दान दिये तथा मुनिवरसे आशीर्वाद लिया। इस समय देवराज इन्द्र पुष्पवर्षा करने लगे ॥ २॥ नगरमें घर-घर आनन्दकी बधाई बजने लगी। तुलसीदासजी कहते हैं, उस समयका सुख और स्नेह वही जान सकता है जिसका चित्त चारों भाइयोंने चुरा लिया हो ॥ ३ ॥

राग धनाश्री

[१६]

या सिसुके गुन-नाम-बड़ाई।
को कहि सकै, सुनहु नरपति, श्रीपति समान प्रभुताई ॥ १ ॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन समय चारु चारयो भाई।
तदपि लोक-लोचन-चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई ॥ २ ॥
सुर, नर, मुनि करि अभय, दनुज हति, हरहि धरनि गरुआई।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई ॥ ३ ॥
याके चरन-सरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई ॥ ४ ॥

सुनि गुरबचन पुलक तन दंपति, हरष न हृदय समाई।
तुलसिदास अवलोकि मातु-मुख प्रभु मनमें मुसुकाई ॥ ५ ॥

हे राजन्! सुनिये, इस बालकके गुण, नाम और बड़ाई कौन कह सकता है? इसकी प्रभुता साक्षात् श्रीलक्ष्मीपतिके समान है ॥ १ ॥ यद्यपि बुद्धि, आयु, रूप, शील और गुणमें चारों ही भाई समानरूपसे सुन्दर हैं तथापि भक्तसुखदायक राम तो सम्पूर्ण लोकोंके नेत्ररूप चकोरोंके लिये चन्द्रमारूप ही हैं ॥ २ ॥ ये देवता, मनुष्य और मुनियोंको अभय कर राक्षसोंका संहार करके पृथ्वीका भार उतारेंगे। इनकी जगत्पापापहारिणी निर्मल कीर्ति सम्पूर्ण जगत्में छा जायगी ॥ ३ ॥ जो लोग इनके चरणकमलोंका निष्कपटभावसे चित्त लगाकर भजन करेंगे वे अपने [पितृपक्षीय और मातृपक्षीय] दोनों कुलोंके सहित संसारसे पार हो जायँगे—यह कोई बड़ी बात नहीं है ॥ ४ ॥ गुरुजीके ये वचन सुनकर राजा-रानीके शरीरमें रोमाञ्च हो गया; उनके हृदयमें हर्ष समाता नहीं था। तुलसीदासजी कहते हैं—उस समय माताका मुख देखकर प्रभु मन-ही-मन मुसका रहे थे ॥ ५ ॥

राग बिलावल

[१७]

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो ॥ १ ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥ २ ॥

पायँ पखारि, पूजि, दियो आसन, असन बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चारयो सुत, माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ ४॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिसि सीय स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥ ५॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यौ महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ ६॥

'आज अवधपुरीमें एक आगमा (ज्योतिषी) आया है। वह हथेली देखकर ही सारे गुण बता देता है। उसके कथनका कई लोग परिचय पा चुके हैं॥ १॥ वह बूढ़ा ब्राह्मण बड़ा ही प्रामाणिक है। उसका अति सुन्दर 'शंकर' नाम है। उसके साथ बालक शिष्य भी हैं'—यह सुनकर माता कौसल्याने उसे महलके भीतर बुलाया॥ २॥ और उसके चरण धो, पूजा कर आसन दिया तथा भोजन कराकर वस्त्र पहनाये। फिर उसके चारु चरणोंमें चारों बालकोंको डालकर उनके सिरपर हाथ रखवाया॥ ३॥ उन बालकोंको नख-सिखसे निहारकर ब्राह्मण देवताके शरीरमें रोमाञ्च और नेत्रोंमें जल छा गया। फिर वे गोदमें ले-लेकर उनके करकमल देखने लगे। उस समय [अपने आराध्य देवका प्रत्यक्ष दर्शन पानेसे] उनके हृदयमें आनन्द नहीं समाया॥ ४॥ तदनन्तर उन्होंने उनके जन्म लेनेका कारण और भविष्यमें विश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षाके मिषसे सीताजीके स्वयंवरमें पधारनेकी बात कही तथा राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भावी जय, सुख

और सुयशका वर्णन किया ॥ ५ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं—यह सुनकर सारा रनिवास आनन्दमग्न हो गया, क्योंकि उनका कथन सभीके हृदयको प्रिय लगनेवाला हुआ। उन्होंने उन विप्रवरका खूब सम्मान किया और वे भी उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपने घर चले गये ॥ ६ ॥

राग केदारा

[१८]

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥ १ ॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिबेकहँ मति-मृगनयनि बुलावौं ॥ २ ॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥ ३ ॥

[माता कहती हैं—] 'लाल, तुम पालनेमें पौढ़ जाओ, मैं झुलाऊँगी। तुम्हारे कर, चरण, मुख और नेत्ररूप कमनीय कमलोंको निहारकर मैं अपने नयनरूप भ्रमरोंको भुला दूँगी ॥ १ ॥ तुम्हारे बालकेलिके आनन्दरूप मञ्जुल मणिके लिये मैं किलकनि (हास्य) रूप खानि खुलाऊँगी और उन्हें अनुरागरूप तागेमें पिरोनेके लिये बुद्धिरूप मृगनयनी बुलाऊँगी' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं—उस मनोहर मालाको काव्यरूप कमनीय कामिनीके कण्ठमें पहनाकर मैं प्रफुल्लित होऊँगा और हे रघुश्रेष्ठ ! मैं मिल-जुलकर तुम्हारे ही पवित्र चरित्र गाकर तुम्हारे ही चरणोंमें चित्त लगाऊँगा ॥ ३ ॥

[१९]

सोइये लाल लाडिले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ॥ १ ॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई।
तुम सबके जीवनके जीवन, सकल सुमंगलदाई ॥ २ ॥
मूल मूल, सुरवीथि-बेलि, तम-तोम सुदल अधिकाई।
नखत-सुमन, नभ-बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छबि छाई ॥ ३ ॥
हौ जँभात, अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥ ४ ॥
बछरु, छबीलो छगनमगन मेरे, कहति मल्हाइ मल्हाई।
सानुज हिय हुलसति तुलसीके प्रभुकी ललित लरिकाई ॥ ५ ॥

महारानी सुमित्रा आनन्दमग्न होकर रामको गोदमें ले बार-बार बलिहारी जाती हैं और कहती हैं—'हे लाल! हे लाडिले रघुवीर! सो जाओ ॥ १ ॥ जैसे प्रतिबिम्बमें बिम्बकी झाईं पड़ती है उसी प्रकार हमारे हँसनेसे तुम हँसने लगते हो और खीझनेसे उदास हो जाते हो। तुम तो सभीके जीवनके जीवन और सब प्रकारके मङ्गल देनेवाले हो ॥ २ ॥ [अहा! इस समय रात्रिकी कैसी अपूर्व शोभा है?] मूल नक्षत्र जिसका मूल है, आकाशगङ्गा बेल है, अन्धकारराशि पत्र-समूह है तथा नक्षत्रगण पुष्पावली है उस आकाशरूप वृक्षकी ओटमें लुक-छिपकर मानो रात्रि अपनी छबि छिटका रही है ॥ ३ ॥ हे तात! अब तुम्हें जमुहाई आ रही है और तुम अलसा रहे हो। मैं तुम्हारी आदत अच्छी तरह जान गयी हूँ। अच्छा, मैं गा-गाकर और हिला-डुलाकर सुखमयी निद्राको बुलाती हूँ' ॥ ४ ॥ फिर सुमित्रा मैया

मगन मनसे पुचकार-पुचकारकर 'मेरे बछरा! मेरे छबीले छोना!' आदि कहने लगीं। तुलसीदासजी कहते हैं—उस समयका भाइयोंके सहित वह प्रभुका ललित बालभाव मेरे हृदयमें उमंगें मारता है ॥ ५ ॥

[२०]

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया।
सुख सोइए नींद-बेरिया भई, चारु-चरित चारयौ भैया ॥ १ ॥
कहति मल्हाइ, लाइ उर छिन-छिन, छगन छबीले छोटे छैया।
मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया ॥ २ ॥
रघुबर बालकेलि संतनकी सुभग सुभद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ॥ ३ ॥

हे ललन! हे लोने वत्स! माता बलि जाती है। लाल! अब नींदका समय हो गया है; अतः मनोहर चरितवाले चारों भाई सुखपूर्वक सो जाओ ॥ १ ॥ छोटे-छोटे छबीले बालकोंको छातीसे चिपटाकर माता पुचकार-पुचकारकर कहती है, 'मेरे आनन्दकन्द रघुकुलभूषण राम अपने कुलरूप कुमुदवनके लिये चन्द्रमाके समान हैं' ॥ २ ॥ रघुनाथजीकी बाललीला सन्तजनोंके लिये अति सुन्दर और शुभप्रद कामधेनु ही है। तुलसीदास उसका प्रेमरूप दूध दुहकर तथा उसकी घैया बनाकर प्रेमसहित पान करते हैं और आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते हैं ३

[२१]

सुखनींद कहति आलि आइहौं।
राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं ॥ १ ॥
रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं।
हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं ॥ २ ॥

गोद बिनोद-मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं ।
तनु तिल तिल करि, वारि रामपर, लेहौं रोग बलाइ हौं ॥ ३ ॥
रानी-राउ सहित सुत-परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं ।
चारु चरित रघुबंस-तिलकके तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥ ४ ॥

आनन्दनिद्रा कहती है—आली ! मैं आती हूँ, आती हूँ। और बालक राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको प्रसन्न करके सुलाती हूँ ॥ १ ॥ मैं रोना-धोना, अनखाना, रूठना और निगोड़ी नजर-गुजरको नष्ट कर दूँगी और हँसने, खेलने, किलकने तथा आनन्दित होनेकी क्रियाको महाराजके महलमें बसाऊँगी ॥ २ ॥ रामकी विनोद और आनन्द-मयी मूर्तिको गोदमें लेकर प्रसन्न मनसे हिलाऊँगी और अपने शरीरको रामललापर तिल-तिल निछावर कर उनके सारे रोग और दुःख अपने ऊपर ले लूँगी ॥३॥ राजा और रानीको अपने पुत्र तथा कुटुम्बियोंके सहित देखकर मैं नेत्रोंका फल पाऊँगी और वहाँ तुलसीदास कहते हैं कि उन सबके साथ मिलकर रघुवंशतिलक भगवान् रामके पवित्र चरित्र गाऊँगी ॥ ४ ॥

राग आसावरी

[२२]

कनक-रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार ।
बिबिध खेलौना, किंकिनी, लागे मंजुल मुकुताहार ॥
रघुकुल-मंडन राम लला ॥ १ ॥
जननि उबटि, अन्हवाइकै, मनिभूषन सजि, लिये गोद ।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथनंदन राम लला ॥ २ ॥

मदन मोरकै चंदकी झलकनि निदरति तनु-जोति।
नील कमल, मनि, जलदकी उपमा कहे लघु मति होति॥
मातु-सुकृत-फल राम लला॥ ३॥

लघु लघु लोहित ललित हैं पद, पानि, अधर एक रंग।
को कबि जो छबि कहि सकै नखसिख सुंदर सब अंग॥
परिजन-रंजन राम लला॥ ४॥

पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर-कंजनि पहुँची मंजु।
हिय हरिनख अदभुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गंजु॥
पुरजन-सिरमनि राम लला॥ ५॥

लोयन नील सरोजसे, भ्रूपर मसिबिंदु बिराज।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमियको रच्छक राखे रसराज॥
सोभासागर राम लला॥ ६॥

गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट।
जनु उडुगन बिधु मिलनको चले तम बिदारि करि बाट॥
सहज सोहावनो राम लला॥ ७॥

देखि खेलौना किलकहीं, पद पानि बिलोचन लोल।
बिचित्र बिहँग अलि जलज ज्यों सुखमा-सर करत कलोल॥
भगत-कलपतरु राम लला॥ ८॥

बाल-बोल बिनु अरथके सुनि देत पदारथ चारि।
जनु इन्ह बचनन्हितें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि॥
नाम-कामधुक राम लला॥ ९॥

सखी सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावैं उमँगि उमँगि अनुराग॥
हैं जग-मंगल राम लला॥ १०॥

मोती जायो सीपमें अरु अदिति जन्यो जग-भानु।
रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु॥
भुवन-विभूषन राम लला॥ ११॥

राम प्रगट जबतें भए गए सकल असंगल-मूल।
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिनके चित सूल॥
भव-भय-भंजन राम लला॥ १२॥

अनुज-सखा-सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान॥
रिपुगन-गंजन राम लला॥१३॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि।
दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि॥
अरि-करि-केहरि राम लला॥१४॥

गीत सुमित्रा सखिन्हकै सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल।
दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल॥
सुर-सुखदायक राम लला॥१५॥

बालचरितमय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान।
चित चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रसपान॥
तुलसीको जीवन राम लला॥१६॥

सुवर्ण और मणियोंसे जड़ा हुआ मनोहर पालना है, जिसे मानो कामदेवरूप बढ़ईने बनाया है। उसमें तरह-तरहके खिलौने, घुँघरू और महामनोहर मोतीकी मालाएँ लगी हुई हैं। उसीमें रघुकुलभूषण रामलला विराजमान हैं ॥ १ ॥ माताने दशरथनन्दन रामललाको उबटन लगा, स्नान करा और मणिमय आभूषणोंसे सुसज्जित कर गोदमें लिया, और फिर उस सुन्दर पालनेमें सुला दिया । बालक रामको देखकर माताका मन आनन्दमग्न हो रहा है ॥ २ ॥ रामके श्याम शरीरकी कान्ति कामदेवके मयूरके चन्द्रिकाकी आभाका भी निरादर करती है। मेरी बुद्धिको तो उसे नील कमल, नील मणि अथवा नील मेघकी उपमा देना भी बहुत लघु जान पड़ता है। वह रामलला तो माताके पुण्यपुञ्जका फल ही है ॥ ३ ॥ रामके नन्हे-नन्हे पाँव, हाथ और अधर एक ही रंगके अति सुन्दर और अरुण वर्ण हैं। नखसे सिखतक उनके सभी अंग सुन्दर हैं। ऐसा कौन कवि है जो इनकी छबिका वर्णन कर सके। वे रामलला अपने सभी कुटुम्बियोंका आनन्द बढ़ानेवाले हैं ॥ ४ ॥ रामलला पुरवासियोंके चूडामणि हैं । उनके चरणोंमें नूपुर, कटि-प्रदेशमें किंकिणी, करकमलोंमें मनोहर पहुँची और हृदयमें अति अद्भुत बघनहा शोभायमान है, जो मानो कामदेवकी मणियोंका भी मान मर्दन करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ रामलला शोभाके समुद्र हैं। उनके नेत्र नील कमलके समान हैं, भृकुटीपर काजलकी बेंदी शोभायमान है; मानो मुखचन्द्रकी छबिरूप अमृतकी चौकसीके लिये शृङ्गाररसने रक्षक नियुक्त किया हो ॥ ६ ॥ रामलला स्वभावसे ही शोभायमान हैं। उनकी गभुआरी अलकावली सुशोभित है तथा मनोहर ललाट प्रदेशपर रत्नजटित लटकन है। मानो नक्षत्रगण अन्धकारको

विदीर्णकर मार्ग निकालकर चन्द्रमासे मिलनेको चले हों ॥ ७ ॥ रामलला भक्तोंके लिये कल्पवृक्षरूप हैं। वे खिलौनोंको देखकर किलकारी मारते हैं और उनके चरण, हाथ और नेत्र चञ्चल हो रहे हैं; मानो किसी सौन्दर्य-सरोवरमें चित्र-विचित्र पक्षी और भ्रमरगण कमल-कुसुमपर किलोल कर रहे हों ॥ ८ ॥ रामललाका नाम साक्षात् कामधेनु ही है। बालक रामके अर्थहीन शब्द सुने जानेपर चारों फल प्रदान करते हैं। मानो इन शब्दोंसे सहमकर ही कल्पवृक्ष वृक्ष और त्रिपुरहर शंकर तपस्वी हो गये हैं ॥ ९ ॥ रामलला जगन्मङ्गलरूप हैं। सखियाँ तथा सुमित्रा महारानी मणि, भूषण और वस्त्रोंका विभाग-कर निछावर करती हैं। वे झुलाती और पुचकारती हुई प्रेमसे उमँग-उमँग-कर मधुर स्वरसे गाती हैं ॥ १० ॥ रामलला त्रिभुवनको विभूषित करने-वाले हैं। जैसे सीपसे मोती प्रकट होता है और अदितिसे सूर्यका जन्म हुआ है उसी प्रकार कौसल्याने गुण, मङ्गल और रूपके निधान रघुनन्दनको जन्म दिया है ॥ ११ ॥ रामलला संसारके भयको भङ्ग करने-वाले हैं। जबसे रामका प्रादुर्भाव हुआ है तबसे सारे अमङ्गलोंकी जड़ कट गयी है, मित्रमण्डल आनन्दित है, हितैषियोंका अभ्युदय हो रहा है तथा वैरियोंके हृदयमें शूल होता है ॥ १२ ॥ जिस समय भगवान् राम अपने भाई और साथी बालकोंको संग लेकर गेंद खेलने जायँगे उस समय लङ्कामें खलबली पड़ जायगी और स्वर्गमें निशान बजने लगेंगे, क्योंकि रामलला शत्रुदलका दमन करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी हाथी, घोड़े और रथ सँभालकर मृगयाके लिये चलेंगे उस समय रावणके हृदयमें धड़कन होने लगेगी कि अब कहीं धनुष लेकर मेरी ओर न दौड़ पड़ें, क्योंकि श्रीरामलला शत्रुरूप हाथीके

लिये साक्षात् सिंह ही हैं ॥ १४ ॥ रामलला देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। सुमित्रा और सखियोंके गीत सुन-सुनकर देवता और मुनिजन प्रसन्न होते हैं तथा आशीर्वाद देते हुए जय-जयकार कर हर्षित हो फूलोंकी वर्षा करते हैं ॥ १५ ॥ तुलसीदासने प्रेमामृतरसका पान कर चित्तरूप चकोरके लिये यह षोडशकलानिधान बालचरितरूप चन्द्रमा* रचा है। रामलला उस तुलसीदासके जीवन हैं ॥१६॥

राग कान्हरा

[२३]

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥१॥
केकिकंठ दुति, स्यामबरन बपु, बाल-बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥२॥
सिसु-सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ॥३॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत ॥४॥
तुलसिदास बहु-बास-बिबस अलि गुंजत, सुछबि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल श्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी ॥५॥

---

* इन सोलह पदोंमें बालरूप रामकी रूपमाधुरीका वर्णन किया गया है। इनमें एक-एक पद चन्द्रमाकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कलाओंका सूचक है। इस प्रकार इसमें षोडशकलानिधान चन्द्रमाकी उत्प्रेक्षा की है।

माता कौसल्या पालनेमें रघुनाथजीको झुला रही है, और प्रेम तथा स्वरसहित नाम ले-लेकर प्रभुकी सुन्दर कीर्ति गा रही है ॥ १ ॥ मयूरकण्ठकी कान्तिके समान देदीप्यमान श्याम शरीरपर रच-रचकर बालोचित विभूषण बनाये गये हैं। अलकावली घुँघराली है, भृकुटिपर ललित लटकन लटका हुआ है तथा दोनों नेत्र नील कमलके समान शोभायमान हैं ॥ २ ॥ जिस समय बालस्वभावसे अपने सुन्दर करकमलोंसे पादपल्लवोंको पकड़कर मुखके पास लाते हैं उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो सुन्दर सर्प आनन्दपूर्वक कमलोंमें भरकर चन्द्रमासे अमृत ले रहे हैं ॥ ३ ॥ ऊपर अनुपम खिलौना टँगा देखकर किलकारी मारते हैं और बारंबार अपने पाणिपल्लव पसारते हैं; मानो दो कमल चन्द्रमासे भय मानकर अति दीनभावसे सूर्यदेवसे प्रार्थना कर रहे हैं [कि आप अस्त न हों] ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं-तीव्र महँकके कारण भौंरे गूँज रहे हैं। उस छबिका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा जान पड़ता है मानो वेदकी सारी ऋचाएँ भौंरे होकर, निर्मल वाणीसे भगवान्‌का विशद यश वर्णन कर रही हैं ॥ ५ ॥

राग बिलावल

[२४]

झूलत राम पालने सोहैं। भूरि-भाग जननी जन जोहैं ॥ १ ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाँई ॥ २ ॥
अधर-पानि-पद लोहित लोने। सर-सिंगार-भव सारस सोने ॥ ३ ॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना। मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना ॥ ४ ॥

रंजित अंजन कंज-बिलोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥५॥
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको । चितवत चितचकोर तुलसी को ॥६॥

श्रीरामलला पालनेमें झूलते हुए शोभा पा रहे हैं और बड़भागिनी माताएँ उनकी ओर निहार रही हैं ॥ १ ॥ भगवान्‌के शरीरमें अति मृदुल और मञ्जुल श्यामता सुशोभित है, जिसपर बालोचित आभूषणोंकी झाँई झलक रही है ॥ २ ॥ प्रभुके अति सुन्दर अरुणवर्ण ओठ, हाथ और चरण ऐसे जान पड़ते हैं मानो शृङ्गारसरोवरमें सोनेके कमल शोभायमान हों ॥ ३ ॥ खिलौनोंको देख-देखकर किलकारी मारते हैं, मानो छबिके छोटे-छोटे बालक खेल-खेलमें लड़ रहे हों ॥ ४ ॥ नयनकमलोंमें अञ्जन आँजा हुआ है तथा मस्तकपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है ॥ ५ ॥ मनोहर मुखचन्द्रपर अति सुन्दर काजलकी बेंदी लगी हुई है। उस मुखमयङ्कको तुलसीका चित्तरूप चकोर निहार रहा है ॥ ६ ॥

राग कल्याण

[२१]

राजत सिसुरूप राम सकल गुन-निकाय-धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी।
नीलकंज-जलदपुंज-मरकतमनि-सरिस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अंग उपर वारी ॥१॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मंदिराभ,
इंदिरानिवास सदन बिधि रच्यो सँवारी।

बिहरत नृप-अजिर अनुज सहित बालकेलि-कुसल ,
नील-जलज-लोचन हरि मोचन भय भारी ॥२॥
अरुन चरन अंकुस-धुज-कंज-कुलिस-चिन्ह रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी ।
किंकिनी बिचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि–नख, कंकन करधारी ॥३॥
चारु चिबुक नासिका कपोल, भाल तिलक, भ्रुकुटि,
श्रवन अधर सुंदर, द्विज-छबि अनूप न्यारी ।
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुगपाँति प्रसव,
कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्रवारी ॥४॥
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली,
बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी ।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि,
लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी ॥५॥
जाकहँ सनकादि संभु नारदादि सुक मुनींद्र,
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।
दसरथ गृह सोइ उदार, भंजन संसार भार,
लीला अवतार तुलसिदास – त्रासहारी ॥६॥

सम्पूर्ण गुणसमूहके आश्रय, अत्यन्त कौतुकी, कृपानिधान, घुटनों चलनेवाले बालरूप परब्रह्म भगवान् राम विराजमान हैं। वे नील कमल, मेघसमूह तथा मरकतमणिके समान श्यामवर्ण हैं। उनके एक-एक अङ्गपर करोड़ों कामदेवोंकी शोभा निछावर है ॥ १ ॥ जो सुवर्ण और

मणिरत्नोंसे जड़ा हुआ है तथा जिसे विधाताने सँवारकर लक्ष्मीपतिका निवासस्थान बनाया है उस इन्द्रभवनसदृश राजभवनमें नील कमलके समान नेत्रोंवाले, संसारका भारी भय दूर करनेवाले बालकेलिकुशल भगवान् राम भाइयोंसहित विहार कर रहे हैं ॥ २ ॥ भगवान्‌के अरुण चरणोंमें अङ्कुश, ध्वजा, कमल और वज्रके मनोहर चिह्न तथा अत्यन्त मनोहर ध्वनि करनेवाले नूपुर शोभायमान हैं। इसी प्रकार वे कटि-प्रदेशमें अति विचित्र किंकिणीजाल, शंखसदृश ग्रीवामें मनोहर मालाएँ, विशाल वक्षःस्थलपर 'बघनहा' तथा करकमलमें कङ्कण धारण किये हुए हैं ॥ ३ ॥ प्रभुकी ठोड़ी, नासिका, कपोल, ललाटपर सुशोभित तिलक, भृकुटि एवं कर्ण अत्यन्त शोभायमान हैं तथा अधरपुटके बीच सुन्दर दन्तपंक्तिकी भी बड़ी अनुपम छबि है, मानो अरुण कमलके बीचमें अत्यन्त शुभ्रवर्ण कुन्दकलीकी दो-दो पंक्तियाँ हों ॥ ४ ॥ बालरूप रामकी चिकनी अलकावली मानो भ्रमरोंकी मण्डली है और उनकी किलकारी भौंरोंकी गुञ्जार है। भगवान् दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको और टकटकी लगाकर देखते हुए प्रसन्न हो-होकर पुलकित होते हैं; अतः माताने हृदयमें रसभङ्गकी आशंकाकर [अर्थात् यह सोचकर कि कहीं नजर न लग जाय] उन्हें गोदीमें उठा लिया ॥ ५ ॥ जिसके लिये सनकादि, महादेवजी, नारदादि देवर्षि तथा शुक आदि मुनीश्वरगण काम, क्रोध और लोभको भस्म करके तरह-तरहकी योगसाधना करते हैं उन्हीं परम उदार, संसारभयहारी तथा तुलसीदासके भयको दूर करनेवाले प्रभुने दशरथजीके घर लीलावतार धारण किया है ॥ ६ ॥

राग कान्हरा

[२६]

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।

नील जलद तनु स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए।१।
बंधुक सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिबर-कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए॥२॥
कटि मेखल, बर हार ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए॥३॥
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका, श्रवन, कपोल मोहि अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहु जुगल जलजाए॥४॥
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसाके चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तमके गन आए॥५॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलदपर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए॥६॥
अंग अंगपर मार-निकर मिलि छबिसमूह लै लै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो बिधि होहिं बनाए॥७॥

आँगनमें घुटनों दौड़े फिर रहे हैं। नील मेघके समान श्यामशरीर बालक रामका मुख देखकर माताने उन्हें अपने पास बुलाया॥ १॥ प्रभुके दुपहरियाके फूलके समान अरुण चरणकमलोंमें अङ्कुश आदि चिह्न सुशोभित हैं तथा उनमें जो नूपुरकी ध्वनि होती है वह ऐसी जान पड़ती है मानो भगवान्‌ने घोंसले रचकर उनमें मुनिजनरूप कलहंसोंको शरण देकर बसाया है॥ २॥ प्रभुके कटिप्रदेशमें मेखला, शंखसदृश

ग्रीवामें सुन्दर हार और सुन्दर भुजाओंमें आभूषण पहनाये गये हैं तथा वक्षःस्थलमें मनोहर श्रीवत्सचिह्न, व्याघ्रनख और अनेकों मणियोंसे जड़ा हुआ सुवर्णमय कठला सुशोभित है ॥३॥ प्रभुकी सुन्दर ठोड़ी, दन्तावली, अधरपुट, नासिका, कर्ण और कपोल मुझे बड़े ही प्रिय हैं। भगवान्‌की मनोहर भृकुटियाँ करुणारसपूर्ण हैं तथा नेत्र मानो दो कमलकोश ही हैं ॥ ४ ॥ विशाल भालपर अति सुन्दर श्रेष्ठ लटकन लटका हुआ है और बाल्यावस्थाका सुन्दर केशकलाप शोभायमान है, सो ऐसा जान पड़ता है मानो दोनों गुरु (बृहस्पति और शुक्र), शनि एवं मङ्गलको आगेकर अन्धकारसमूह चन्द्रमासे मिलने आये हों [यहाँ लटकनमें जो सुवर्ण है वह बृहस्पति है, हीरा शुक्र है, लाल मङ्गल है और नीलमणि शनि है। उन्हें आगेकर केशकलापरूप अन्धकारसमूह मुखरूप चन्द्रमासे मिलने आया है] ॥ ५ ॥ जिस समय मैयाने पीताम्बर उढ़ाया उस समय तो एक अद्भुत उपमा हो गयी मानो [श्यामशरीररूप] नील मेघपर [स्वर्णमय आभूषणरूप] नक्षत्रगणको देदीप्यमान देख चञ्चला चपलाने अपना स्वभाव छोड़कर उसे छिपा लिया ॥ ६ ॥ भगवान्‌के अङ्ग-अङ्गपर मानो कामसमूह अपने छबिपुञ्जको लेकर छाये हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीके रूप और गुण यदि विधाताके बनाये हुए हों तो कुछ कहे भी जा सकते हैं ॥ ७ ॥

राग केदारा

[२७]

रघुबर बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुखकी सींव, कोटि मनोज सोभाहरनि ॥ १ ॥

बसी मानहु चरन-कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि॥ २॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार सिसु तरु फर्‌यो है अदभुत फरनि॥ ३॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥ ४॥
लसत कर-प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जनु जलज-संपुट सुछबि भरि भरि धरति उर धरनि॥ ५॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ-घरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु-किलकनि ललित लरखरनि॥ ६॥

रघुनाथजीकी बालछबिका वर्णन करके कहता हूँ, वह सकल सुखकी सीमा और करोड़ों कामदेवोंकी आभाका हरण करनेवाली है॥ १॥ अरुणता मानो सूर्यको त्यागकर उनके चरणकमलोंमें ही आ बसी है तथा मनोहर नूपुर और किङ्किणीका रुनझुन शब्द मनको हरे लेता है॥ २॥ अति मनोहर और मृदुल श्याम शरीरपर आभूषणोंकी सजावट ऐसी जान पड़ती है मानो अति सुन्दर शृङ्गाररसका नन्हा-सा पौधा अद्भुत फलोंसे सम्पन्न हुआ हो॥ ३॥ उपमारूपी युद्धमें प्रभुकी भुजाओंने सर्पोंको, नेत्रोंने कमलोंको तथा मुखने चन्द्रमाको जीत लिया है। इसीसे वे क्रमशः बिल, जल तथा आकाशमें जा बसे हैं। यह देखकर अन्य उपमाएँ भी डरकर दूर भाग गयी हैं॥ ४॥ मणिमय आँगनमें घुटनों चलते समय जो हाथोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह ऐसा जान पड़ता है मानो धरणी छबिको कमलकोशमें भर-भरकर अपने हृदयमें धारण कर

रही हो ॥५॥ उस समय महाराज दशरथकी गृहलक्ष्मी माता कौसल्याजी अपने लालको देखकर अपने पुण्यफलका अनुभव कर रही थीं। तुलसीदासके हृदयमें भी प्रभुका वह किलकना और आनन्ददायक लड़खड़ाना बसा रहता है ॥ ६ ॥

[२८]

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप-घरनि ॥ १ ॥
बाल भूषन बसन, तन सुंदर रुचिर रजभरनि।
परसपर खेलनि, अजिर उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥ २ ॥
झुकनि, झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि ॥ ३ ॥
सखि-बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहु करनि ॥ ४ ॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भये चहै तरनि ॥ ५ ॥

[किसी समय माता कौसल्याको अन्यमनस्का देखकर कोई सखी कहती है—] अरी राजरानी! तू तनिक इन रघुवीरोंकी ओर देख तो सही। तुझे श्रीशङ्करने मानों चारों हाथसे फल प्रदान किये हैं ॥१॥ तू इनके बालोचित वस्त्र और आभूषण, सुन्दर शरीरकी दर्शनीय धूलि-धूसरता, आपसका खेल-कूद, आँगनमें उठ-उठकर चलना और फिर गिर-गिर पड़ना, झुकना, झाँकना, परछाईं देखकर किलकना, नाचना, हठ करके लड़ना, तोतली बोली बोलना तथा मनको हरनेवाली मोहिनी चितवन तो देख ॥ २-३ ॥ सखीके ये वचन सुनकर कौसल्याजी अपने लालको इस

प्रकार दोनों भुजाओंसे खींचकर गोदमें उठा लेती हैं, जैसे पाँसे जीतनेवाला अपने दाँवको समेटता है ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस चरित्रको देवता लोग बादलोंकी ओटमें खड़े होकर देख रहे हैं और [इसे निरन्तर देखते रहनेकी इच्छासे] देवता तो [सहस्राक्ष] इन्द्र होना चाहते हैं और इन्द्र सूर्य होनेके लिये उत्सुक हैं ॥ ५ ॥

राग जैतश्री

[२९]

भूमितल भूपके बड़े भाग ।
राम लषन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥ १ ॥
बाल बिभूषन लसत पायँ मृदु मंजुल अंग-बिभाग ।
दसरथ-सुकृत मनोहर बिरवनि रूप-करह जनु लाग ॥ २ ॥
राजमराल बिराजत बिहरत जे हर-हृदय-तड़ाग ।
ते नृप-अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग ॥ ३ ॥
सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन, कहैं सुर किंनर नाग ।
'ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग' ॥ ४ ॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम-प्रयाग ।
तुलसी फल ताके चारयो मनि मरकत पंकजराग ॥ ५ ॥

इस पृथिवीतलमें राजा दशरथके बड़े भाग्य हैं, जो बालक राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहारते हैं ॥ १ ॥ बालकोंके चरणोंमें तथा अति मृदुल और सुन्दर अङ्गप्रत्यङ्गोंमें जो यथास्थान विभाग करके बालोचित आभूषण सजाये गये हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महाराज दशरथके मनोहर पुण्यरूपी पौधोंमें

रूपकी कलियाँ आयी हों ॥ २ ॥ जो [भगवान् रामरूप] राजहंस श्रीशङ्कर-के हृदयसरोवरमें विहार करता है वही इस समय चञ्चल कौएको पकड़नेके लिये महाराज दशरथके आँगनमें तेज़ीसे घुटनों दौड़ रहा है ॥३॥ यह देखकर सिद्धलोग मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं और मुनिजन महाराज दशरथके भाग्यकी बड़ाई करते हैं और देवता, किन्नर तथा नाग यह कहते हैं कि इन बालकोंको तो हम पक्षी होकर महाराजके पुर, उपवन एवं बगीचोंमें रहते हुए निहारा करें ॥ ४ ॥ महाराज दशरथ और रानियोंने अपने कुटुम्बियोंके सहित प्रेमरूप प्रयागमें स्नान किया है। तुलसी-दासजी कहते हैं कि ये मरकत और पद्मरागमणिकी-सी आभावाले चारों बालक इस पुण्यके ही फल हैं ॥ ५ ॥

राग आसावरी

[३०]

छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई।
सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने
लरिका लखि मुदित मातुसमुदाई ॥ १ ॥
बाल बसन भूषन धरे, नख-सिख छबि छाई।
नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल
मालनि मानो है देहनितें दुति पाई ॥ २ ॥
ठुमुकु ठुमुकु पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई।
भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि, किलकनि,
अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई ॥ ३ ॥

जननि सकल चहुँ ओर आलबाल मनि-अँगनाई।
दसरथ-सुकृत बिबुध-बिरवा बिलसत
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई॥ ४॥
हरि बिरंचि हर हेरि राम प्रेम-परबसताई।
सुख-समाज रघुराजके बरनत
बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई॥ ५॥
सुमिरत श्रीरघुबरनकी लीला लरिकाई।
तुलसिदास अनुराग अवध आनँद
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई॥ ६॥

अति सुन्दर चारों भाई मगन होकर आँगनमें खेल रहे हैं। भाई शत्रुघ्नके सहित भरतलाल, लक्ष्मण तथा राम—इन सुन्दर बालकोंको देख-देखकर सब माताएँ अति आनन्दित होती हैं॥ १॥ चारों बालक बालोचित वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं, उनपर नखसे सिखतक शोभा छायी हुई है। कामदेवकी नील और पीत कमलकी मनोहर मालाओंने मानो इनके शरीरोंसे ही शोभा पायी है॥ २॥ इनके ठुमक-ठुमककर चरण रखने, नाचने, लड़खड़ाने, दौड़ने, मिलने, रूठने, प्रसन्न होने, किलकने, देखने तथा बोलनेकी सुन्दरताका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ३॥ राजभवनके मणिमय आँगनरूप आलबालमें दशरथजीके पुण्य-कल्पतरुको बढ़ता देख मानो विधाताने मातारूप सुन्दर बाड़ रचकर उसे चारों ओरसे रक्षाहेतु घेर दिया है॥ ४॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भगवान् रामकी प्रेम-परवशता देख विशुद्ध मनसे रघुराज

(दशरथजी) की सुखराशिका वर्णन करते हैं तथा देवताओंने फूलोंकी झड़ी लगा रखी है ॥ ५ ॥ उन रघुकुलश्रेष्ठ बालकोंकी बाललीलाओंका स्मरण कर तुलसीदासजी उस समयकी ही भाँति अब भी अघाकर अनुरागरूप अवधमें आनन्दका अनुभव ले रहे हैं ॥ ६ ॥

राग बिलावल

[३१]

आँगन खेलत आनँदकंद । रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद ॥ १ ॥
सानुज भरत लषन सँग सोहैं । सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ॥
तन-दुति मोरचंद जिमि झलकैं । मनहु उमगि अँग अँग छबि छलकैं ॥२॥
कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजैं । पंकज पानि पहुँचियाँ राजैं ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन-सरोज मयन-सरसीके ॥ ३ ॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा । ललित बदन, बलि, बालमुकुंदा ॥ ४ ॥
कुलही चित्र बिचित्र झँगूलीं । निरखत मातु मुदित मन फूलीं ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत । कलबल बचन तोतरे बोलत ॥ ५ ॥
किलकत, झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि । देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम-पुलकि तुलसी है ॥ ६ ॥

रघुकुलरूप कुमुदको आनन्दित करनेवाले मनोहर मयंक आनन्दकन्द भगवान् राम आँगनमें खेल रहे हैं ॥१॥ शत्रुघ्नसहित भरत और लक्ष्मणजी संगमें सुशोभित हैं और चारों भाई बालोचित आभूषणोंसे भूषित हैं और जो मोहे डालते हैं। शरीरकी कान्ति ऐसी है मानो मयूरपिच्छकी चन्द्रिकाएँ झलक रही हों तथा अङ्ग-अङ्गसे छबि मानो उमँग-उमँगकर

छलकी पड़ती हो ॥ २ ॥ कमरमें करधनीकी और चरणोंमें नूपुरकी ध्वनि हो रही है, करकमलमें पहुँचियाँ शोभा दे रही हैं। कण्ठमें कठला तथा व्याघ्र-नख सुन्दर मालूम होते हैं तथा नयनकमल मानो कामसरोवरसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ माथेपर छोटी-छोटी अलकें तथा [सुवर्णमय] लटकन शोभायमान है और मुखमें दो-दो छोटे-छोटे सुन्दर दाँत दमक रहे हैं। [माथेपर लगी हुई] काजलकी मनोहर बेंदी मुनियोंका मन चुराये लेती है। इस बालमुकुन्दके मनोहर मुखारविन्दपर बलिहारी है ॥ ४ ॥ रंग-बिरंगी टोपी और अनूठी झँगुली देखकर माता प्रसन्न मनसे फूली फिर रही है। बालक राम मणिमय खम्भ पकड़कर पैरों-पैरों चलते हैं और अस्पष्ट तथा मनोहर तोतले वचन बोलते हैं ॥ ५ ॥ बार-बार किलकते हैं और झुक-झुककर अपने प्रतिबिम्बोंकी ओर ताकते हैं। इस प्रकार माता-पिता-को खूब ही आनन्द प्रदान करते हैं। उस सुन्दरताके स्मरणमात्रसे हृदयमें हुलास होता है और तुलसीदास भी प्रेमसे पुलकित हो उसका गान करता है ॥ ६ ॥

राग कान्हरा

[३२]

ललित सुतहि लालति सचु पाये।
कौसल्या कल कनक अँजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये ॥१॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाये।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरिनख मनि-जरित जराये ॥२॥
पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाये।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुखछबि, अरुन अधर चित लेत चोराये ॥३॥

चिबुक कपोल नासिका सुंदर, भाल तिलक मसिबिंदु बनाये।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाये ॥४॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाये।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाये ॥५॥
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाये।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाये ॥६॥
देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराये।
तुलसिदास जे रसिक न यहि रस ते नर जड जीवत जग जाये ॥७॥

कौसल्याजी आनन्दित होकर अपने मनोहर लालका लालन करती हैं, अपने सुवर्णमय आँगनमें वे अँगुली पकड़कर उसे चलना सिखाती हैं ॥ १ ॥ धीरे-धीरे रेंगानेपर उनकी कमरमें किंकिणी और चरणोंमें पैंजनीका शब्द होता है। उनके हाथोंमें पहुँची और कण्ठमें कठुला तथा मणियोंसे जड़ा हुआ व्याघ्रनख शोभायमान है ॥ २ ॥ उनके अति सुन्दर श्याम शरीरपर पीले रंगकी बड़ी अनूठी और पवित्र झँगुलिया सुशोभित है। दो-दो दाँतोंसे युक्त मनोहर मुखच्छबि तथा अरुण अधर मानो चित्तको चुराये लेते हैं ॥ ३ ॥ उनकी ठोड़ी, कपोल और नासिका अति सुन्दर हैं तथा माथेपर तिलक और काजलकी बेंदी लगी हुई है। उनके अञ्जनरञ्जित मनोहर नयन ऐसे शोभायमान हैं कि उन्होंने खञ्जन, कमल और मीनका मद भी चूर कर दिया है ॥ ४ ॥ माथेपर मनोहर लटकन है, बाँकी भ्रुकुटियाँ हैं तथा सिरपर सुन्दर गुथी हुई चोटी विराजमान है। माताकी चुटकी सुनकर वे किलक-किलककर नाचने लगते हैं और हाथ छुड़ा लेनेपर [गिर न पड़ें, इस भयसे] माताएँ डरने लगती हैं ॥ ५ ॥ गिर पड़नेपर घुटने टेककर

पुनः उठते हैं और जब माता पूआ दिखाती हैं तो तोतली बोलीमें अपने छोटे भाइयोंको बुलाने लगते हैं। इस प्रकारकी बाललीलाएँ देखकर सब माताएँ प्रेममें डूब जाती हैं। उनके हृदयमें आनन्द नहीं समाता ॥ ६ ॥ मुनिजन भी योग, समाधि और वैराग्यको भूलकर बादलों-की ओटसे यह सब चरित्र देखते हैं। तुलसीदास कहते हैं, जो लोग इस रसके रसिक नहीं हैं वे मूर्ख इस संसारमें व्यर्थ ही जीवन धारण करते हैं ॥ ७ ॥

राग ललित

[३३]

छोटी छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनिपर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकु ठुमुकु चलैं,
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर ॥ १ ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर ॥ २ ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि-मन-हर।
अंजन-रंजित नैन, चित चौरै चितवनि,
मुख-सोभापर वारौं अमित असमसर ॥ ३ ॥

चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता,
बालकेलि गावति मल्हावती सुप्रेम-भर।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसीके मन बसैं तोतरे बचन बर॥४॥

छोटे-छोटे चरण हैं, उनमें नन्हीं-नन्हीं छबीली अँगुलियाँ हैं, जिनकी नखद्युति ऐसी जान पड़ती है मानो कमल-दलपर मोती सुशोभित हों। मनोहर आँगनमें खेलते समय जब ठुमुक-ठुमुक चलते हैं तो पैरोंसे पैजनियोंका सुमधुर झुनझुन-झुनझुन शब्द होता है॥१॥ कमरमें सुवर्णकी मणिजटित मनोहर किंकिणी है तथा हाथोंमें अति सुन्दर पहुँचियाँ हैं। साँवरे शरीरपर अति झीनी पीतवर्ण झँगुलिया ऐसी खुलती है मानो किसी छोटे बादलने बाल-विद्युत् ओढ़ रक्खी हो॥२॥ छातीपर व्याघ्रनख है, कण्ठमें कठुला पड़ा हुआ है तथा माथेपर मुनियोंके मनको चुरानेवाले गभुआरे केश, चोटी, लटकन और काजलकी बेंदी विराजमान हैं। भगवान्‌के नयन अञ्जन-रञ्जित हैं, उनकी चितवन चित्तको चुराये लेती है, उनकी मुखच्छबिपर तो मैं अनन्त कामदेवोंको निछावर करता हूँ॥३॥ माता कौसल्या चुटकी बजा-बजाकर नचाती हैं और प्रेममें भरकर बाललीला गाती हुई दुलारती हैं। भगवान् किलक-किलककर हँसते हैं, उनके मुखमें दो-दो दाँत शोभायमान हैं। तुलसीदासके हृदयमें उनके अति मनोहर तोतले वचन बसे हुए हैं॥४॥

[३४]

सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम सरोज बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ॥१॥

अरुन चरन नखजोति जगमगति, रुनझुनु करति पाँय पैंजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित रटति कटि किंकिनि,कलित पीतपट-तनियाँ २
पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक, रद,अधर मनोहर,ललित नासिका लसति नथुनियाँ ॥३॥
बिकट भ्रुकुटि, सुखमानिधि आनन, कल कपोल,काननि नगफनियाँ।
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ ॥४॥
मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन-हरनि हँसनि किलकनियाँ।
बालसुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ ॥५॥
सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छबि चंदबदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ ॥६॥

[कोई सखी कहती है–] अरी सुमुखि! महाराज दशरथ रामको गोदमें लिये हुए हैं, तू आदरपूर्वक उनका अनुपम रूप तो देख। उनका शरीर अति सुन्दर नील कमलकी-सी आभावाला है तथा वे नखसिखसे अति सुन्दर और सब प्रकारके सुख देनेवाले हैं ॥ १ ॥ उनके अरुण चरणोंमें नखोंकी ज्योति जगमगा रही है, पैरोंमें पैंजनियाँ रुनझुन शब्द करती हैं, कमरमें मणि और रत्नजटित सुवर्णमयी किंकिणी झनकार कर रही है तथा शरीरमें पीताम्बर सुशोभित है ॥ २ ॥ इसी प्रकार हाथोंमें पहुँची, छातीपर पदिक और व्याघ्रनख तथा कण्ठमें कठुला और मनोहर गजमुक्ता शोभायमान हैं। भगवान्के चिबुक, दाँत और ओठ अत्यन्त मनोहर हैं तथा उनकी सुन्दर नासिकामें नथुनी सुशोभित है ॥ ३ ॥ प्रभुकी भ्रुकुटि विकट, मुखमण्डल सुन्दरताकी निधि तथा कपोल अति सुन्दर हैं। उनके कानोंमें नागफनी (कर्णभूषणविशेष) तथा मस्तकपर तिलक और काजलकी बेंदी विराज-

मान है एवं सिरपर लाल चौतनी टोपी सुशोभित है ॥ ४ ॥ उनकी मनमोहिनी तोतली बोली, हँसी और किलकारी मुनियोंके मनको हर लेनेवाली है तथा बालोचित चञ्चलतायुक्त नयन और सुन्दर चितवन चित्तको चुराये लेते हैं ॥ ५ ॥ सखीके ये वचन सुनकर चन्द्रमुखी कुलकामिनियाँ झरोखोंमेंसे रामचन्द्रकी छबि निहारती हैं। तुलसीदास-जी कहते हैं, प्रभुको देखकर वे सब प्रेममें मग्न हो गयीं। प्रेमपरवश हो जानेके कारण उन्हें अपनी कुछ भी सुध न रही ॥ ६ ॥

राग बिलावल

[३५]

सोहत सहज सुहाये नैन ।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कबि दैन ॥१॥
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आये लैन ।
बड़ो लाभ, लालची लोभबस रहि गये लखि सुखमा बहु मैन ॥२॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन ।
बालक-रूप अनूप राम-छबि निवसति तुलसिदास-उर-ऐन ॥३॥

भगवान्‌के स्वभावसे ही सुन्दर नयन शोभायमान हैं। जिस समय कवि उनकी उपमा देना चाहता है उस समय खञ्जन, मीन और कमल सकुचा जाते हैं ॥ १ ॥ भगवान्‌के सम्पूर्ण सुन्दर अंगोंमें बालोचित आभूषण शोभायमान हैं, मानो उनसे शोभा लेनेके लिये अत्यन्त लालची कामदेव ही अनेक रूप धारणकर वहाँ आया हो और बहुत लाभ जानकर अत्यन्त शोभा देख लोभवश वहीं रह गया हो ॥ २ ॥ प्रातःकाल होते ही राजाने आनन्दमें भरकर उन्हें गोदमें उठा लिया और

उनका मुख निहारने तथा मनोहर वचन सुनने लगे। बालरूप भगवान् रामकी अनुपम छवि सर्वदा तुलसीदासजीके हृदय-मन्दिरमें निवास करती है ॥ ३ ॥

राग बिभास

[३६]

भोर भयो जागहु, रघुनंदन ! गत-ब्यलीक भगतनि उर-चंदन ॥१॥
ससि करहीन, छीनदुति तारे। तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ! ॥२॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने। लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥३॥
अनुज सखा सब बोलनि आये। बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाये ॥४॥
मनभावतो कलेऊ कीजै। तुलसिदास कहँ जूँठनि दीजै ॥५॥

[माता कहती है—] हे रघुनन्दन ! सवेरा हो गया, अब उठ बैठो। तुम कपटरहित भक्तोंके हृदयके चन्दन हो ॥ १ ॥ चन्द्रमाकी किरणें फीकी पड़ गयीं और तारे तेजहीन हो गये। हे मेरे प्यारे ! सुनो, कुक्कुट बोलने लगे ॥ २ ॥ कमल खिलने लगे, कुमुदगण मुरझा गये तथा भ्रमरवृन्द पराग लेकर उड़ने लगे ॥ ३ ॥ देखो, तुम्हारे सब अनुज और मित्रगण बुलाने आये हैं तथा वन्दीजन अति पवित्र गुण-गाथा गा रहे हैं ॥ ४ ॥ अब तुम मनभावता कलेऊ करो और तुलसी-दासको अपनी जूठन दो ॥ ५ ॥

[३७]

प्रात भयो तात, बलि, मातु बिधु-बदनपर
मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे !

सूत-मागध-बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु अनुज प्रियतम तिहारे ॥ १ ॥
कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछबि,
अरुनमय गगन राजत रुचि तारे।
मनहुँ रबि बाल मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ॥ २ ॥
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहँग बारे।
मनहुँ मुनिबृंद रघुबंसमनि ! रावरे
गुनत गुन आश्रमनि सपरिवारे ॥ ३ ॥
सरनि बिकसित कंजपुंज मकरंद बर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुँजारे।
मनहुँ प्रभुजनम सुनि चैन अमरावती,
इंदिरानंद-मंदिर सँवारे ॥ ४ ॥
प्रेम-संमिलित बर बचन-रचना अकनि
राम राजीव-लोचन उघारे।
दास तुलसी मुदित, जननि करै आरती,
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥ ५ ॥

हे तात ! सबेरा हो गया, माता बलिहारी जाती है । प्राणप्यारे लाल ! अब उठो । मैं तुम्हारे मुखचन्द्रपर करोड़ों कामदेवोंको निछावर करती हूँ । देखो, सूत, मागध और बन्दीजन तुम्हारी विरदावली गा रहे हैं तथा द्वारपर तुम्हारे अनुज और प्रियतम साथी बालक खड़े

हैं ॥ १ ॥ चन्द्रमाकी कान्तिको मन्द हुई देख चकवा-चकवीका शोक दूर हो गया तथा अरुण आकाशमें तारागण ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्यरूप बाल मृगराजने अन्धकाररूप गजराजको दलितकर उसके अत्यन्त सुन्दर मुक्ताफल बखेर दिये हों ॥ २ ॥ सुनो, कुक्कुट, शुक, कलहंस, कोयल और मयूर आदि पक्षियोंके बच्चे कैसा सुन्दर कलरव कर रहे हैं। हे रघुवंशमणि! वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो मुनिजन अपने आश्रमोंमें परिवारसहित आपका गुणगान कर रहे हों ॥ ३ ॥ सरोवरोंमें कमल-समूह विकसित हो रहे हैं। उनके श्रेष्ठ मकरन्दके लिये अति मनोहर मधुकर सुमधुर गुंजार कर रहे हैं; मानो प्रभुका जन्मवृत्तान्त सुन इन्द्रलोकमें उत्सव हो रहा है और श्रीलक्ष्मीजीने अपने आनन्दभवन सजाये हैं ॥ ४ ॥ यह प्रेममिश्रित मनोहर वचनावलि सुन भगवान् रामने अपने कमल नयन खोले। तुलसीदासजी कहते हैं—जिस समय स्वभावसे ही सुन्दर भगवान् रामने आँगनमें पाँव रक्खे उस समय माता प्रसन्न चित्तसे आरती करने लगी ॥ ५ ॥

[३८]

जागिये कृपानिधान जानराय रामचंद्र!
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥ १ ॥
अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससांक किरनहीन,
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे।
मनहुँ ग्यानघन-प्रकास, बीते सब भव-बिलास
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥ २ ॥

बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे।
मनहुँ बेद-बंदी-मुनिबृंद-सूत-मागधादि
बिरुद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥ ३ ॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥ ४ ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद,
छूटे भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे ॥ ५ ॥

माता बार-बार कहती है—हे सुजान शिरोमणि कृपानिधान रामचन्द्र! जागो। प्यारे! देखो, सबेरा हो गया। आप कमलके समान विशाल नयनोंवाले तथा प्रेमरूप वापीके हंस हैं। आपके मनोहर मुखारविन्दपर करोड़ों कामदेव निछावर हैं ॥ १ ॥ देखो, बालसूर्य उदित हुआ है, रात्रि बीत चुकी है, चन्द्रमा किरणहीन हो चला है, दीपकका प्रकाश मन्द पड़ गया है और तारामण्डलकी ज्योति फीकी पड़ गयी है; मानो ज्ञानघनका प्रकाश होनेपर सम्पूर्ण भवविलास शान्त हो गये हों तथा आशा और भयरूप अन्धकारको सन्तोषरूप सूर्यके तेजने दग्ध कर दिया हो ॥ २ ॥ हे मेरे प्यारे प्राणजीवनधन! तुम कान लगाकर सुनो। देखो, ये जो मुखर पक्षिसमूह मधुर शब्द कर रहे हैं, सो ऐसे

जान पड़ते हैं मानो वेद, बन्दीजन, मुनिवृन्द, सूत और मागध आदि 'हे कैटभारे! तुम्हारी जय हो, जय हो', ऐसा कहकर बिरदका बखान करते हों ॥ ३ ॥ देखो, कमलवृन्द खिल गये और [उनमें सायंकालको मुँदे हुए] भ्रमरगण उन्हें छोड़कर सुमधुर ध्वनि करते अलग-अलग चल दिये, जैसे वैराग्य होनेपर आपके प्रेमोन्मत्त भक्तजन सब प्रकारके शोकोंके कूपरूप घरको त्यागकर आपका गुणगान करते फिरते हैं ॥४॥ माताके ये अति मधुर और प्रिय वचन सुनते ही अतिशय दयालु भगवान् राम जग पड़े। इससे सारे जंजाल दूर हो गये तथा सब प्रकारके दुःख-समूह दलित हो गये। तुलसीदास कहते हैं, भगवान्‌का मुखारविन्द देखकर सभी भक्तजन अति आनन्दित हुए और उनके भ्रमजनित बन्धन छूट गये एवं राग-द्वेषादि भारी द्वन्द्व अत्यन्त मन्द हो गये ॥५॥

[३९]

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृपभवन-द्वार,
रूपसील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे॥ १ ॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे॥ २ ॥
उपबन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे।

तुलसिदास संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ॥ ३ ॥

महाराज दशरथके राजभवनके द्वारपर खड़े हुए अन्य राजकुमार पुकारते हैं—'हे रूप, गुण और शील आदिमें उदार, मेरे प्रिय रघुनन्दन! जागो। देखो, [चन्द्रमाके अस्त हो जानेसे] कुमुदिनी और चकोर पक्षी व्याकुल हो रहे हैं, चकवोंको सबेरा हुआ देख बड़ा आनन्द है, कुक्कुट तथा अन्य पक्षी शोर मचा रहे हैं, तथा भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं' ॥ १ ॥ तब भगवान्‌ने अति स्वादिष्ट और मधुर भोजन कर, सब अंगोंको आभूषणोंसे सजाकर, अनुज तथा अन्य बालकोंको साथमें लेकर, जो सभी अनेक प्रकारके शृङ्गार किये हुए थे, हाथमें शत्रुसमूहका मान मर्दन करनेवाला सुन्दर धनुष ले, कमरमें पीला दुपट्टा और तीखे तीरोंसे भरा हुआ तरकस धारण कर परमकृपालु भगवान् राम मृगया-विहार करनेके लिये उपवनको चले। उस समय उनका मुख निहारकर माताने अपने बड़े पुण्य समझे। तुलसीदासजी कहते हैं—हे नाथ! मुझे दीन जानकर अभय कीजिये और अपने संग लगा लीजिये। मुझे ऐसी निर्मल बुद्धि दीजिये जिससे मैं आपके पवित्र चरित्र गा सकूँ ॥ २-३ ॥

राग नट

[४०]

खेलन चलिये आनँदकंद।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृंद ॥ १ ॥
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास।
बपुष-बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास ॥ २ ॥

बंधु-बचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल।
ललित लघु सर-चाप कर, उर-नयन-बाहु बिसाल ॥ ३ ॥
चलत पद प्रतिबिंब राजत अजिर सुखमा-पुंज।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज ॥ ४ ॥
निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात।
हरष-बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु, तात' ॥ ५ ॥
देखि तुलसीदास प्रभु-छबि रहे सब पल रोकि।
थकित निकर चकोर मानहुँ सरदइंदु बिलोकि ॥ ६ ॥

हे आनन्दकन्द! अब खेलनेके लिये चलिये। आपके प्रिय सखा अनेकों बालकवृन्द राजद्वारपर खड़े हैं ॥ १ ॥ आपके दर्शनोंके लिये आपके भक्तरूप चतुर चातक अत्यन्त तृषित हैं। आप अपने शरीररूप मेघसे छबिरूप जल बरसाकर हमारे नेत्रोंकी पिपासा शान्त कीजिये ॥ २ ॥ भरत आदि भाइयोंकी ऐसी विनीत प्रार्थना सुनकर बालकेसरीके समान भगवान् राम उठे! उनके करकमलोंमें अति सुन्दर छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं तथा उनके हृदय, नेत्र और बाहु विशाल हैं ॥ ३ ॥ (मणिमय) आँगनमें चलते समय जो प्रभुके चरणोंका अति सुन्दरतामय प्रतिबिम्ब पड़ता है सो ऐसा जान पड़ता है मानो पृथिवी परम प्रेमवश पद-पदपर कमलका आसन देती है ॥ ४ ॥ उसकी अत्यन्त विचित्र सुन्दरता देखकर माताएँ चकित होकर निहारती हैं। उस समय हर्षवश उनसे यह भी नहीं कहा जाता कि 'लाल! अपने घरमें ही खेलो' ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं, उस समय प्रभुकी शोभा देखकर सबने पलक मारना छोड़ दिया, मानो शरच्चन्द्रको देखकर चकोरसमूह थकित हो गया हो ॥ ६ ॥

[४१]

बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ॥ १ ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।
पीत-पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु-बान ॥ २ ॥
लोचननिको लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास उर अवधेसके सुत चारि ॥ ३ ॥

संगमें भरत आदि अनुज तथा अनेकों बालकोंको लिये नवीन नील मेघके समान श्यामशरीर भगवान् राम अयोध्याकी गलियोंमें विहार कर रहे हैं ॥ १ ॥ उनके नवीन लाल कमलसदृश चरणोंमें सुनहरी जूतियाँ सुशोभित हैं, कमरमें पीताम्बर तथा श्रेष्ठ तरकस है तथा हाथोंमें अति सुन्दर छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं ॥ २ ॥ उनकी छबि निहार-कर नगरके नर-नारी अपने नेत्रोंका फल पाते हैं । तुलसीदासके हृदयमें अयोध्यापति महाराज दशरथके चारों बालक बिराजते हैं ॥ ३ ॥

[४२]

जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लालु ।
तैसेई भरत सील-सुखमा-सनेह-निधि, तैसेई सुभग सँग सत्रुसालु ॥१॥
धरे धनु-सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु ।
अंग अंग भूषन जरायके जगमगत, हरत जनके जीको तिमिरजालु॥२॥
खेलत चौहट घाट बीथी बाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु ।
सोभा-दान दै दै सनमानत जाचकजन करत लोक-लोचन निहालु॥३॥

रावन-दुरित-दुख दलैं सुर कहैं आजु 'अवध सकल सुखको सुकालु।'
तुलसी सराहैं सिद्ध सुकृत कौसल्या जूके, भूरि-भाग-भाजन सुवालु ॥४॥

जैसे सुन्दर भगवान् राम हैं वैसे ही मनोहर लषणलाल भी हैं तथा वैसे ही शील, सुखमा और स्नेहके भण्डार श्रीभरतजी हैं और उनके साथ वैसे ही सुन्दर श्रीशत्रुघ्नजी भी हैं ॥ १ ॥ चारों भाई हाथमें धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे तथा पीताम्बर ओढ़े अति मनोहर चाल चलते हैं। उनके अंग-अंगमें जड़ाऊ आभूषण जगमगाते हैं, जो भक्तोंके हृदयका अन्धकारसमूह हर लेते हैं ॥ २ ॥ भगवान् शङ्करके सुप्रेमरूपी मानसरोवरके हंस प्रभु राम बाजार, घाट, गली और वाटिकाओंमें खेलते फिरते हैं। वे शोभारूप दान देकर अपने अनुरक्त याचकोंका सम्मान करते हैं तथा लोगोंके नेत्रोंको निहाल करते हैं ॥ ३ ॥ देवता लोग कहते हैं, आज अयोध्यामें तो सब प्रकार सुखमय सुकाल है, किन्तु अब रावणरूप दुरित-दुःखका दलन होना चाहिये। तुलसीदास कहते हैं कि महाभाग्यशाली महाराज दशरथ और कौसल्याजीके सुकृतोंकी सिद्धजन भी सराहना करते हैं ॥ ४ ॥

राग ललित

[४३]

ललित-ललित लघु-लघु धनु-सर कर,
तैसी तरकसी कटि कसे, पट पियरे।
ललित पनही पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु, रहै नित नियरे ॥ १ ॥

पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,

कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कबि जियरे ।

सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल,

सुंदर बदन ठाढ़ सुरतरु सियरे ॥ २ ॥

सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,

देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।

खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि,

मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे ॥ ३ ॥

भगवान् राम हाथोंमें सुन्दर-सुन्दर छोटे-छोटे धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे तथा पीताम्बर पहने और पैरोंमें सुन्दर जूतियाँ धारण किये हैं। उनकी पैंजनी और किंकिणीकी ध्वनि सुनकर मन आनन्दित होता है और सर्वदा उनके समीप रहता है ॥ १ ॥ भुजाओंमें सुन्दर पहुँची तथा अंगद (बिजायठ) धारण किये हैं, वक्षःस्थलपर पदिक और हार सुशोभित है तथा उनके कुण्डल और तिलककी छवि कविके हृदयमें गड़ी जाती है। सिरपर लाल टोपी है, नेत्रकमल अति विशाल हैं तथा मुख अति सुन्दर है। ऐसे रूपसे भगवान् कल्पवृक्षकी छायामें खड़े हुए हैं ॥ २ ॥ अनुज और अन्य बालकोंके सहित सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् रामको नर-नारी इस प्रकार एकटक देखते रह जाते हैं जैसे हरिण दीपकको। इस प्रकार अवधकी गलियोंमें गोली, भँवरा, लट्टू और डोरीसे खेलती हुई प्रभुकी वह मधुर मूर्ति तुलसीदासके हृदयमें निवास करे ॥ ३ ॥

[४४]

छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी।
लसत झँगूली झीनी, दामिनिकी छबि छीनी,
सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी ॥ १ ॥
बय-अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग,
जोहे जिय आवति सनेहकी सरक सी।
मूरतिकी सूरति कही न परै तुलसी पै,
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥ २ ॥

हाथोंमें छोटा-सा धनुष, पैरोंमें छोटी-छोटी जूतियाँ तथा कमरमें छोटी-सी कछनी और एक छोटा-सा तरकस सुशोभित है। अति सुन्दर श्याम शरीरमें पीले रंगकी महीन झँगुली है, जिसने मानो बिजलीकी छबि छीन ली है तथा सिरपर जरीके कामकी पगिया विराजमान है ॥१॥ शरीरमें अवस्थाके अनुसार अनेक प्रकारके आभूषण हैं, जिन्हें देखकर हृदयमें प्रेमकी खुमारी-सी आती है। भगवान्‌की मनोहर मूर्तिकी सूरत तुलसीदाससे नहीं कही जाती। उसे वही जान सकता है जिसके हृदयमें उसका किञ्चित् वियोग पीड़ाके समान कसकता है ॥ २ ॥

राग टोड़ी

[४५]

राम-लषन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥ १ ॥

कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मनकसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।
कर-कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥ २ ॥
ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलत पेखक छाँह छये।
सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु-कुसुम-चये ॥ ३ ॥
एक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये।
एक कहत भइ हारि रामजूकी, एक कहत भइया भरत जये ॥ ४ ॥
प्रभु बकसत गज-बाजि, बसन-मनि, जय-धुनि गगन निसान हये।
पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गये ॥ ५ ॥
नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर-सिद्धनि बरदान दये।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे गावत-सुनत चरित नित ये ॥ ६ ॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती तेइ जे एहि रंग-रए ॥ ७ ॥

एक ओर राम और लक्ष्मण तथा दूसरी ओर भरत एवं शत्रुघ्नलाल हुए। उन्होंने सरयूतीरकी सुखदायक और समतल भूमिमें जाकर गिन-गिनकर साथी बाँट लिये ॥ १ ॥ फिर खेलमें रीझे हुए चारों भाई गेंदके खेलमें सधाये हुए घोड़ोंपर चढ़ फेंटा कसकर खम ठोकते हुए करकमलोंसे विचित्र चौगान खेलने लगे ॥ २ ॥ आकाशमें देवता-लोग विमानोंमें चढ़कर देख रहे हैं और उन देखनेवालोंकी छायासे सब खेलनेवाले ढके हुए हैं। देवतालोग दशरथजीकी—उनके समाजके सहित—प्रशंसा करते हैं और कल्पवृक्षके पुष्पोंकी लड़ियाँ बरसाते हैं ॥ ३ ॥ सब बालक प्रेम, आनन्द और विनोदमें मग्न हैं। उनमेंसे एक ओरके बालक गेंदको लेकर आगे बढ़ते हैं तो दूसरी ओरके उन्हें लौटा

देते हैं। कोई कहते हैं रामकी हार हुई और कोई कहते हैं भैया भरत जीते हैं ॥ ४ ॥ प्रभु हाथी, घोड़े, वस्त्र और मणियाँ बख्शते हैं; आकाश-में विमानोंसे जयध्वनिके सहित दुन्दुभियाँ बजायी जा रही हैं। प्रभुसे पारितोषिक पाकर सखा, सेवक और याचकगण जन्मभर दूसरेके द्वारपर नहीं गये ॥ ५ ॥ आकाशसे तथा नगरमें जहाँ-तहाँ निछावरकी वर्षा हो रही है तथा देवता और सिद्धगण आशीर्वाद दे रहे हैं। प्रभुके इन नित्य नवीन चरित्रोंको जो लोग प्रेममें भरकर गाते या सुनते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ६ ॥ भरतजीको खेलमें हार जानेपर तो हर्ष होता है और जीतनेपर सङ्कोचवश उनके सिर और नयन नीचे हो जाते हैं, [अतः भगवान् बार-बार उन्हींको जिता देते हैं] तुलसी-दास कहते हैं प्रभुके ऐसे शील और स्वभावको स्मरणकर जो इसी रंगमें रँगे हुए हैं वे लोग बड़े पुण्यशाली हैं ॥७॥

[४६]

खेलि खेल सुखेलनिहारे।
उतरि उतरि, चुचुकारि तुरंगनि, सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥
बंधु-सखा-सेवक सराहि, सनमानि सनेह सँभारे।
दिये बसन-गज-बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे ॥ २ ॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानंद सिधारे।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राउ पगु धारे ॥ ३ ॥
भूप-भवन घरघर घमंड कल्यान कोलाहल भारे।
निरखि हरषि आरती-निछावरि करत सरीर बिसारे ॥ ४ ॥
नित नए मंगल-मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभुतें प्रभु-चरित पियारे ॥ ५ ॥

खेल खेलनेवालोंने खेल समाप्तकर अपने घोड़ोंसे उतर-उतरकर उन्हें चुचकारते हुए श्रीरघुनाथजीको आदरपूर्वक जुहारा ॥ १ ॥ प्रभुने अपने बन्धु, सखा और सेवकोंकी सराहना तथा सम्मान करते हुए उनके प्रति प्रेम प्रकट किया तथा बहुत-से वस्त्र और सुन्दर साजसे अच्छी तरह सजाये हुए अनेकों हाथी-घोड़े दिये ॥ २ ॥ फिर अति आनन्दित हो, नेत्रोंका फल पा देवता लोग भगवान्‌का गुणगान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने लोकोंको गये; और रामचन्द्रजीने भी अपने समाज-सहित राजमन्दिरको प्रस्थान किया ॥ ३ ॥ राजभवन तथा घर-घरमें अति महान् मङ्गलमय कोलाहल घुमड़ा हुआ है। प्रभुको देख-देखकर कौसल्या आदि माताएँ शरीरकी सुध भूलकर हर्षित चित्तसे आरती तथा निछावर कर रही हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार अवधमें नित्यप्रति नया-नया मङ्गल और आनन्द हो रहा है। तुलसीदास कहते हैं, जिन्हें प्रभुसे भी प्रभुके चरित्र अधिक प्रिय हैं वे लोग भी उन (अवधवासियों) के ही समान हैं ॥ ५ ॥

विश्वामित्रजीका आगमन

राग सारंग

[४७]

चहत महामुनि जाग-जयो।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप-तयो ॥ १ ॥
सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो।
बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छनमें सब सोच गयो।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥ ३ ॥

करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनंद नयो।
तुलसी प्रभु-अनुराग उमगि मग मंगल-मूल भयो॥ ४॥

महामुनि विश्वामित्रजी यज्ञ पूर्ण करना चाहते हैं, परन्तु नीच निशाचरगण दुःसह दुःख देते हैं। अतः उस चिन्तासे सन्तप्त रहनेके कारण उनका शरीर सूख गया है॥ १॥ वे यदि शाप देते हैं तो उन्हें पाप लगता है और यदि झुकते हैं तो दुष्ट निशाचरादि उनका तिरस्कार करते हैं। अतः उन्होंने यह विचार किया—'ब्राह्मण, साधु, देवता, गौ और पृथिवीके हितके लिये इस समय श्रीहरिने अवतार लिया है'॥ २॥ इस प्रकार श्रीशार्ङ्गपाणिकी याद आते ही क्षणभरमें उनका सारा शोक दूर हो गया। अतः मुनिवर कौशिक प्रसन्न चित्तसे अयोध्यापुरी-को चल दिये। इस समय शकुनोंने भी उनका साथ दिया॥ ३॥ वे मार्गमें तरह-तरहके मनोरथ करते जाते थे; उस समय उनके शरीरमें पुलकावली हो आनेसे नया-नया आनन्द प्रकट होता था। तुलसीदास कहते हैं—प्रभु-प्रेमके अनुरागकी उमङ्गमें उन्हें वह मार्ग बड़ा मङ्गल-मय हो गया॥ ४॥

[४८]

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुखकी सींव, अवधि आनँदकी, अवध बिलोकि हौं पाइहौं॥ १॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं॥ २॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं राम लषन लै आइहौं॥ ३॥

'आज मैं सम्पूर्ण शुभ कर्मोंका फल पा लूँगा, क्योंकि सुखकी सीमा तथा आनन्दकी अवधि अवधपुरीको देख पाऊँगा ॥ १ ॥ मैं पुत्रोंके सहित दशरथजीको देखूँगा और प्रेमसे पुलकित हो उन्हें हृदयसे लगाऊँगा तथा रामचन्द्रजीके मुखचन्द्रकी छविरूप सुधाका अपने नेत्ररूप चकोरोंको पान कराऊँगा ॥ २ ॥ महाराज आदरपूर्वक मुझसे सारे समाचार पूछेंगे और मैं उन्हें सारी कथा सुनाऊँगा। तुलसीदास कहते हैं, फिर मैं कृतकृत्य होकर राम और लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले आऊँगा ॥ ३ ॥

राग नट

[४९]

देखि मुनि ! रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनतीमें अबतें हौं जहँलौं साधु-समाज ॥ १ ॥
चरन बंदि, कर जोरि निहोरत, "कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह-गेह सब राज" ॥ २ ॥
भली कही भूपति त्रिभुवनमें को सुकृती-सिरताज ?
तुलसि राम-जनमहितें जानियत सकल सुकृतको साज ॥ ३ ॥

[महाराज दशरथ कहते हैं—] हे मुनिवर! आज आपके चरण-कमल देखकर मैं जहाँतक साधुसमाज है वहाँतक गिनतीमें सबसे आगे हो गया हूँ ॥ १ ॥ फिर चरणवन्दना कर, हाथ जोड़, निहोरा कर कहने लगे—'मुनिवर ! कृपा करके अपना कार्य बतलाइये; एक रामको छोड़कर और देह, गेह तथा सम्पूर्ण राज्यादिमेंसे कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे मैं न दे सकूँ' ॥ २ ॥ [विश्वामित्रजी बोले—] 'राजन् !

तुमने बहुत ठीक कहा। त्रिलोकीमें तुम्हारे सिवा और कौन पुण्यवानों-में शिरोमणि है? क्योंकि सम्पूर्ण सुकर्मोंका साज तो भगवान् रामके जन्मसे ही जाना जा रहा है। तात्पर्य, जब आप सुकृतसींव हैं तभी तो साक्षात् परब्रह्म परमात्माने आपके यहाँ जन्म लिया है' ॥ ३ ॥

[५०]

राजन! राम-लषन जो दीजै।
जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै ॥ १ ॥
डरपत हौ साँचे सनेह-बस सुत-प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु, तुम पुनि परम सयाने ॥ २ ॥
रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुबंस-तिलककी कबिकुल कीरति गैहैं ॥ ३ ॥

हे राजन्! यदि आप राम और लक्ष्मणको दे दें तो आपका तो यश हो और बालकोंका बड़ा लाभ हो। अतः आप सब मुनियोंको सनाथ कर दीजिये ॥ १ ॥ तुम अपने पुत्रोंका प्रभाव न जाननेसे जो स्नेहवश डरते हो तो ठीक ही है, किन्तु इनके विषयमें तुम वामदेवजी और अपने कुलगुरु वसिष्ठजीसे तो पूछो। इसके सिवा तुम स्वयं भी बड़े चतुर हो ॥ २ ॥ ये अपने शत्रुओंका युद्धमें दलन कर मेरे यज्ञकी रक्षा करेंगे और थोड़े ही दिनोंमें कुशलपूर्वक घर लौट आयेंगे। तुलसीदासजी कहते हैं, इन रघुवंशतिलककी कीर्तिका कविजन गान करेंगे ॥ ३ ॥

[५१]

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिबरके बयन।
कहि न सकत कछु, राम-प्रेमबस पुलक गात, भरे नीर नयन ॥ १ ॥

गुरु बसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने, जाने सेष-सयन ।
सौंपे सुत गहि पानि, पाँय परि, भूसुर उर चले उमगि चयन ॥२॥
तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन ।
मधु-माधव-मूरति दोउ सँग मानो दिनमनि गवन कियो उतर अयन ॥३॥

मुनिवर विश्वामित्रके वचन सुनकर महाराज दशरथ ठगे-से रह गये। वे भगवान् रामके प्रेमवश कुछ कह न सके। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया तथा नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ तब गुरु वसिष्ठजीने उन्हें समझाया। इससे उन्होंने भगवान् रामको शेषशायी भगवान् जाना तथा मनमें हर्ष माना। फिर उन्होंने पुत्रोंका हाथ पकड़कर विश्वामित्रजीके चरणोंमें गिरकर उन्हें सौंप दिया। इससे मुनिवरके हृदयमें आनन्द उमड़ने लगा ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान् करोड़ों कामदेवोंके समान शोभायमान एवं मनोमोहक हैं, वे दृष्टि पड़ते ही चित्तको अपनेमें बाँध लेते हैं। वे मानो सूर्यदेवके उत्तरायणमें गमन करते समय उनके साथ चैत्र मास और वसन्त ऋतु दोनोंकी मूर्तियाँ विराजमान हैं ॥ ३ ॥

राग सारंग

[५२]

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई ।
पितु-पद बंदि सीस लियो आयसु, सुनि सिष आसिष पाई ॥१॥
नील पीत पाथोज बरन बपु, बय किसोर बनि आई ।
सर धनु-पानि, पीत पट कटितट, कसे निखंग बनाई ॥२॥
कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई ।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन, मुखछबि बरनि न जाई ॥३॥

पल्लव, पंख, सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष-लुनाई ?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुंदरताई ॥४॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग-बन-रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई ॥५॥
एक तीर तकि हती ताड़का, बिद्या बिप्र पढ़ाई।
राख्यो जग्य जीति रजनीचर, भइ जग-बिदित बड़ाई ॥६॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई।
तुलसिदास प्रभुके बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥७॥

ऋषिवरके साथ दोनों भाई प्रसन्न होकर चले। पिताजीके चरणोंकी वन्दना कर उनकी आज्ञाको शिरोधार्य किया तथा उनकी शिक्षा सुन आशीर्वाद लिया ॥ १ ॥ दोनों भाइयोंके शरीर नीले और पीले कमलोंके रंगके हैं तथा किशोर अवस्था है। उनके हाथोंमें धनुष-बाण तथा कमरमें पीताम्बर एवं तरकस शोभायमान हैं ॥ २ ॥ मनोहर कण्ठमें मणियोंकी माला है, शरीरमें चन्दनकी खौर शोभायमान है तथा उनके मनोहर शरीर कमल-जैसे नयन एवं मुखकी छविका वर्णन नहीं किया जाता ॥ ३ ॥ सिरपर नवीन पत्र, मोरपंख तथा पुष्प शोभायमान हैं। उनके वेषकी सुन्दरता किस प्रकार वर्णन करूँ ? मानो त्रिभुवनकी सुन्दरता ही मूर्तिमती होकर दो भागोंमें बँट गयी है ॥ ४ ॥ दोनों भाई सरोवरोंमें घुसते तथा शिलाओंपर चढ़कर पक्षी, मृग और वनकी सुन्दरता निहारते हैं। तब मुनिवर भययुक्त और प्रेमपुलकित हो उन्हें आदरपूर्वक बारंबार बुला लेते हैं ॥ ५ ॥ प्रभुने ताड़काको निशाना बनाकर एक ही तीरसे मार डाला। तब विश्वामित्रजीने उन्हें बाण-

विद्या पढ़ायी। फिर भगवान्‌ने राक्षसोंको जीतकर यज्ञकी रक्षा की, इससे संसारमें उनकी प्रशंसा फैल गयी ॥ ६ ॥ तदनन्तर रघुनाथजीने अपने चरणकमलसे स्पर्श करके ही अहल्याको अपने पतिलोकमें पहुँचा दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी समय प्रभुके पूछनेपर मुनिने गंगाजीकी कथा सुनायी ॥ ७ ॥

राग नट

[५३]

दोउ राजसुवन राजत मुनिके संग ।
नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोयन, दामिनि-बारिद-बरबरन अंग १
सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे कटि निखंग।
मानो मख-रुज निसिचर हरिबेको सुत पावकके साथ पठये पतंग ॥२॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छबि बरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेममगन रँगे रूप-रंग ॥३॥

मुनिके संग दोनों राजकुमार शोभायमान हैं। वे नखसे सिखतक सुन्दर हैं, उनके मुख और नयन भी अत्यन्त मनोहर हैं तथा शरीर बिजली और मेघके समान अति सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण हैं ॥ १ ॥ उनके मस्तकोंपर चोटी शोभायमान है, गलेमें यज्ञोपवीत है, अंगमें पीताम्बर सुशोभित है, हाथमें धनुष-बाण हैं तथा कमरमें तरकस कसा हुआ है, मानो यज्ञके रोगरूप राक्षसोंका नाश करनेके लिये सूर्यदेवने अग्निके साथ अपने पुत्र अश्विनीकुमार भेजे हों ॥ २ ॥ बादल छाया कर रहे हैं, देवता लोग फूल बरसाते हैं तथा उनकी छविको कामदेवसे भी अतुलित बतलाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुको देखकर

मार्गके मनुष्य, पक्षी और मृग भगवान्‌के रूपरंगमें रँगकर प्रेममें मग्न हो रहे हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

[५४]

मुनिके संग बिराजत बीर ।
काकपच्छ धर, कर कोदंड-सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥१॥
बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेमकी भीर ॥२॥
खेलत, चलत, करत मग कौतुक, बिलँबत सरित-सरोबर-तीर ।
तोरत लता, सुमन, सरसीरुह, पियत सुधासम सीतल नीर ॥३॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर, पुनि पुनि बरनत छाँह, समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप, मराल, कोकिला, कीर ॥४॥
नयननिको फल लेत निरखि खग, मृग, सुरभी, ब्रजबधू, अहीर ।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन मृदु कमल कुटीर ॥५॥

मुनिवर विश्वामित्रके साथ दोनों भाई शोभायमान हैं । वे सिरपर काकपक्ष (जुल्फ़ें), हाथोंमें धनुष-बाण तथा कमरमें सुन्दर पीताम्बर और तरकस धारण किये हुए हैं ॥ १ ॥ उनका मुख चन्द्रमाके समान, नेत्र कमलपुष्पवत् तथा शोभाके धाम श्याम-गौर शरीर हैं । उनकी अतुल छवि देखकर विश्वामित्रजी पुलकित होते हैं और उनके हृदयमें प्रेमकी उमंग नहीं समाती ॥ २ ॥ वे मार्गमें तरह-तरहके कौतुक करते खेलते चलते हैं तथा नदियों और सरोवरोंके तटपर लता, पुष्प और कमलोंको तोड़ते एवं उनका अमृतके समान शीतल जल पान करते बिरमते जाते हैं ॥ ३ ॥

वृक्षोंके नीचे स्वच्छ शिलाओंपर बैठ-बैठकर वे वारंवार वहाँकी छाया और वायुकी प्रशंसा करते हैं। उन्हें देखकर मयूर नाचने लगते हैं एवं भ्रमर तथा कोयल और शुक आदि पक्षी बड़े सुन्दर ढंगसे गाने लगते हैं ॥ ४ ॥ प्रभुको देख-देखकर मृग, पक्षी, गौएँ, ग्वालिनी और ग्वाले अपने नेत्रोंका फल पाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, सभी लोग अपने मनरूप कोमल कमलकी कुटियामें प्रभुको आसन देते हैं ॥ ५ ॥

राग कान्हरा

[५५]

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई।
तरुन तमाल चारु चंपक-छबि कबि-सुभाय कहि जाई ॥१॥
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई।
बदन मनोज सरोज लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥२॥
अंसनि धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई।
सकल भुवन सोभा सरबसु लघु लागति निरखि निकाई ॥३॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरष, पवन सुखदाई।
जल-थल-रुह फल, फूल, सलिल सब करत प्रेम पहुनाई ॥४॥
सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि-चलनि सुहाई।
खग-मृग चित्र बिलोकत बिच बिच, लसति ललित लरिकाई ॥५॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई।
ख्याल दली ताड़ुका, देखि ऋषि देत असीस अघाई ॥६॥
बूझत प्रभु सुरसरि-प्रसंग कहि निज कुल कथा सुनाई।
गाधिसुवन-सनेह-सुख-संपति उर-आश्रम न समाई ॥७॥

बनबासी बटु, जती, जोगि-जन, साधु-सिद्ध-समुदाई।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन लाभ लुटि पाई॥८॥
मख राख्यो खलदल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई।
नित पथ-चरित-सहित तुलसी-चित बसत लखन रघुराई॥९॥

मार्गमें विश्वामित्रजीके साथ दोनों भाई शोभायमान हैं। उनके अंगोंको तरुण तमाल तथा मनोहर चम्पक वृक्षकी उपमा भी कविके स्वभाववश ही दी जाती है॥ १॥ भगवान्‌के वस्त्र और आभूषण उनके अंगोंके अनुरूप ही हैं, जिनसे सुन्दरता उमड़ी पड़ती है। मानो उनके मुखमण्डलमें कामदेवकी तथा नेत्रोंमें कमलकी सुन्दरता लुभाकर रह गयी है॥ २॥ उनके कन्धोंपर धनुष, करकमलोंमें बाण और कमरमें बड़ी सुघरतासे तरकस कसा हुआ है। भगवान्‌की सुन्दरताको देखकर चौदहों भुवनोंकी सारी शोभा तुच्छ जान पड़ती है॥ ३॥ पृथिवी सुकोमल मार्ग देती है, बादल छाया कर रहे हैं, देवता लोग फूलोंकी वर्षा करते हैं तथा वायु सुखदायक हो रहा है। इस प्रकार जल एवं स्थलमें उत्पन्न होनेवाले फल, फूल और जल आदि सभी प्रेमपूर्वक भगवान्‌की पहुनाई कर रहे हैं॥ ४॥ गुरुजीके साथ भगवान्‌का सङ्कोच, भय और विनयके सहित बोलना एवं चलना-फिरना बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। बीच-बीचमें जब चित्र-विचित्र पक्षी और मृगोंको देखते हैं तो उनका मनोहर बाल-चापल्य सुहावना जान पड़ता है॥ ५॥ तदनन्तर गुरुजीने भगवान्‌को विद्यानिधि जानकर विद्या दी और विद्याने भी उन्हें प्राप्त-कर बड़ाई पायी। अपने सङ्कल्पमात्रसे ही ताड़काको मारते देख ऋषिने भगवान्‌को जी खोलकर आशीर्वाद दिया॥ ६॥ भगवान्‌ने गंगावतरणका

प्रसङ्ग पूछा तो ऋषिने उनके कुलकी कथा कह सुनायी। इस समय विश्वामित्रजीके स्नेह और आनन्दकी सम्पत्ति उनके हृदयरूप आश्रममें नहीं समाती थी ॥ ७ ॥ वनमें रहनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी, योगिजन, साधु और सिद्धसमूह प्रभुको देखकर प्रीतिसे पुलकित शरीर हो नेत्रोंके लाभकी लूट पाकर उनकी पूजा करते थे ॥ ८ ॥ भगवान्‌ने अपने भुजबलसे दुष्टोंका दमन कर यज्ञकी रक्षा की है, यह जानकर देवताओंमें बधाई बजने लगी। तुलसीदासजी कहते हैं, हमारे चित्तमें तो मार्गके चरित्रोंके सहित श्रीराम और लक्ष्मण सर्वदा निवास करते हैं ॥ ९ ॥

[५६]

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा।
मुनि, मुनितिय, मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा ॥१॥
नाम-रूप-अनुरूप बेष बय, राम लखन लाल लोने।
इन्हतें लही है मानो घन-दामिनि दुति मनसिज, मरकत, सोने ॥२॥
चरनसरोज, पीतपट कटितट, तून-तीर-धनुधारी।
केहरिकंध, काम-करि-करवर बिपुल बाहु, बल भारी ॥३॥
दूषन-रहित समय सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहैं।
नव-राजीव-नयन, पूरन बिधुबदन मदन मन मोहैं ॥४॥
सिरनि सिखंड, सुमन-दल-मंडन बाल सुभाय बनाये।
केलि-अंक तनु-रेनुपंक जनु प्रगटत चरित चोराये ॥५॥
मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आश्रमहि आने।
प्रेम पूजि पाहुने प्रानप्रिय गाधिसुवन सनमाने ॥६॥
साधन-फल साधक सिद्धनिके, लोचन-फल सबहीके।
सकल सुकृत-फल मातु-पिताके, जीवन-धन तुलसीके ॥७॥

दोनों राजकुमार अति सुन्दर और मङ्गलमय हैं। मुनिजन, मुनिपत्नियाँ और मुनिकुमार उन्हें देखकर कहते हैं—यह जोड़ी बड़ी मधुर और मनोहर है ॥ १ ॥ राम और लक्ष्मण ये दोनों भाई अपने नाम और रूपके अनुरूप वेष और अवस्थामें भी बड़े सुन्दर हैं; मानो इन्हींसे मेघ और विद्युत्, कामदेव तथा मरकतमणि और सुवर्णने भी कान्ति पायी है ॥ २ ॥ इनके चरण कमलके समान हैं, कटिप्रदेशमें पीत वस्त्र है तथा ये तरकस, धनुष और बाण धारण करनेवाले हैं। इनके कन्धे सिंहके समान हैं तथा भुजाएँ कामदेवके हाथीकी सूँड़के समान सुन्दर एवं बड़ी तथा बलशालिनी हैं ॥ ३ ॥ इनके निर्दोष और समयानुकूल भूषण सुन्दर अङ्गोंको पाकर शोभायमान हो रहे हैं तथा नवीन कमलके समान नेत्र और पूर्णचन्द्रसदृश मुख कामदेवके मनको मोहे लेते हैं ॥ ४ ॥ इन्होंने बालस्वभावसे ही सिरपर मयूरपिच्छ तथा पुष्पदलके आभूषण बनाये हैं तथा शरीरमें लगी हुई खेल-कूदकी चिह्नस्वरूप रज तथा कीच मानो मुनिजनसे चुराकर किये हुए इनके बालचरित्रों-को प्रकट करती है ॥ ५ ॥ विश्वामित्रजीने यज्ञरक्षाके लिये दशरथजी-से माँगकर अपने आश्रमपर लाये हुए अपने प्राणप्रिय पाहुनोंको प्रेम-पूर्वक पूजकर सम्मानित किया ॥ ६ ॥ ये साधक और सिद्धजनोंके साधनोंके फल हैं, सभीके नेत्रोंको सफल करनेवाले हैं, मातापिताके सम्पूर्ण सुकृतोंके फल हैं तथा तुलसीदासके जीवनधन हैं ॥ ७ ॥

अहल्योद्धार

राग सूहो

[५७]

रामपद-पदुम-पराग परी।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी ॥ १ ॥

प्रबल पाप पति-साप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासुधा सिँचि बिबुध-बेलि ज्यौं फिरि सुख-फरनि फरी॥ २॥
निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुबति बराय बरी।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटकतें न टरी॥ ३॥
बरनति हृदय सरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी।
तुलसिदास अस केहि आरतकी आरति प्रभु न हरी ?॥ ४॥

ऋषिपत्नी अहल्याके सिरपर जैसे ही भगवान् रामके चरणकमलोंकी पराग पड़ी वैसे ही उसने पत्थरका शरीर त्यागकर अति छविमय शरीर धारण कर लिया॥ १॥ अपने प्रबल पापके कारण पतिके शापरूप दुःसह अग्निके कठोर तापसे जलती हुई कल्पलता मानो कृपारूप अमृतसे सींची जाकर पुनः सुखरूप फलोंसे सम्पन्न हो गयी॥ २॥ वेदोंके लिये भी अगम जिस मूर्तिको भगवान् शङ्करकी बुद्धिरूपा युवतीने अन्य भगवन्मूर्तियोंको त्यागकर वरण किया है उसीको नेत्रपथमें आयी हुई देख वह एकटक होकर उससे विचलित न हुई॥ ३॥ वह प्रेम और आनन्दसे भरकर मन-ही-मन उनके रूप, शील और गुणोंका बखान करने लगी। तुलसीदास कहते हैं, इसी प्रकार प्रभुने किस दीनकी दीनताको नहीं हरा॥ ४॥

[५८]

परत पद-पंकज ऋषि-रवनी।
भई है प्रगट अति दिब्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छबि-छवनी॥ १॥
देखि बड़ो आचरज, पुलकि तनु कहति मुदित मुनि-भवनी।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि, सिला न रहिहि अवनी॥ २॥

परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि-गवनी।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनुकी महिमा कहै मति कवनी॥ ३॥

प्रभुके चरणकमल पड़ते ही मुनिपत्नी अहल्या अत्यन्त दिव्य देह धारणकर प्रकट हो गयी है, मानो तीनों लोकोंकी छविकी पुत्री ही हो॥ १॥ यह परम आश्चर्य देखकर एक दूसरी मुनिपत्नी प्रसन्न होकर कहने लगी, यदि रघुनाथजी पैदल चलेंगे तो पृथिवीतलपर शिला नहीं रहने पावेगी॥ २॥ जिन चरणोंका स्पर्श करके पवित्र हुई गङ्गाजी त्रिपथगामिनी होकर सुशोभित हो रही हैं, तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसी कौन-सी बुद्धि है जो उनकी महिमाका वर्णन कर सके?॥ ३॥

[५९]

भूरिभाग-भाजनु भई।
रूपरासि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम-सुरंग रई॥ १॥
कहा कहैं, केहि भाँति सराहैं, नहि करतूति नई।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई?॥ २॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदमई।
तुलसी ह्वै बिसोक पति-लोकहि प्रभुगुन गनत गई॥ ३॥

आज अहल्या परम सौभाग्यशालिनी हुई है। वह रूपकी राशि दोनों भाइयोंको देखकर प्रेमके रंगमें रँग गयी है॥ १॥ कहिये, कवि किस प्रकार वर्णन करे, किस प्रकार उनकी सराहना करे? उनकी यह करतूत कुछ नयी भी नहीं है। बिना कारण ही कृपा करनेवाले रघुनाथजीने भला किस-किसको शुभ गति नहीं दी?॥ २॥ तुलसीदास-

जी कहते हैं, इसी प्रकार बहुत-सी विनय कर और प्रभुकी मङ्गल तथा आनन्दमयी मूर्तिको हृदयमें धारणकर शोकहीन हो वह प्रभुका गुणगान करती पतिलोकको चली गयी ॥ ३ ॥

राग कान्हरा

[६०]

कौसिकके मखके रखवारे ।
नाम राम अरु लखन ललित अति, दसरथ-राज-दुलारे ॥ १ ॥
मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छ-धर बारे ।
सोभा सकल सकेलि मदन-बिधि सुकर सरोज सँवारे ॥ २ ॥
सहस समूह सुबाहु सरिस खल समर सूर भट भारे ।
केलि-तून-धनु-बान-पानि रन निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥
ऋषितिय तारि स्वयंबर पेखन जनकनगर पगु धारे ।
मग नरनारि निहारत सादर, कहैं बड़ भाग हमारे ॥ ४ ॥
तुलसी सुनत एक-एकनि सों चलत बिलोकनिहारे ।
मूकनि बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन-तारे ॥ ५ ॥

[मार्गमें जाते समय पथिकजन कहते हैं—] ये दोनों विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं । इनके अति सुन्दर राम और लक्ष्मण नाम हैं तथा ये महाराज दशरथके प्रिय पुत्र हैं ॥ १ ॥ ये काकपक्ष धारण किये हुए अति कोमल और सुन्दर श्याम एवं पीतवर्ण कमलके समान जान पड़ते हैं, मानो इन्हें कामदेवरूप विधाताने सारी शोभाको एकत्रितकर स्वयं अपने ही करकमलोंसे रचा हो ॥ २ ॥ इन्होंने युद्धमें सुबाहुके समान सहस्रों दुष्ट, समरशूर और भारी राक्षसयोद्धाओं-

का तिरस्कार कर उन्हें हाथमें खेलके ही धनुष-बाण लेकर और खेलका ही तरकस धारणकर मार डाला है ॥ ३ ॥ अब ये मुनिपत्नीका उद्धार कर स्वयंवर देखनेके लिये जनकपुरीको जा रहे हैं । इन्हें मार्गमें 'हमारे बड़े भाग्य हैं' ऐसा कहकर सब स्त्रीपुरुष आदरपूर्वक निहारते हैं ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस समाचारको एक-एकसे सुनकर अन्य दर्शक लोग भी चलते हैं । प्रभुको देखकर मानो मूक पुरुषोंको वाणी प्राप्त हो जाती है तथा अन्धोंको नेत्रोंके तारे मिल जाते हैं ॥ ५ ॥

जनकपुरप्रवेश

राग टोड़ी

[६१]

आये सुनि कौसिक जनक हरषाने हैं ।
बोलि गुर भूसुर, समाज सों मिलन चले,
जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ॥ १ ॥
नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित,
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं ।
असन, बसन, बासकै सुपास सब बिधि,
पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं ॥ २ ॥
बिनय बड़ाई ऋषि-राजऊ परसपर
करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं ।
देखे राम-लखन निमेषै बिथकित भईं,
प्रानहु ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं ॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद हृदय, दरस-सुख लोयननि
अनभये उभय, सरस राम जाने हैं ।

तुलसी विदेहकी सनेहकी दसा सुमिरि,
मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं ॥ ४ ॥

मुनिवर विश्वामित्रजी आये हैं—यह जानकर जनकजी बड़े प्रसन्न हुए और गुरुजी तथा ब्राह्मणोंको बुलाकर समाजसहित उनसे मिलनेके लिये चले। इस समय उन्होंने अपने बड़े भाग्य जाने और वे अनुरागसे विह्वल हो गये ॥ १ ॥ जनकजी विश्वामित्रजीके चरणोंमें सिर नवा, उनसे आशीर्वाद पा उन्हें प्रसन्न चित्तसे पाँवड़े तथा अर्घ्यदान देकर आदरपूर्वक ले आये तथा भोजन, वस्त्र और निवासस्थानका सुभीता कर, अपने प्रिय पाहुनोंको सब प्रकार पूज स्वभावसे ही सत्कार किया ॥ २ ॥ ऋषि और महाराज जनक आपसमें विनय और बड़ाई करते हैं। [अर्थात् जनकजी मुनिवरके प्रति विनीत होते हैं तथा मुनि महाराजकी बड़ाई करते हैं।] इस प्रकार प्रेमसे पुलकित हो वे आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। राम-लक्ष्मण-को देखकर वे पलक मारना भूल गये। बिना पहचाने हुए भी उन्हें वे दोनों भाई प्राणोंसे भी प्रिय जान पड़े ॥ ३ ॥ हृदयसे ब्रह्मानन्दका तथा नेत्रोंसे दर्शनके आनन्दका अनुभव कर महाराज जनकने रामरूप-को ही अधिक सरस जाना है [अर्थात् दर्शनसुखको ही विशेष समझा है]। तुलसीदासजी कहते हैं, विदेहके स्नेहकी दशा स्मरणकर मेरे मनको तो यही जान पड़ता है कि महाराज बड़े ही चतुर हैं ॥ ४ ॥

राग मलार

[६२]

कोसलरायके कुअँरोटा।
राजत रुचिर जनक-पुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा ॥ १ ॥

चौतनि सिरनि, कनककली काननि, कटि पट पीत सोहाये।
उर मनि-माल, बिसाल बिलोचन, सीय-स्वयंबर आये ॥ २ ॥
बरनि न जात, मनहिं मन भावत, सुभग अबहिं बय थोरी।
भई हैं मगन बिधुबदन बिलोकत बनिता चतुर चकोरी ॥ ३ ॥
कहँ सिवचाप, लरिकवनि बूझत, बिहँसि चितै तिरछौहैं।
तुलसी गलिन भीर, दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं ॥ ४ ॥

जनकपुरमें प्रवेश करते समय कोसलराजकुमारोंकी अति सुन्दर गौर-श्याम जोड़ी बड़ी ही मनोहर जान पड़ती है ॥ १ ॥ दोनों बालकोंके सिरपर चौतनी टोपी, कानोंमें सुवर्णमय कर्णफूल, कमरमें पीताम्बर और हृदयपर मणियोंकी माला शोभायमान है। उनके नेत्र बड़े विशाल हैं। इस प्रकार वे सीताजीके स्वयंवरमें पधारे ॥ २ ॥ उस जोड़ीका वर्णन नहीं होता, वह मन-ही-मन बड़ी भली जान पड़ती है। अभी अवस्था भी बहुत थोड़ी है। उनके मुखचन्द्रको निहारकर चतुर चकोरीरूप नगरकी नारियाँ प्रसन्न हो रही हैं ॥ ३ ॥ भगवान् तिरछी चितवनसे देखते हुए लड़कोंसे हँसकर पूछते हैं 'शिवजीका धनुष कहाँ है ?' तुलसीदासजी कहते हैं, गलियोंमें भीड़ हुई देखकर लोग प्रभुका दर्शन करनेके लिये अटारियोंपर चढ़े हुए हैं ॥ ४ ॥

[६३]

ये अवधेसके सुत दोऊ।
चढ़ि मंदिरनि बिलोकत सादर जनकनगर सब कोऊ ॥ १ ॥
स्याम गौर सुंदर किसोर तनु, तून-बान-धनुधारी।
कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज बिसाल, बल भारी ॥ २ ॥

मुख मयंक, सरसीरुह लोचन, तिलक भाल, टेढ़ी भौंहैं।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौंहैं ॥ ३ ॥
बिस्वामित्र हेतु पठये नृप, इनहिं ताड़का मारी।
मख राख्यो रिपु जीति, जान जग, मग मुनिबधू उधारी ॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नयननि अयन दये।
तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भये ॥ ५ ॥

जनकपुरीके सभी लोग अपने घरोंपर चढ़कर आदरपूर्वक देखते हैं और कहते हैं कि ये दोनों अवधपति महाराज दशरथके पुत्र हैं ॥ १ ॥ इनका अति सुन्दर श्याम-गौर शरीर है, किशोर अवस्था है तथा ये धनुष-बाण एवं तरकस धारण किये हुए हैं। इनकी कमरमें पीताम्बर है, कण्ठमें मोती और मणियोंकी माला है तथा इनकी विशाल भुजाएँ अत्यन्त बलशालिनी हैं ॥ २ ॥ इनका मुख चन्द्रमाके समान है, नेत्र कमलसदृश हैं, माथेपर तिलक शोभायमान है तथा तिरछी भौंहें हैं। इनके कानोंमें मनोहर कुण्डल और सिरपर अति सुन्दर चौतनी टोपी है। ये मत्त गजराजकी गतिसे चल रहे हैं ॥ ३ ॥ महाराजने इन्हें विश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षाके लिये भेजा था। इन्हींने ताड़काको मारा है तथा शत्रुको जीतकर यज्ञकी रक्षा की है। इस बातको भी संसार जानता है कि इन्हींने मार्गमें मुनिपत्नीका उद्धार किया है ॥ ४ ॥ प्रिय पाहुने जानकर नगरके सभी नर-नारियोंने प्रभुको अपने नेत्रोंमें स्थान दिया। तुलसीदासजी कहते हैं—प्रभुको देखकर सभी लोग जनकके* समान हो गये ॥ ५ ॥

* महाराज जनकके समान विदेह हो गये।

राग टोड़ी

[६४]

बूझत जनक 'नाथ, ढोटा दोउ काके हैं' ?
तरुन तमाल चारु चंपक-बरन तनु
कौने बड़े भागीके सुकृत परिपाके हैं ॥ १ ॥
सुखके निधान पाये, हियके पिधान लाये,
ठगके-से लाडू खाये, प्रेम-मधु छाके हैं ।
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं,
भे सनेह-बिबस बिदेहता बिबाके हैं ॥ २ ॥
सील-सुधाके अगार, सुखमाके पारावार,
पावत न पैरि पार पैरि पैरि थाके हैं ।
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे,
एक रसरूप चित सकल सभाके हैं ॥ ३ ॥
जिय जिय जोरत सगाई राम लषनसों
आपने आपने भाय जैसे भाय जाके हैं ।
प्रीतिको, प्रतीतिको, सुमिरिबेको, सेइबेको,
सरनको समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥ ४ ॥

जनकजी पूछने लगे— 'हे नाथ ! ये दोनों बालक किसके हैं ? इनके शरीर तरुण तमाल और मनोहर चम्पक पुष्पके समान श्याम और गौर वर्ण हैं । अहा ! ये किस बड़भागीके पुण्य कर्म फलित हुए हैं ?' ॥ १ ॥ जनकजीने सुखके निधान प्रभुको पाकर उन्हें हृदयमें ले जाकर पट लगा दिये और ठगके-से लड्डू खाकर

प्रेमरसमें छक गये । जनकजी स्वार्थहीन तथा परमार्थपरायण कहलाते थे किन्तु इस समय वे स्नेहवश होकर विदेहताको भूल गये॥ २ ॥ प्रभु शीलरूप अमृतके आगार और शोभाके समुद्र हैं । जनकजी उसमें तैर-तैरकर हार गये, फिर भी उन्हें उसका पार नहीं मिला । सम्पूर्ण सभाके नेत्र उतावले होकर प्रभुमें लग गये, मन अत्यन्त अनुरक्त हो गये तथा चित्त एकरसरूप हो गये ॥ ३ ॥ अपने-अपने भावके अनुसार जैसा जिसका भाव था वह उसी प्रकार भगवान् राम और लक्ष्मणसे सम्बन्ध जोड़ने लगा । जो प्रभु प्रीति, प्रतीति, स्मरण, सेवन और शरण ग्रहण करने योग्य हैं उनका आश्रय तुलसीदासने भी ताका है ॥ ४ ॥

[६५]

ए कौन कहाँतें आए ?

नील-पीत-पाथोज-बरन, मन-हरन, सुभाय सुहाए ॥ १ ॥
मुनिसुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए ।
रूप-जलधिके रतन, सुछबि-तिय-लोचन ललित ललाए ॥ २ ॥
किधौं रबि-सुवन, मदन-ऋतुपति, किधौं हरि-हर बेष बनाए ।
किधौं आपने सुकृत-सुरतरुके सुफल रावरेहि पाए ॥ ३ ॥
भये बिदेह बिदेह नेहबस, देहदसा बिसराए ।
पुलक गात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए ॥ ४ ॥
जनक-बचन मृदु मंजु मधु-भरे भगति कौसिकहि भाए ।
तुलसी अति आनंद उमगि उर राम लषन गुन गाए ॥ ५ ॥

[महाराज जनक पूछते हैं—] 'ये कौन हैं और कहाँसे आये हैं? ये नीले और पीले कमलके समान श्याम एवं गौर वर्ण, अत्यन्त मनमोहन और स्वभावसे ही शोभायमान हैं ॥ १ ॥ ये बालक कोई मुनिपुत्र हैं या राजकुमार अथवा परब्रह्म और जीव (हिरण्यगर्भ) ही जगत्में उत्पन्न हो गये हैं। ये रूपसमुद्रके रत्न अथवा छविरूप रमणीके सुललित लोचन तो नहीं हैं? ॥ २ ॥ अथवा ये दोनों अश्विनीकुमार, कामदेव और ऋतुराज वसन्त अथवा श्रीविष्णु और महादेव ही (मनुष्यका) भेष धरकर आ गये हैं? अथवा आपने अपने सुकृतरूप कल्पतरुके सुन्दर फल ही पा लिये हैं' ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर जनकजी स्नेहवश विदेह हो गये। वे अपने शरीरकी सुधि भूल गये। उनका शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें आनन्द नहीं समाता था तथा नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ४ ॥ जनकजीके मृदुल, मनोहर और भक्तिरसभरे सुमधुर वचन विश्वामित्रजीको बड़े ही प्रिय लगे। तुलसीदासजी कहते हैं, तब विश्वामित्रजीने हृदयमें आनन्दसे अत्यन्त उमगकर राम-लक्ष्मणके गुण गाये ॥ ५ ॥

[६६]

कौसिक कृपालहूको पुलकित तनु भौ।
उमगत अनुराग, सभाके सराहे भाग,
देखि दसा जनककी कहिबेको मनु भौ ॥ १ ॥
प्रीतिके न पातकी, दियेहू साप पाप बड़ो,
मख-मिस मेरो तब अवध-गवनु भौ।
प्रानहूते प्यारे सुत माँगे दिये दसरथ,
सत्यसिंधु सोच सहे, सूनो सो भवनु भौ ॥ २ ॥

काकसिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर,

बालक-बिनोद जातुधाननिसों रनु भौ।

बूझत बिदेह अनुराग-आचरज-बस,

ऋषिराज-जाग भयो, महाराज अनुभौ ॥ ३ ॥

भूमिदेव, नरदेव, सचिव परसपर

कहत, हमहिं सुरतरु सिवधनु भौ।

सुनत राजाकी रीति, उपजी प्रतीति-प्रीति,

भाग तुलसीके, भले साहेबको जनु भौ ॥ ४ ॥

[जनकजीके ये वचन सुनकर] परम कृपालु विश्वामित्रजीका शरीर भी पुलकित हो गया। उनके हृदयमें अनुराग उमगने लगा। उन्होंने सभाके भाग्यकी सराहना की। जनकजीकी दशा देखकर उनका चित्त कहनेके लिये प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥ [वे कहने लगे—'राक्षस-लोग मेरे यज्ञमें विघ्न डालते थे; मैंने सोचा—] ये पापी हैं, इनसे प्रीति करना तो उचित नहीं और शाप देनेमें भी बड़ा पाप लगता है; अतः यज्ञरक्षाके मिषसे ही मेरा अयोध्यापुरीमें जाना हुआ। मैंने दशरथजीसे उनके प्राणोंसे भी प्यारे पुत्र माँगे; सत्यसन्ध दशरथजीने मुझे तत्काल इन्हें दे दिया, यद्यपि [इनमें अधिक स्नेह होनेके कारण] उन्होंने बड़ा शोक सहा और उनका घर सूना-सा हो गया ॥ २ ॥ उस समय इनके मस्तकपर काकपक्ष, हाथमें खेलके तरकस और धनुष-बाण थे। तब बालकेलिके रूपमें ही इनका राक्षसोंसे युद्ध हुआ।' यह सुनकर जनकजी प्रेम और आश्चर्यवश पूछने लगे, 'महाराज! तो क्या फिर आपका यज्ञ पूर्ण हो गया?' [विश्वामित्रजीने कहा—] 'आप स्वयं अनुभव

कर लीजिये' ॥ ३ ॥ तब ब्राह्मणलोग, महाराज जनक और मन्त्रिगण आपसमें कहने लगे—'हमको तो शिवजीका धनुष कल्पवृक्ष हो गया।' राजा जनककी रीति सुन तुलसीदासके मनमें भी प्रतीति और प्रीति उत्पन्न हुई। उसके बड़े भाग्य हैं जो वह ऐसे स्वामीका [जिनके दर्शन पाकर ब्रह्मज्ञानी जनकजी भी प्रेमविभोर हो गये थे] सेवक हुआ ॥ ४ ॥

[६७]

चार्‍यो भले बेटा देव दसरथ रायके।

जैसे राम-लषन, भरत-रिपुहन तैसे,
सील-सोभा-सागर, प्रभाकर प्रभायके ॥ १ ॥

ताड़का सँहारि मख राखे, नीके पाले ब्रत,
कोटि कोटि भट किये एक एक घायके।

एक बान बेगही उड़ाने जातुधान-जात,
सूखि गये गात हैं, पतौआ भये बायके ॥ २ ॥

सिलाछोर छुवत अहल्या भई दिब्यदेह,
गुन पेखे पारसके पंकरुह पायके।

रामके प्रसाद गुर गौतम खसम भये,
रावरेहु सतानंद पूत भये मायके ॥ ३ ॥

प्रेम-परिहास-पोख बचन परसपर
कहत सुनत सुख सब ही सुभायके।

तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनकजूके,
बिधिके सुढर होत सुढर सुदायके ॥ ४ ॥

महाराज दशरथके चारों ही पुत्र बड़े सुन्दर हैं। जैसे राम-लक्ष्मण हैं वैसे ही भरत और शत्रुघ्नजी भी शील और शोभाके समुद्र तथा प्रभावके सूर्य हैं ॥ १ ॥ इन्होंने ताड़काका संहार कर मेरे यज्ञकी भली प्रकार रक्षा की और अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया। इन्होंने करोड़ों शूरवीरोंको अपने एक-एक ही वारसे धराशायी कर दिया। इनके एक ही बाणके वेगसे अनेकों राक्षससमूह उड़ गये। उनके शरीर सूखकर मानो हवामें उड़नेवाले पत्ते ही हो गये ॥ २ ॥ शिलाके छोरका स्पर्श करते ही अहल्या दिव्य देहमयी हो गयी। इस प्रकार इनके चरणकमलोंमें पारसका गुण देखा गया है। इस प्रकार रामचन्द्रजीकी कृपासे [अहल्याका उद्धार हुआ और आपके पुरोहित शतानन्दजीके पिता] गुरु गौतमजी सपत्नीक हुए तथा शतानन्दजीने भी अपनी माता निहाल किया ॥३॥ इस प्रकार आपसमें प्रेम और परिहाससे पोषित वचन कहते-सुनते सबको स्वाभाविक ही सुख मिला। तुलसीदास कहते हैं, विश्वामित्रजी महाराज जनकके सौभाग्यकी सराहना करते हैं और कहते हैं विधाताके दायें होनेपर अच्छे दाँवके पासे भी पड़ने लगते हैं' ॥४॥

[६८]

ये दोउ दसरथके बारे।
नाम राम घनस्याम, लषन लघु, नखसिख अँग उजियारे ॥ १ ॥
निज हित लागि माँगि आने मैं धरमसेतु-रखवारे।
धीर, बीर, बिरुदैत, बाँकुरे, महाबाहु, बल भारे ॥ २ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का, किये सुर-साधु सुखारे।
जग्य राखि, जग साखि, तोषि ऋषि, निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥

मुनितिय तारि स्वयंबर पेखन आये सुनि बचन तिहारे।
एउ देखिहैं पिनाकु नेकु, जेहि नृपति लाज-ज्वर जारे ॥ ४ ॥
सुनि, सानंद सराहि सपरिजन, बारहि बार निहारे।
पूजि सप्रेम, प्रसंसि कौसिकहि भूपति सदन सिधारे ॥ ५ ॥
सोचत सत्य-सनेह-बिबस निसि, नृपहि गनत गये तारे।
पठये बोलि भोर, गुरके सँग रंगभूमि पगु धारे ॥ ६ ॥
नगर-लोग सुधि पाइ मुदित, सब ही सब काज बिसारे।
मनहु मघा-जल उमगि उदधि-रुख चले नदी-नद-नारे ॥ ७ ॥
ए किसोर, धनु घोर बहुत, बिलखात बिलोकनिहारे।
टरयो न चाप तिन्हते, जिन्ह सुभटनि कौतुक कुधर उखारे ॥ ८ ॥
ए जाने बिनु जनक जानियत करि पन भूप हँकारे।
नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे ॥ ९ ॥
सुखमा-सील-सनेह सानि मनो रूप बिरंचि सँवारे।
रोम रोमपर सोम-काम सत कोटि बारि फेरि डारे ॥१०॥
कोउ कहै, तेज-प्रताप-पुंज चितये नहि जात, भिया रे !
छुअत सरासन-सलभ जरैगो ए दिनकर-बंस-दिया रे ॥११॥
एक कहै, कछु होउ, सुफल भये जीवन-जनम हमारे।
अवलोके भरि नयन आजु तुलसीके प्रानपियारे ॥१२॥

'ये दोनों दशरथजीके पुत्र हैं। इनमें जो मेघके समान श्यामवर्ण हैं उनका नाम राम है और जिनके नखसे सिखतक सारे अङ्ग उज्ज्वलवर्ण हैं वे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं ॥१॥ इन धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवालोंको मैं अपने हितके लिये माँग लाया था। ये बड़े ही धीर, वीर, यशस्वी, रणबाँकुरे,

महाबाहु और बलशाली हैं ॥ २ ॥ इन्होंने एक तीर छोड़कर ही ताड़काको मार डाला और सब देवता तथा साधुजनोंको सुखी कर दिया। इस प्रकार यज्ञकी रक्षा कर मुनियोंको सन्तुष्ट किया तथा राक्षसोंका तिरस्कारपूर्वक वध किया—इस विषयमें सारा जगत् साक्षी है ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् ऋषिपत्नीका उद्धारकर आपकी प्रतिज्ञा सुन यहाँ स्वयंवर देखनेके लिये पधारे हैं। आपके जिस धनुषने राजाओंको लज्जारूप ज्वरसे सन्तप्त कर दिया है, उसे तनिक ये भी देखेंगे ॥ ४ ॥ मुनीश्वरके ये वचन सुन जनकजीने अपने कुटुम्बियोंके सहित उनकी आनन्दपूर्वक सराहना की और बारंबार प्रभुकी ओर देखकर तथा उनकी पूजा कर, विश्वामित्रजीकी प्रशंसा करते अपने घरको चले गये ॥ ५ ॥ सत्य स्नेहवश [अपनी प्रतिज्ञाकी कठिनता देखकर] वे विचारमें पड़ गये। इस प्रकार सारी रात महाराजको तारे गिनते बीत गयी। प्रातः-काल होनेपर उन्होंने बुलावा भेजा। तब प्रभुने गुरुजीके साथ रङ्गभूमिमें पदार्पण किया ॥ ६ ॥ भगवान्‌के पधारनेकी सुधि पाकर नगरके लोग प्रसन्न हो गये और सभीने सारे काम भुला दिये, मानो मघा नक्षत्र लगनेपर समस्त नदी, नद और नालोंका जल उमड़कर समुद्रकी ओर चल दिया हो ॥ ७ ॥ सभी दर्शकगण यह सोचकर कि ये तो किशोर अवस्थाके हैं और धनुष बड़ा सुदृढ़ है, दुखी हो गये। [उन्होंने सोचा] यह धनुष तो उन योद्धाओंसे भी विचलित नहीं हुआ जिन्होंने खेलहीमें बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़ डाला था [फिर इन सुकुमार बालकोंसे यह कैसे उठ सकेगा?] ॥ ८ ॥ मालूम होता है, महाराज जनकने इन्हें न जाननेके कारण ही इस प्रकारका प्रण करके अन्य राजाओंको बुला लिया था, नहीं तो भला अमृत-समुद्रको छोड़कर खारी कुआँ कौन

खुदवावेगा ? ॥ ९ ॥ ब्रह्माजीने सुन्दरता, शील और स्नेहको सानकर ही मानो इनके रूप रचे हैं। इनके रोम-रोमपर अरबों चन्द्रमा और कामदेव वार कर फेंक दिये हैं ॥१०॥ कोई कहते हैं—'भैया रे ! ये तेज और प्रतापके पुञ्ज हैं, इसीसे इनकी ओर देखा नहीं जाता । ये सूर्यवंशके दीपक हैं, इनके स्पर्श करते ही धनुषरूप पतङ्ग भस्म हो जायगा' ॥११॥ एक बोले, भाई ! कुछ भी हो, हमारे तो जीवन और जन्म आज सुफल हो गये, क्योंकि आज हमने नयन भरकर तुलसीदासके प्राणप्यारेका दर्शन किया है ॥१२॥

[६९]

जनक बिलोकि बार बार रघुबरको ।

मुनिपद सीस नाय, आयसु-असीस पाय,
एई बातैं कहत गवन कियो घरको ॥ १ ॥
नींद न परति राति, प्रेम-पन एक भाँति,
सोचत, सकोचत बिरंचि-हरि-हरको ।
तुम्हते सुगम सब देव ! देखिबेको अब
जस हंस किए जोगवत जुग परको ॥ २ ॥
ल्याए संग कौसिक, सुनाए कहि गुनगन,
आए देखि दिनकर-कुल-दिनकरको ।
तुलसी तेऊ सनेहको सुभाउ बाउ मानो
चलदलको सो पात करै चित चरको ॥ ३ ॥

जनकजी बार-बार रघुनाथजीको देखकर, मुनिवरके चरणोंमें सिर नवा, उनकी आज्ञा और आशीर्वाद पा, ये ही बातें करते अपने घरको गये ॥ १ ॥ रघुनाथजीका प्रेम और धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञा—ये

दोनों ही समान हैं; अतः इनके लिये उन्हें बड़ा सोच हो रहा है और रात्रिमें निद्रा भी नहीं पड़ती । [अपनी कार्यसिद्धिके लिये प्रार्थना कर] वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको भी संकोचमें डालते हैं और यह कहते हुए कि 'हे देव ! तुम्हारी कृपासे सब कुछ देखना सुगम है,' अपने सुयशको हंसरूप किये उसके [प्रेम और प्रणरूप] दोनों परोंकी सँभाल करते हैं ॥ २ ॥ इसी समय श्रीविश्वामित्रजी दोनों भाइयोंको साथ ले आये और उनके गुणगण कह सुनाये । तुलसीदास कहते हैं, 'सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रको आये देख महाराज जनकका चित्त स्नेहयुक्त स्वभाव-रूप वायुके झकोरेसे पीपलके पत्तेके समान चञ्चल हो गया ॥ ३ ॥

राग केदारा

[७०]

रंग-भूमि भोरे ही जाइकै ।
राम-लषन लखि लोग लूटिहैं लोचन-लाभ अघाइकै ॥ १ ॥
भूप-भवन, घर घर, पुर बाहर, इहै चरचा रही छाइकै ।
मगन मनोरथ-मोद नारि-नर, प्रेम-बिबस उठैं गाइकै ॥ २ ॥
सोचत बिधि-गति समुझि, परसपर कहत बचन बिलखाइकै ।
कुँवर किसोर, कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै ॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि, मनाइ पितर-सुर, सीस ईसपद नाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइकै ॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाइकै ।
सुनि अनुकूल, मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइकै ॥ ५ ॥

कौसिक-कथा एक एकनिसों कहत प्रभाउ जनाइकै।
सीय-राम-संजोग जानियत, रच्यो बिरंचि बनाइकै॥ ६॥
एक सराहि सुबाहु-मथन बर बाहु, उछाह बढ़ाइकै।
सानुज राज-समाज बिराजिहैं राम पिनाक चढ़ाइकै॥ ७॥
बड़ी सभा बड़ो लाभ, बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइकै।
को सोहिहै, और को लायक रघुनायकहि बिहायकै?॥ ८॥
गवनिहैं गँवहिं गवाँइ गरब गृह नृपकुल बलहि लजाइकै।
भलीभाँति साहब तुलसीके चलिहैं ब्याहि बजाइकै॥ ९॥

'कल प्रातःकाल होते ही रङ्गभूमिमें पहुँचकर लोग राम और लक्ष्मणको देख जी खोलकर नेत्रोंका लाभ लूटेंगे'॥ १॥ महाराजके महल तथा नगरके बाहर-भीतर घर-घरमें यही चर्चा फैली हुई है। सब नर-नारी अपनी मनोरथसिद्धिसे आनन्दित हो प्रेमवश यही गाने लगते हैं॥ २॥ विधाताकी गति समझकर सब लोग सोच करते हैं और आपसमें बिलखाकर ऐसे वचन कहते हैं—'भाई! बड़ा असमञ्जस आ पड़ा है, बालकोंकी तो किशोर अवस्था है और धनुष बड़ा ही कठोर है'॥ ३॥ इस प्रकार सभी लोग अपने-अपने सुकृतोंका स्मरण कर, चित्तमें अपना-सा ही हित जान, पितृगण, देवता और शिव-विष्णु आदि ईश्वरोंके चरणोंमें सिर नवा रघुनाथजीके हाथसे धनुर्भंग होना चाहते हैं॥ ४॥ स्त्रियाँ कनसुई*लेती फिरती हैं और पुरुष गणक (ज्योतिषी) बुलाकर

* शकुनविचारकी एक रीति, जिसमें स्त्रियाँ गोबरकी गौरी बनाकर चलनीमें रख पृथिवीपर फेंकती हैं। यदि वह सीधी गिरे तो शुभ और उलटी या आड़ी गिरे तो अशुभ मानी जाती है।

शकुन पूछते हैं। उनसे अनुकूल उत्तर सुनकर वे प्रसन्न मनसे दौड़कर धैर्य धारण करते हैं ॥ ५ ॥ महाराज जनक एक-एकसे श्रीविश्वामित्रजी-का प्रभाव जतलाकर उनकी कथा सुनाते हैं और कहते हैं कि जान पड़ता है, विधाताने सीता और रामका संयोग निश्चय करके रचा है ॥ ६ ॥ एक कोई उत्साह बढ़ाकर भगवान् रामकी सुबाहुका मथन करनेवाली भुजाओंकी सराहनाकर कहते हैं—'भाई! रघुनाथजी निश्चय ही धनुष चढ़ाकर भाई लक्ष्मणसहित राजसभामें विराजमान होंगे ॥ ७ ॥ क्योंकि इस बड़ी सभामें रघुनाथजीको छोड़कर और ऐसा कौन योग्य है जो [सीतामिलनरूप] बड़ा लाभ, बड़ा यश और बड़ी बड़ाई पाकर सुशोभित हो सके ? ॥ ८ ॥ अब अन्य राजालोग धनुषके ऊपर अपना गर्व गवाँकर तथा अपने बलको लज्जितकर घर लौट जायँगे और तुलसीदासके प्रभु गाजे-बाजेके साथ अपना विवाहकर प्रस्थान करेंगे ॥९॥

पुष्पवाटिकामें

राग टोड़ी

[७१]

भोर फूल बीनबेको गये फुलवाई हैं।

सीसनि टिपारे, उपवीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं ॥ १ ॥

रूपके अगार, भूपके कुमार, सुकुमार,
गुरके प्रानअधार संग सेवकाई हैं।

नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,
कौसिक-से कोही बस किये दुहुँ भाई हैं ॥ २ ॥

सखिनसहित तेहि औसर बिधिके सँजोग
गिरिजाजू पूजिबेको जानकीजू आई हैं।
निरखि लषन-राम जाने ऋतुपति-काम,
मोहि मानो मदन मोहनी मूड़ नाई हैं ॥ ३ ॥
राघौजू-श्रीजानकी-लोचन मिलिबेको मोद
कहिबेको जोगु न, मैं बातैं-सी बनाई हैं।
स्वामी, सीय, सखिन्ह, लखन, तुलसीको तैसो
तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई हैं ॥ ४ ॥

प्रातःकाल होते ही राम और लक्ष्मण फूल बीननेके लिये फुलवाड़ीमें पधारे हैं। उनके सिरोंपर चौतनी टोपी, (गलेमें) यज्ञोपवीत और कमरमें पीताम्बर तथा बायें हाथमें फूलोंके दोने शोभायमान हैं, जिनसे उनकी सुन्दरता सवायी हो गयी है ॥ १ ॥ दोनों भाई [स्वभावसे ही] रूपके भण्डार हैं, तिसपर भी राजकुमार, सुकुमार शरीर, गुरुके प्राणाधार और उनके साथ सेवाभावसे उपस्थित हैं। वे नीचके समान गुरुजीकी टहलमें लगे रहते हैं; उनका रुख देखकर परिचर्या करते हैं, इससे उन्होंने विश्वामित्र-जैसे क्रोधी मुनीश्वरको भी अपने अधीन कर लिया है ॥ २ ॥ दैववश इसी समय पार्वतीजीका पूजन करनेके लिये सखियोंके सहित श्रीसीताजी आ गयीं। वहाँ उन्होंने राम और लक्ष्मणको देखा और उन्हें साक्षात् ऋतुराज वसन्त और कामदेव ही समझा। उन्हें देखकर वे ऐसी मोहित हो गयीं मानो कामदेवने उनके मस्तकपर मोहनी डाल दी हो ॥ ३ ॥ भगवान् राम और सीताजीके दृष्टिमिलापका जो

आनन्द हुआ वह कहनेयोग्य नहीं है। मैंने तो कुछ बातें-सी बना दी हैं। उस समय भगवान् राम, सीता, सखीजन, लक्ष्मणजी और तुलसीदास—इनमेंसे जिनका जैसा सम्बन्ध है उनका वैसा ही चित्त हो गया ॥ ४ ॥

[७२]

पूजि पारबती भले भाय पाँय परिकै।
सजल सुलोचन, सिथिल तनु पुलकित,
आवै न बचन, मन रह्यो प्रेम भरिकै ॥ १ ॥
अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनिसों हौं,
कही चाहौं बात, मातु, अंत तौ हौं लरिकै।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो बरु बरिकै ॥ २ ॥
राम कामतरु पाइ, बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ,
माँग-कोषि तोषि-पोषि, फैलि-फूलि-फरिकै।
रहौगी, कहौगी तब, साँची कही अंबा सिय,
गहे पाँय द्वै, उठाय, माथे हाथ धरिकै ॥ ३ ॥
मुदित असीस सुनि, सीस नाइ पुनि पुनि,
बिदा भई देवीसों जननि डर डरिकै।
हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत,
गवनी भवन तुलसीस-हियो हरिकै ॥ ४ ॥

श्रीसीताजीने बड़े भावसे चरणोंमें पड़कर पार्वतीजीका पूजन किया। उनके नेत्र सजल हो गये, शरीर शिथिल और पुलकित

हो गया, मुखसे वचन नहीं निकलता। तथा मन प्रेमसे भर गया ॥ १ ॥ [वे कहने लगीं–] 'मैं शङ्करप्रिया अन्तर्यामिनी और सम्पूर्ण जगत्‌की स्वामिनी आपसे अपने हृदयकी बात कहना चाहती हूँ [सो आप क्षमा करें] क्योंकि हे मातः! आखिर मैं लड़की ही तो हूँ।' तब कृपामयी भवानीकी मूर्ति अपनी मनोहर माला देकर बोली, 'सीते! अपना मन-चाहा वर वरण करके अपनी सब कामनाएँ पूर्ण करो ॥ २ ॥ तुम रामरूप कल्पवृक्षको पाकर, उसे बेलके समान अपना आश्रय बना, सुहाग और कोखसे सन्तुष्ट हो, फैल-फूलकर फलोगी। हे सीते! उस समय तुम कहोगी कि 'अम्बाजीने ठीक ही कहा था।' तब सीताजीने उनके दोनों चरण पकड़ लिये और उन्होंने माथेपर हाथ रखकर उन्हें उठा लिया ॥ ३ ॥ देवीका आशीर्वाद सुन सीताजी परम आनन्दित हो, उन्हें पुनः पुनः मस्तक नवा, [विलम्ब हो जानेके कारण] माताका भय मानकर उनसे विदा हुईं और अपना मन भावता हुआ देख साथकी सहेलियाँ भी गीत गाती तुलसीदासके प्रभुका चित्त चुराकर राजभवनको चली गयीं ॥ ४ ॥

रंगभूमिमें

[७३]

रंगभूमि आए दसरथके किसोर हैं।

पेखनो सो पेखन चले हैं पुरनर-नारि,
बारे-बूढ़े, अंध-पंगु करत निहोर हैं ॥ १ ॥

नील पीत नीरज कनक मरकत घन-
दामिनि-बरन तनु, रूपके निचोर हैं।

सहज सलोने, राम-लषन ललित नाम,
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं ॥ २ ॥

चरन सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीकेकै निषंग कसे, करकमलनि लसै
बान-बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥ ३ ॥

काननि कनकफूल, उपबीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।
राजिव-नयन, बिधुबदन, टिपारे सिर,
नख-सिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं ॥ ४ ॥

सभा-सरवर लोक-कोकनद-कोकगन
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं।
अबुध असैले मन-मैले महिपाल भये,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं ॥ ५ ॥

भाईसों कहत बात, कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर-से बोलत थोर थोर हैं।
सनमुख सबहि, बिलोकत सबहि नीके,
कृपासों हेरत हँसि तुलसीकी ओर हैं ॥ ६ ॥

'रंगभूमिमें दशरथजीके पुत्र पधारे हैं—यह सुनकर नगरके स्त्री, पुरुष सभी तमाशा देखने चल दिये हैं, बालक और वृद्ध तथा अन्धे और पङ्गु भी [अपनेको ले चलनेके लिये] निहोरा कर रहे हैं ॥ १ ॥ दोनों भाई नीले और पीले कमल, सुवर्ण एवं मरकतमणि तथा मेघ और बिजलीके-से वर्णवाले और रूपके सारस्वरूप ही हैं। वे स्वाभाविक ही

सुन्दर हैं, उनके राम और लक्ष्मण—ये मनोहर नाम हैं तथा जैसे सुने गये थे वैसे ही राजकुमारोंमें सिरमौर हैं ॥ २ ॥ उनके चरण कमलके समान हैं; जंघा, जानु और कटिप्रदेश बड़े सुन्दर हैं, तथा कन्धे विशाल और भुजाएँ बड़ी बलशालिनी हैं। वे अति सुन्दर तरकस कसे हुए हैं तथा उनके करकमलोंमें अति मनोहर और कठोर धनुष-बाण शोभायमान हैं ॥ ३ ॥ उनके कानोंमें सोनेके कर्णफूल, गलेमें सुन्दर यज्ञोपवीत तथा शरीरमें अच्छे-अच्छे छोरोंवाले पीताम्बर सुशोभित हैं। उनके नयन कमलके तथा मुख चन्द्रमाके समान हैं, सिरपर चौतनी टोपियाँ हैं तथा नखसे लेकर शिखापर्यन्त प्रत्येक अङ्गमें ठौर-ठौरपर ठगौरी है। [अर्थात् प्रत्येक अंग चित्तको ठग लेनेवाला है] ॥ ४ ॥ सभा श्रेष्ठ सरोवरके समान है तथा वहाँ एकत्रित हुए लोग कमल एवं चकवा-चकवीतुल्य हैं। वे रामरूप सूर्यदेवको उदित हुआ देख मनमें परम आनन्दित हो रहे हैं तथा अज्ञानी और द्वेष माननेवाले राजाओंके चित्त, जिनमेंसे कुछ उल्लूके समान और कुछ कुमुद एवं चकोरवत् जान पड़ते हैं, मैले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ भगवान् राम जब भाईसे बातें करते हैं तो विश्वामित्रजीसे सकुचाकर और मेघके समान गम्भीर शब्द बोलते हैं तथा अधिक बोलते भी नहीं हैं। प्रभु सभीके सम्मुख [अनुकूल] हैं, सभीको अच्छी दृष्टिसे देखते हैं तथा तुलसीदासकी ओर भी कृपापूर्वक हँसकर देख रहे हैं ॥ ६ ॥

[७४]

एई राम-लषन जे मुनि सँग आये हैं।
चौतनी-चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे-पाछे,
आछे हुते आछे आछे आछे भाय भाये हैं ॥ १ ॥

साँवरे गोरे सरीर, महाबाहु, महाबीर,
कटि तून तीर धरे, धनुष सुहाये हैं।
देखत कोमल, कल, अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदंड-कला कलित सिखाये हैं ॥ २ ॥
इन्हहीं ताड़का मारी, गौतमकी तिय तारी,
भारी भारी भूरि भट रन बिचलाये हैं।
ऋषि-मख रखवारे, दसरथके दुलारे,
रंगभूमि पगुधारे, जनक बुलाये हैं ॥ ३ ॥
इन्हके बिमल गुन गनत पुलकि तनु
सतानंद-कौसिक नरेसहि सुनाये हैं।
प्रभुपद मन दिये, सो समाज चित्त किये
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाये हैं ॥ ४ ॥

[पुरनारियाँ कहती हैं–] 'जो विश्वामित्र मुनिके साथ आये हैं वे राम-लक्ष्मण ये ही हैं। सखि ! देखो, ये चौतनी टोपी और अँगरखा पहने आगे-पीछे चलते बड़े शोभायमान जान पड़ते हैं। जो अच्छे (देवता आदि) से भी अच्छे (ब्रह्मा, महादेव आदि) हैं उन्हें भी ये अच्छे भावसे प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥ इनके शरीर श्याम एवं गौर वर्ण हैं, ये महाबाहु और महान् वीर हैं तथा इनके कटिप्रदेशमें बाणयुक्त तरकस और हाथोंमें धनुष शोभायमान है। ये देखनेमें बड़े ही कोमल, सुन्दर और अतुलित बलशाली हैं। इन्हें विश्वामित्रजीने अति सुन्दर ढंगसे धनुर्विद्या सिखायी है ॥ २ ॥ इन्हींने ही ताड़काको मारा है, और अहल्याका उद्धार किया है तथा इन्हींने बड़े-बड़े शूरवीरोंको युद्धमें

विचलित कर दिया है। इस समय विश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षा करनेवाले ये दशरथराजकुमार जनकजीके बुलानेसे रङ्गभूमिमें पधारे हैं॥३॥ शतानन्द और विश्वामित्रजीने पुलकित शरीर हो इनके पवित्र गुणोंको गिनकर महाराज जनकको सुनाया है। तुलसीदासने भी प्रभुके चरणकमलोंमें चित्त लगा, उस समाजको हृदयमें धारणकर आनन्दसे उमँग-उमँगकर उनका गान किया है ॥ ४ ॥

राग कान्हरा

[७५]

सीय स्वयंबरु, माई, दोउ भाई आए देखन ।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन,
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन ॥ १ ॥
निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक-एक सों,
'भूरिभाग हम धन्य, आलि! ए दिन, ए खन।'
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब,
सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन ॥ २ ॥

'हे माई! देखो, दोनों भाई सीताजीका स्वयंवर देखने आये हैं'—यह सुनते ही सब स्त्रियाँ शरीरमें पुलकित हो मानो मनोहर कामदेवको निहारनेके लिये प्रसन्न चित्तसे जा रही हैं॥ १॥ उनकी सुन्दरता देखकर वे चित्तमें सुख पाकर एक एकसे कहती हैं–'अरी आली! आज इस समय तो हम बड़ी भाग्यशालिनी और धन्य हैं।' तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार वे सब प्रेमरूप सुन्दर रंगसे अपने चित्तरूप चित्रशालामें उस समाजका चित्र खींचनेमें लग गयीं ॥ २ ॥

राग गौरी

[७६]

राम-लषन जब दृष्टि परे, री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री ॥१॥
धनुषजग्य कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे, री ।
छबि-सुरसभा मनहु मनसिजके कलित कलपतरु रूख फरे, री ॥२॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री ।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भलै पैत पासे सुढर ढरे, री ॥३॥

'अरी सखि ! जबसे राम-लक्ष्मण दृष्टिगोचर हुए हैं तबसे उन्हें देखते ही जनकपुरके सब लोगोंको मानो विधाताने अनेक विदेह बना दिया है ॥ १ ॥ इसी समय धनुषयज्ञकी सुरम्य भूमिमें कौतुकसे ही दोनों भाई आ खड़े हुए, मानो छबिमयी देवसभामें कामदेवके दो मनोहर कल्पवृक्ष फलित हुए हैं ॥ २ ॥ अरी ! इनका मुख, देखते ही सारी कामनाओंकी वृष्टि करता है और चित्तमें प्रीति तथा आनन्द भरकर उसे आकर्षित कर लेता है ।' तुलसीदास कहते हैं—सभी लोग महाराज जनककी प्रशंसा करते हैं कि इस समय महाराजके पासे बड़ी ही अच्छी घड़ीके पड़े हैं ॥ ३ ॥

[७७]

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री ।
राजकुँवर-मूरति रचिबेकी रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौ, री ॥१॥
नख-सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री ।
साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥२॥

मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु, भूरिभाग सिय-मातु-पितौ, री ॥३॥

'अरी सुमुखि ! तनिक चित्त लगाकर देखो तो इन राजकुमारोंकी मनोहर मूर्ति रचनेकी रुचि करके विधाताने कितना परिश्रम किया है? ॥ १ ॥ अरी ! नखसे सिखतक इनकी सुन्दरता देखकर जितना सुख होता है वह कहा नहीं जाता। इस श्याम-छविरूप अमृतको भरनेके लिये तुम अपने नेत्रकमलरूप कलशोंको खाली करो ॥ २ ॥ मेरे विचारसे तो इन्हें बुलानेके लिये ही जनकजीने इतना ठाट-बाट रचा है। तुलसीदास कहते हैं, सीताजीके माता-पिताका बड़ा भाग्य है, भगवान् निश्चय ही धनुष तोड़ेंगे' ॥ ३ ॥

राग सारंग

[७८]

जबतें राम लषन चितए, री।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥१॥
प्रेम-बिबस माँगत महेस सों, देखत ही रहिए नित ए, री।
कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥२॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि, बड़े भाग आए इत ए, री।
कुलिस-कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदुमूरति किसोर कित ए, री ॥३॥
बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रितए, री।
तुलसिदास ते धन्यजनम जन, मन-क्रम-बच जिन्हके हित ए, री ॥४॥

'अरी सखि ! जबसे राम-लक्ष्मणको देखा है तबसे जनकपुरके नर-नारी एकटक रह गये हैं, उन्हें पलक मारनेमें मानो कई कल्प बीत

जाते हैं ॥ १ ॥ वे सब प्रेमके वशीभूत हो महादेवजीसे यही माँगते हैं कि नित्य इन्हें ही देखते रहें, या तो सर्वदा ये ही इन नेत्रोंमें बसे रहें या जिधर वे जायँ उधर ही ये नेत्र भी चले जायँ ॥ २ ॥ भला कोई व्यक्ति राजाको समझाकर ऐसा क्यों नहीं कहता कि ये बड़े भाग्यसे इधर आये हैं [अतः प्रण त्यागकर इन्हें ही सीताजी विवाह दें]। भला कहाँ तो वज्रसे भी कठोर श्रीमहादेवजीका धनुष, और कहाँ ये अति मृदुल किशोर मूर्ति ? ॥ ३ ॥ इन्हें रचते समय विधाताने सुन्दरताकी खोज करते-करते सारे भुवन खाली कर दिये थे। तुलसीदास कहते हैं, जिन्हें मन, वचन और कर्मसे ये प्रिय हैं उन लोगोंके जन्म धन्य हैं' ॥ ४ ॥

[७९]

सुनु, सखि, भूपति भलोई कियो, री ।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुँवर दोउ नगर-लोग अवलोकि जियो, री ॥१॥
मानि प्रतीति कहे मेरे तैं कत सँदेह-बस करति हियो, री ।
तौलों है यह संभु-सरासन, श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री ॥२॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी, औ रामहि ऐसो रूप दियो, री ।
तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निजकर यह संजोग सियो, री ॥३॥

'अरी सखि ! सुन, महाराज जनकने बड़ा ही अच्छा किया है। देखो, उनकी कृपासे ही महाराज दशरथके इन दोनों कुमारोंको देखकर नगरनिवासी जीवन धारण कर रहे हैं ॥ १ ॥ मेरे कहनेसे विश्वास कर, चित्तको सन्देहवश क्यों करती है ? यह महादेवजीका धनुष तभीतक दीखता है जबतक रघुनाथजी इसे नहीं लेते ॥ २ ॥ जिस विधाताने सीताजीको सँवारकर रचा है और रामको ऐसा रूप दिया

है—तुलसीदास कहते हैं—उस चतुर विधाताने ही अपने हाथसे यह संयोग मिलाया है' ॥ ३ ॥

[८०]

अनुकूल नृपहि सूलपानि हैं ।
नीलकंठ कारुन्यसिंधु हर दीनबंधु दिनदानि हैं ॥ १ ॥
जो पहिलेही पिनाक जनक कहँ गए सौंपि जिय जानि हैं ।
बहुरि त्रिलोचन लोचनके फल सबहि सुलभ किए आनि हैं ॥ २ ॥
सुनियत भव-भावते राम हैं, सिय भावती-भवानि हैं ।
परखत प्रीति-प्रतीति, पयज-पनु रहे काज ठटु ठानि हैं ॥ ३ ॥
भए बिलोकि बिदेह नेहबस बालक बिनु पहिचानि हैं ।
होत हरे होने बिरवनि दल सुमति कहति अनुमानि हैं ॥ ४ ॥
देखियत भूप भोरकेसे उडुगन, गरत गरीब गलानि हैं ।
तेज-प्रताप बढ़त कुँवरनको, जदपि सँकोची बानि हैं ॥ ५ ॥
बय किसोर, बरजोर बाहुबल-मेरु मेलि गुन तानिहैं ।
अवसि राम राजीव-बिलोचन संभु-सरासन भानिहैं ॥ ६ ॥
देखिहैं ब्याह-उछाह नारि-नर, सकल-सुमंगल-खानि हैं ।
भूरिभाग तुलसी तेऊ, जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं ॥ ७ ॥

महाराज जनकको श्रीमहादेवजी अनुकूल हैं। वे नीलकण्ठ, करुणासागर शिवजी दीनबन्धु और दीनोंको दान करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जो सब बातोंको हृदयमें जानकर पहलेहीसे जनकजीको धनुष सौंप गये थे उन्हीं भगवान् त्रिनयनने इन राजकुमारोंको लाकर इस समय हम सबको नेत्रोंका फल सुलभ कर दिया है ॥ २ ॥ सुना जाता है, राम भगवान् शङ्करको प्रिय हैं और जानकी पार्वतीजीको भाती हैं। इस

समय वे [राम-जानकीकी] प्रीति-प्रतीति और [राजा जनकके] टेक एवं प्रणकी परीक्षा कर रहे हैं, इसीलिये कार्यके ठाट ठटकर उसमें विलम्ब कर रहे हैं ॥ ३ ॥ इन बालकोंको बिना पहचाने केवल देखनेसे ही जनकजी स्नेहवश हो गये हैं [इससे जान पड़ता है कि इनके साथ उनका सम्बन्ध अवश्य होनेवाला है,] मैं तो अपनी बुद्धिसे अनुमान करके कहती हूँ कि होनहार वृक्षोंके पत्ते हरे होते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि इन बालकोंका स्वभाव संकोची है, तो भी इनके सामने अन्य नृपतिगण प्रातःकालीन तारागणके समान तेजहीन दिखायी पड़ते हैं और दीनताकी ग्लानिसे गले जाते हैं और इनका तेज एवं प्रताप निरन्तर बढ़ रहा है ॥ ५ ॥ यद्यपि अभी इनकी किशोरावस्था है तथापि ये धनुषको अपने प्रबल बाहुबलरूप मेरुमें रखकर उसका रोंदा चढ़ा देंगे। हमारे विचारसे तो कमलनयन भगवान् राम निश्चय ही इस महादेवजीके धनुषको तोड़ डालेंगे ॥ ६ ॥ भगवान्‌के इस सकल सुमङ्गलखानि विवाहोत्सवको सब नर-नारी देखेंगे। तुलसीदासजी कहते हैं, जो लोग इसका श्रवण, गान और बखान करेंगे वे भी बड़े ही भाग्यवान् हैं ॥ ७ ॥

राग केदारा

[८१]

रामहि नीके कै निरखि, सुनैनी !
मनसहु अगम समुझि, यह अवसरु कत सकुचति, पिकबैनी ॥ १ ॥
बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भई सीय सुमंगल-ऐनी।
जा कारन लोचन-गोचर भइ मूरति सब सुखदैनी ॥ २ ॥
कुलगुर-तियके मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी।
तुलसी सिथिल देह-सुधि-बुधि करि सहज सनेह-बिषैनी ॥ ३ ॥

[शतानन्दजीकी स्त्री जानकीजीकी मातासे कहती हैं—] 'हे सुनयनी ! तू रामचन्द्रजीको अच्छी तरह देख ले। अरी पिकभाषिणी ! इन्हें तू मनसे भी अगम समझ। इस अवसरपर तू सकुचाती क्यों है ? ॥ १ ॥ जिसके कारण यह सब प्रकारके सुख देनेवाली मधुर मूर्ति हमारे नेत्रोंका विषय हुई है वह सब प्रकारके सुमङ्गलोंकी आश्रयभूता सीता हमारे परम सौभाग्यसे ही यज्ञभूमिमें प्रकट हुई है' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं—अपने कुलगुरुकी स्त्रीके ये मधुर वचन सुनकर कुशाग्रबुद्धि जनकप्रिया शरीरकी सुध-बुध भूलकर भगवान्‌की ओर स्वाभाविक स्नेहसे देखने लगी ॥ ३ ॥

[८२]

मिलो बरु सुंदर सुंदरि सीतहि लायकु,
साँवरो सुभग, शोभाहूँको परम सिंगारु।
मनहूको मन मोहै, उपमाको को है ?
सोहै सुखमासागर संग अनुज राजकुमारु ॥ १ ॥
ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननिको फल कैधौं, सियको सुकृत-सारु।
सरद-सुधा-सदन-छबिहि निंदै बदन,
अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु ॥ २ ॥
जनक-मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसी औ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु।
तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,
'पन औ कुँवर दोऊ प्रेमकी तुला धौं तारु' ॥ ३ ॥

'अरी सखी! शोभाका भी परम शृंगाररूप यह अति सुन्दर साँवला वर तो सीताहीके लायक है। यह तो सुन्दरी सीताको ही मिलना चाहिये। यह मनका भी मन मोह लेते हैं। इनकी उपमाके योग्य और कौन हो सकता है? इनके साथ इनका अनुज यह सुखमासागर राजकुमार सुशोभित है ॥ १ ॥ इनके सब अङ्ग अति सुन्दर हैं; यह देहधारी कामदेव, नेत्रोंका फल अथवा सीताके सुकृतोंका सार ही तो नहीं हैं? इनका मुखचन्द्र शरत्कालीन सुधाकरकी छविकी निन्दा करता है तथा इनके अरुण और विशाल नयन नवीन कमलदलके समान सुन्दर हैं ॥ २ ॥ यदि ऐसी मनमोहिनी मूर्तिको देखकर भी जनकजीका पहला (धनुर्भङ्गके प्रणका) विचार बना हुआ है तो उनके चित्तकी रीति प्रीतिसे रहित है।' तुलसीदासजी कहते हैं, इस समय राजा जनकको कोई ऐसा कहकर नहीं समझाता कि अपने प्रण और इन राजकुमारोंको प्रेमकी तराजूमें तो रखकर देखो ॥ ३ ॥

[८३]

देखि देखि री! दोउ राजसुवन।
गौर स्याम सलोने लोने, लोने लोयननि,
जिन्हकी सोभा तें सोहै सकल भुवन ॥ १ ॥
इन्हहीं ताड़का मारी, मग मुनि-तिय तारी,
ऋषिमख राख्यो, रन दले हैं दुवन।
तुलसी प्रभुको अब जनकनगर-नभ,
सुजस-बिमल-बिधु चहत उवन ॥ २ ॥

'अरी सखी! इन दोनों राजकुमारोंको तो देख। देख, इनके अति सुन्दर लावण्यमय श्याम-गौर शरीर हैं तथा लुभावने नयन हैं, जिनकी

शोभासे सारे भुवन शोभायमान हो रहे हैं ॥ १ ॥ इन्हींने ताड़काको मारा है और मार्गमें मुनि-पत्नीका उद्धार किया है, तथा इन्हींने विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा कर युद्धमें सुबाहु आदि दुष्टोंका दलन किया है।' तुलसीदास कहते हैं, अब शीघ्र ही जनकपुरीमें प्रभुका सुयशरूप निर्मल चन्द्र उदित होना चाहता है ॥ २ ॥

राग टोड़ी

[८४]

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै ।
आपने आपने थल, आपने आपने साज,
आपनी आपनी बर बानिक बनाइकै ॥ १ ॥
कौसिक सहित राम-लषन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठए बुलाइकै ।
दरसलालसा-बस लोग चले भाय भले,
बिकसित-मुख निकसत धाइ धाइकै ॥ २ ॥
सानुज सानंद हिये आगे ह्वै जनक लिये,
रचना रुचिर सब सादर देखाइकै ।
दिये दिब्य आसन सुपास सावकास अति,
आछे आछे बीछे बीछे बिछौना बिछाइकै ॥ ३ ॥
भूपतिकिसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ,
देखिबेको दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइकै ।
उदय-सैल सोहैं सुंदर कुँवर, जोहैं,
मानौ भानु भोर भूरि किरनि छिपाइकै ॥ ४ ॥

कौतुक कोलाहल निसान-गान पुर, नभ
बरषत सुमन बिमान रहे छाइकै।
हित-अनहित, रत-बिरत बिलोकि बाल,
प्रेम-मोद-मगन जनम-फल पाइकै ॥ ५ ॥
राजाकी रजाइ पाइ सचिव-सहेली धाइ,
सतानंद ल्याए सिय सिबिका चढ़ाइकै।
रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि,
बिथके बिलोचन-निमेषै बिसराइकै ॥ ६ ॥
हानि, लाहु, अनख, उछाहु, बाहुबल कहि
बंदि बोले बिरद अकस उपजाइकै।
दीप दीपके महीप आए सुनि पैज पन,
कीजै पुरुषारथको अवसर भौ आइकै ॥ ७ ॥
आनाकानी, कंठ-हँसी मुँहा-चाही होन लगी,
देखि दसा कहत बिदेह बिलखाइकै।
घरनि सिधारिए, सुधारिए आगिलो काज,
पूजि पूजि धनु कीजै बिजय बजाइकै ॥ ८ ॥
जनक-बचन छुए बिरवा लजारु के से
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै।
तुलसी लखन माषे, रोषे, राखे रामरुख,
भाषे मृदु परुष सुभायन रिसाइकै ॥ ९ ॥

आज राजा लोग अपने-अपने साज और अपने-अपने सुन्दर वेष बनाकर रंगभूमिमें अपने-अपने स्थानोंपर जाकर बैठ गये हैं ॥ १ ॥ इसी

समय महाराज जनकने, जिनके अति सुन्दर राम और लक्ष्मण नाम हैं उन महामनोहर बालकोंको विश्वामित्रजीके सहित बुला भेजा। उनके दर्शनोंकी लालसासे पुरवासी लोग भले भावसे प्रसन्नवदन होकर अपने-अपने घरोंसे निकल-निकलकर दौड़ पड़े ॥ २ ॥ तब जनकजीने अपने छोटे भाई कुशध्वजके सहित आनन्दित हो आगे आकर उनका स्वागत किया तथा आदरपूर्वक धनुर्यज्ञकी समस्त रुचिर रचना दिखाकर उन्हें दिव्य आसन दिये, जिनपर सब प्रकारका सुपास और सावकाश था तथा अच्छे-अच्छे बिछौने बिछे हुए थे ॥ ३ ॥ [दर्शकगण कहते हैं—] 'अहा! दोनों ओर राजकुमार हैं और बीचमें मुनिराज विश्वामित्रजी विराजमान हैं। यह इन्हें देखनेका बड़ा अच्छा अवसर है; इसलिये और सब देखना छोड़कर इन्हींका दर्शन करो। ये दोनों सुन्दर राजकुमार ऐसे जान पड़ते हैं मानो उदयाचलपर प्रातःकालीन सूर्य अपनी सहस्र किरणोंको छिपाकर उदित हुआ हो ॥ ४ ॥ जनकपुरमें बड़ा कौतुक तथा निशान और गानका कोलाहल हो रहा है तथा आकाशमें देवताओंके विमान छाये हुए हैं, जिनसे फूलोंकी वर्षा हो रही है। मित्र-शत्रु, रागी-विरागी—ये सब इन बालकोंको देखकर अपना जन्मफल पाकर प्रेम और आनन्दमें मग्न हो रहे हैं ॥ ५ ॥ फिर महाराज जनककी आज्ञा पा मन्त्रिवर्ग और सहेलियाँ दौड़ीं। तथा शतानन्दजी सीताजीको पालकीपर चढ़ाकर ले आये। श्रीजानकीजीके रूपदीपको निहारकर सब नर-नारी नेत्रोंके निमेष भूलकर मृग और मृगियोंके समान चकित-से रह गये ॥ ६ ॥ इसी समय बन्दीजन [धनुष न टूटनेसे] हानि, [धनुर्भङ्गसे सीताजीकी प्राप्तिरूप] लाभ, [बहुत बल करनेपर भी धनुर्भङ्ग न कर सकनेके कारण राजाओंको हुआ] अनख, [जो धनुष तोड़ेगा उसे सीताजी

मिलेंगी—ऐसा कहकर] उत्साह तथा [रावण-बाणासुरादि विश्व-विजयी योद्धाओंके भी दाँत खट्टे करनेवाले धनुषको जो तोड़ेगा उसका] बाहुबलका बखान करके चित्तपर प्रभाव अंकित करते हुए विरुदावली कहने लगे और बोले, 'इस समय महाराज जनककी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर द्वीप-द्वीपान्तरके राजा लोग आये हुए हैं, सो उसे पूरी करें; अब पुरुषार्थका समय उपस्थित हो गया है' ॥ ७ ॥ उसे सुनकर राजाओंमें परस्पर आनाकानी, कण्ठ-हँसी (भीतर-ही-भीतर हँसना) तथा कानाफूसी होने लगी। इस दशाको देखकर महाराज जनक बिलखकर कहने लगे—'हे नृपतिगण ! आप अपने घरोंको जाइये और अपना अगला कार्य सँभालिये [यह कार्य तो आपलोगोंसे हो चुका]। अब आप धनुषकी पूजाकर अपनी विजयका घोष कीजिये' ॥ ८ ॥ जनकजीके ये वचन सुन वे सब वीर लज्जावती (छुईमुई) के पौधोंके समान संकोचवश सिर झुकाकर रह गये। तुलसीदासजी कहते हैं, इन वाक्योंसे लक्ष्मणजी भी खीझ गये, किन्तु रामचन्द्रजीका रुख देखकर अपनी रिसको रोककर स्वभावसे ही मधुर वचन बोले ॥ ९ ॥

[८५]

भूपति बिदेह कही नीकियै जो भई है।
बड़े ही समाज आजु राजनिकी लाज-पति
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है ॥ १ ॥
मेरो अनुचित न कहत लरिकाई-बस,
पन परमिति और भाँति सुनि गई है।
नतरु प्रभु-प्रताप उतरु चढ़ाय चाप
देतो पै देखाइ बल, फल पापमई है ॥ २ ॥

भूमिके हरैया उखरैया भूमिधरनिके,
विधि बिरचे प्रभाउ जाको जग जई है।
बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम,
सोहत सकोच सील नेह नारि नई है॥ ३॥
सहमी सभा सकल, जनक भए बिकल,
राम लखि कौसिक असीस-आग्या दई है।
तुलसी सुभाय गुरुपाँय लागि रघुराज
ऋषिराजकी रजाइ माथे मानि लई है॥ ४॥

लक्ष्मणजी बोले—'महाराज जनकने जो कुछ कहा है वह सब बहुत ठीक है। इस बहुत बड़े समाजमें आज राजाओंकी सारी लाज और इज़्ज़तको चुनौती देकर इस धनुषने एकबारगी छीन लिया है॥ १॥ आपके सामने कुछ कहना अनुचित है, तो भी अपने लड़कपनसे कुछ कहता हूँ, इस धनुर्भङ्गका फल और ही प्रकार सुना गया है; नहीं तो प्रभुके प्रतापसे इस धनुषको चढ़ाकर ही मैं जनकजीको उत्तर देता। मैं अपना बल अवश्य दिखा देता; परन्तु [करूँ क्या?] इससे प्राप्त होनेवाला फल पापमय है [क्योंकि जगज्जननी सीताजी तो मेरी माताके समान हैं]॥ २॥ इस समय विधाताने इस धनुषका प्रभाव भूमिका हरण करनेवाले बाणासुरादि तथा पर्वतोंके उखाड़नेवाले रावणादिके सहित सम्पूर्ण जगत्को जीतनेवाला बना दिया है। [परन्तु मैं तो इसे कुछ भी नहीं समझता]।' यह सुनकर रघुनाथजीने हृदयमें हँसकर लक्ष्मणजीको रोक दिया। उस समय वे शील, संकोच और स्नेहवश झुकी हुई ग्रीवासे सुशोभित होने लगे॥ ३॥ इससे सारी सभा सहम गयी,

जनकजी प्रेमविह्वल हो गये तथा विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीकी ओर देखकर उन्हें आशीर्वाद और धनुर्भङ्गके लिये आज्ञा दी। तुलसीदास कहते हैं, फिर स्वभावसे ही गुरुके चरणोंमें गिरकर रघुनाथजीने ऋषिराजकी आज्ञा सिरपर धारण कर ली ॥ ४ ॥

[८६]

सोचत जनक पोच पेच परि गई है।
जोरि कर कमल निहोरि कहैं कौसिकसों,
'आयसु भौ रामको सो मेरे दुचितई है ॥ १ ॥
बान, जातुधानपति, भूप दीप सातहूके,
लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।
जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु
आए बिधि हरि हारि सोई हाल भई है ॥ २ ॥
आपुही बिचारिए, निहारिए सभाकी गति,
बेद-मरजाद मानौ हेतुबाद हई है।
इन्हके जितौहैं मन, सोभा अधिकानी तन,
मुखनकी सुखमा सुखद सरसई है ॥ ३ ॥
रावरो भरोसो बल, कै है कोऊ कियो छल,
कैधों कुलको प्रभाव, कैधों लरिकई है ?।
कन्या, कल कीरति, बिजय बिस्वकी बटोरि
कैधों करतार इन्हहींको निरमई है ॥ ४ ॥
पनको न मोह, न बिसेष चिंता सीताहूकी,
लुनिहै पै सोई सोई जोई जेहि बई है।

रहै रघुनाथकी निकाई नीकी नीके नाथ,
हाथ सो तिहारे करतूति जाकी नई है' ॥ ५ ॥
कहि 'साधु, साधु' गाधि-सुवन सराहे राउ,
'महाराज ! जानि जिय ठीक भली दई है' ।
हरषे लखन, हरखाने बिलखाने लोग,
तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है ॥ ६ ॥

जनकजी सोचते हैं—'बड़ा बुरा पेंच आ पड़ा है।' वे श्रीविश्वामित्रजीसे हाथ जोड़कर निहोरा करते हुए कहने लगे, 'भगवन्! आपने जो रामको आज्ञा दी है उसके सम्बन्धमें मुझे सन्देह हो रहा है। बाणासुर, राक्षसराज रावण, सातों द्वीपके नृपतिगण और लोकपालोंके देखते ही इस धनुषने मानो पृथिवीको पकड़ लिया है। जिस प्रकार ज्योतिर्लिङ्गकी कथा सुनकर [उसका अन्त पानेके लिये स्वर्ग और पातालमें जानेपर भी] ब्रह्मा और विष्णु अन्तमें उसका पार न पाकर लौट आये थे वही हाल इस धनुषका भी हुआ है ॥ १-२ ॥ आप ही विचारिये और इस समय सभाकी गति देखिये। ऐसा जान पड़ता है मानो हेतुवाद (नास्तिकवाद) ने वेदकी मर्यादा नष्ट कर दी हो। इन बालकोंका तो जैसा मन प्रसन्न है वैसा ही शरीरकी शोभा बढ़ी हुई है तथा इनकी मुखोंकी सुन्दरता भी अति सुखदायिनी जान पड़ती है ॥ ३ ॥ इनकी जो प्रसन्नता है वह या तो आपके भरोसेका बल है, या कोई छल किये हुए देवता है, या इनके कुल (सूर्यवंश) का प्रभाव है और या केवल बालकपन है। अथवा विधाताने मेरी कन्या सीता तथा विश्वव्यापिनी कीर्ति और विजयको बटोरकर कहीं

इन्हींको तो नहीं रच दिया ॥ ४ ॥ मुझे अपने प्रणका मोह नहीं है और न सीताहीकी विशेष चिन्ता है क्योंकि जिस पुरुषने जो कुछ बोया है वह वही काटेगा । [मैं तो यही चाहता हूँ कि] रघुनाथजीकी नीकी निकाई नीकी ही बनी रहे, सो हे प्रभो ! यह तो आपहीके हाथ है, जिनकी कि बड़ी विचित्र करतूत है' ॥ ५ ॥ तब विश्वामित्रजीने साधु-साधु कहकर महाराज जनककी प्रशंसा की और कहा—'राजन् ! आपने अपने हृदयमें उचित जानकर बहुत ठीक बात निश्चय कर रक्खी है ।' [राजा जनकका भाव जानकर] लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए और हृदयमें बिलखाते हुए पुरवासी लोग भी आनन्दमग्न हो गये तथा जिसके राजा महाराज राम विजयी हैं वह तुलसीदास भी अत्यन्त प्रसन्न है ॥ ६ ॥

[८७]

सुजन सराहैं जो जनक बात कही है ।
रामहि सोहानी जानि, मुनिमनमानी सुनि ,
नीच महिपावली दहन बिनु दही है ॥ १ ॥
कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदनसों ,
नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है ।
देखे-सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम ,
साँचे तिरहुतिनाथ, साखि देति मही है ॥ २ ॥
रागऊ बिराग, भोग जोग जोगवत मन ,
जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है ।

तातें न तरनितें, न सीरे सुधाकरहूतें,
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ॥ ३ ॥
ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस,
बिकल बिलोकित, दुचितई सही है।
कामधेनु-कृपा हुलसानी तुलसीस उर,
पन-सिसु हेरि, मरजाद बाँधी रही है ॥ ४ ॥

इस समय जनकजीने जो बात कही उसकी साधु पुरुषोंने सराहना की। तथा उसे रामचन्द्रजीको प्रिय और विश्वामित्रजीको अभिमत जान अन्य नीच राजाओंकी पंक्ति बिना आगके ही जल गयी ॥ १ ॥ तब गाधिनन्दन विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर रघुनाथजीसे कहा—'महाराज जनककी गति बड़ी अग्राह्य है, वह वाणीसे ग्रहण नहीं की जा सकती। राजा तो अनेक देखे-सुने हैं, किन्तु वे सब झूठे और नाममात्रके ही हैं, सच्चे तो एकमात्र तिरहुतनाथ महाराज जनक ही हैं—इस विषयमें सारी पृथिवी साक्षी दे रही है ॥ २ ॥ इनका चित्त रागी होनेपर भी विरागी तथा भोग भोगनेयोग्य होकर भी योगयुक्त है। इन्होंने योगी याज्ञवल्क्यकी कृपासे सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त कर ली है। ये न तो सूर्यसे सन्तप्त होते हैं और न चन्द्रमासे शीतल ही होते हैं। इन्होंने तो उपाधिरहित सहज समाधिका निर्वाह कर लिया है ॥ ३ ॥ ऐसे अगाधबोधसम्पन्न होकर भी तुम्हारे स्नेहवश ये ऐसे व्याकुल दिखायी देते हैं मानो अत्यन्त चिन्ता सहन की हो।' [गुरुजीका यह कथन सुन] तुलसीदासजीके प्रभुके हृदयमें कृपारूप कामधेनु महाराज जनकके प्रणरूप वत्सको देखकर अति हुलसित हुई। किन्तु

[गुरुकी आज्ञारूप] मर्यादामें बँधी रह गयी [अर्थात् उन्होंने गुरु-आज्ञा बिना धनुर्भङ्ग नहीं किया] ॥ ४ ॥

[८८]

ऋषिराज ! राजा आजु जनक समान को ?
आपु यहि भाँति प्रीति सहित सराहित,
रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को ? ॥ १ ॥
भूमि-भोग करत अनुभवत जोग-सुख,
मुनि-मन-अगम अलख गति जान को ?
गुर-हर-पद-नेहु, गेह बसि भौ बिदेह,
अगुन-सगुन-प्रभु-भजन-सयान को ? ॥ २ ॥
कहनि रहनि एक, बिरति बिबेक नीति,
बेद-बुध-संमत पथीन निरबानको ?
गाँठि बिनु गुनकी कठिन जड़-चेतनकी,
छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को ॥ ३ ॥
सुनि रघुबीरकी बचन-रचनाकी रीति,
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहानको ।
मिट्यो महामोह जीको, छूट्यो पोच सोच सीको,
जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरानको ॥ ४ ॥
सभा, नृप, गुर, नर-नारि पुर, नभ सुर,
सब चितवत मुख करुनानिधानको ।
एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस,
तुलसीस तोरिए सरासन इसानको ॥ ५ ॥

[भगवान् राम बोले—] 'हे ऋषिराज ! आज जनकजीके समान और कौन राजा है, जिनकी आप इस प्रकार प्रीतिपूर्वक सराहना कर रहे हैं ? अहा ! इनके समान भाग्यवान् और कौन रागी या विरागी होगा ? ॥१॥ ये पृथिवीका भोग करते हुए योगसुखका भी अनुभव करते हैं । इनकी गति अलक्षित और मुनियोंके भी मनको अगम है, उसे कौन जान सकता है ? इनका श्रीगुरु और भगवान् शङ्करके चरणोंमें प्रेम है। ये घरमें रहते हुए भी विदेहभावको प्राप्त हो गये हैं । इनके समान निर्गुण तथा सगुण प्रभुका भजन करनेमें भी भला कौन कुशल है ? ॥ २ ॥ इनका कथन और रहन-सहन एक समान है । ये वैराग्य, विवेक, नीति तथा निर्वाणपदके बुधजनसम्मत पथिक हैं । इन्होंने बिना रस्सीकी जड-चेतनकी कठिन ग्रन्थिको अनायास ही खोल दिया है । इनके समान अपने स्वरूपका अच्छी प्रकार शोधन करनेवाला और कौन है ?' ॥ ३ ॥ रघुनाथजीकी वाक्यरचनाकी रीति सुनकर [उससे सकुचाकर] जनकजी प्रातःकालीन दीपकके समान हतप्रभ हो गये । उनके चित्तका महामोह मिट गया, सीताजीकी ओरसे उनकी क्षुद्र चिन्ता दूर हो गयी और उन्हें विदित हो गया कि पुराणपुरुषका अवतार हुआ है ॥ ४ ॥ इस समय सभा, महाराज जनक, गुरु, नगरके नरनारी और आकाशस्थित देवगण—ये सब करुणानिधान भगवान् रामका मुख निहारने लगे और एक-एकसे प्रेमवश प्रकटरूपसे कहने लगे—'हे तुलसीश ! आप भगवान् शङ्करका धनुष तोड़िये' ॥ ५ ॥

राग मारू

[८९]

सुनो भैया भूप सकल दै कान ।
बज्ररेख गजदसन जनक-पन बेद-बिदित, जग जान ॥ १ ॥

घोर कठोर पुरारि-सरासन, नाम प्रसिद्ध पिनाकु।
जो दसकंठ दियो बाँवों, जेहि हर-गिरि कियो है मनाकु ॥ २ ॥
भूमि-भाल भ्राजत, न चलत सो, ज्यों बिरंचिको आँकु।
धनु तोरै सोई बरै जानकी, राउ होइ की राँकु ॥ ३ ॥
सुनि आमरषि उठे अवनीपति, लगे बचन जनु तीर।
टरै न चाप, करैं अपनी सी महा महा बलधीर ॥ ४ ॥
नमित-सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर।
बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर ॥ ५ ॥
सप्त दीप नव खंड भूमिके भूपतिबृंद जुरे।
बड़ो लाभ कन्या-कीरतिको, जहँ-तहँ महिप मुरे ॥ ६ ॥
डग्यौ न धनु, जनु बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे।
रोषे लषन बिकट भृकुटी करि, भुज अरु अधर फुरे ॥ ७ ॥
सुनहु भानुकुल-कमल-भानु! जो अब अनुसासन पावौं।
का बापुरो पिनाकु, मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं ॥ ८ ॥
देखौ निज किंकरको कौतुक, क्यों कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यौं, तौ प्रभु-अनुग कहावौं ॥ ९ ॥
हरषे पुर-नर-नारि, सचिव, नृप कुँवर कहे बर बैन।
मृदु मुसकाइ राम बरज्यौ प्रिय बंधु नयनकी सैन ॥१०॥
कौसिक कह्यौ, उठहु रघुनंदन, जगबंदन, बलऐन।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यों निज भगतनि सुखदैन ॥११॥

[बन्दीजन कहने लगे—] 'अरे भैया! सब राजा लोगो! कान देकर सुनो। राजा जनकका प्रण वज्ररेखा और हाथीके दाँतोंके समान

[अमिट एवं पीछेको न लौटनेवाला] है। वह वेदमें प्रसिद्ध है और उसे सारा जगत् जानता है ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजीका यह 'पिनाक' नामसे प्रसिद्ध धनुष बड़ा ही घोर और कठोर है; इसने रावणको भी नीचा दिखा दिया है, जिसने कैलास पर्वतको भी तुच्छ कर दिखलाया था ॥ २ ॥ यह पृथिवीके मस्तकपर विराजमान है और विधाताके लेखके समान तनिक भी नहीं टलता। परन्तु राजा हो या रङ्क, जो कोई इस धनुषको तोड़ेगा वही जानकीजीको वरेगा' ॥ ३ ॥ यह सुनकर सब राजा लोग उत्तेजित होकर उठ खड़े हुए; उन्हें जनकजीके वचन तीरके समान लगे। वे बड़े-बड़े बलधारी अपनी-अपनी-सी कर रहे हैं। परन्तु धनुष तनिक भी नहीं टलता ॥ ४ ॥ तब सब लोग सलज्जभावसे सिर झुकाकर सोच करने लगे, और उनके शरीर श्रीहीन हो गये। इस समय महाराज जनकने सीताजीकी ओर देखकर दुःखित, रुष्ट और अधीर होकर कहा—॥ ५ ॥ 'अहो! सातों द्वीपों और नवों खण्डोंके राजा लोग एकत्रित हुए। उन्हें कन्या और कीर्तिका बड़ा भारी लाभ भी प्राप्त हो सकता था किन्तु वे सभी जहाँ-तहाँ धनुषके सामनेसे मुड़ गये ॥ ६ ॥ उनसे धनुष तनिक भी नहीं डिगा। पृथिवी मानो वीरहीन हो गयी है, अथवा सारे वीर कहीं छिप तो नहीं गये हैं?' यह सुनकर लक्ष्मणजी भ्रुकुटियोंको टेढ़ी कर बड़े क्रोधित हुए। तथा उनकी भुजा और अधर फड़कने लगे ॥ ७ ॥ [वे बोले—] 'हे सूर्यकुलकमलदिवाकर! सुनिये, यदि इस समय आपकी आज्ञा मिले तो बेचारा धनुष तो क्या, मन्दराचल और सुमेरुको भी डोरी चढ़ाकर झुका दूँ! ॥ ८ ॥ आप तनिक अपने सेवकका खेल देखियेगा कि मैं किस प्रकार इस धनुषको चढ़ाता हूँ; यही

क्यों, मैं तो इसे लेकर दौड़ूँ और कमलनालके समान तोड़ डालूँ तभी आपका दास कहलाऊँगा' ॥ ९ ॥ यह सुनकर नगरके सकल नरनारी तथा मन्त्रिवर्ग और राजा लोग प्रसन्न हुए और कहने लगे, 'राजकुमारने बड़े ही सुन्दर वचन कहे हैं।' किन्तु रघुनाथजीने मधुर-मधुर मुसकराते हुए नेत्रोंके इशारेसे अपने प्रियबन्धुको रोक दिया ॥ १० ॥ तब विश्वामित्रजीने कहा, 'हे जगद्वन्द्य बलधाम रघुनाथजी ! उठिये।' तुलसीदासजी कहते हैं, यह सुनकर प्रभु अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये मृगराजके समान चले ॥ ११ ॥

[९०]

जबहिं सब नृपति निरास भए।
गुरुपद-कमल बंदि रघुपति तब चाप-समीप गए ॥ १ ॥
स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु, उर-भुज-नयन बिसाल।
पीत बसन कटि, कलित कंठ सुंदर सिंधुर-मनिमाल ॥ २ ॥
कल कुंडल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल।
कोटि-मदन-छबि-सदन बदन-बिधु, तिलक मनोहर भाल ॥ ३ ॥
रूप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राजसमाज।
लषन कह्यो थिर होहु धरनिधरु, धरनि, धरनिधर आज ॥ ४ ॥
कमठ, कोल, दिग-दंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज।
चहत चपरि सिव-चाप चढ़ावन दसरथको जुवराज ॥ ५ ॥
गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ॥ ६ ॥

आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो।
भंज्यौ भृगुपति-गरब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो॥७॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान।
चौंके सिवबिरंचि, दिसिनायक, रहे मूँदि कर कान॥८॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान।
उमगि चल्यौ आनंद नगर, नभ जयधुनि, मंगलगान॥९॥
बिप्र-बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ।
कुँवर निरखि, जयमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाइ॥१०॥
बरषहिं सुमन, असीसहिं सुर-मुनि, प्रेम न हृदय समाइ।
सीय-रामकी सुंदरतापर तुलसिदास बलि जाइ॥११॥

जिस समय सब राजा लोग निराश हो गये उसी समय श्रीरघुनाथजी गुरुवर विश्वामित्रके चरणकमलोंकी वन्दना कर धनुषके समीप आये॥१॥ प्रभुका नीलकमलकी मालाके समान श्याम शरीर है, उनके हृदय, भुजा और नेत्र विशाल हैं, कमरमें पीताम्बर तथा कलित कण्ठमें गजमुक्ताओंकी मनोहर माला है॥२॥ कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं तथा सिरपर पत्र-पुष्प एवं लाल रङ्गकी मनोहर चौतनी टोपी है। उनका मुखचन्द्र करोड़ों कामदेवोंकी छबिका आश्रय है और उनके माथेपर मनोहर तिलक है॥३॥ पुरजन और सम्पूर्ण राजसमाज आदरपूर्वक उनके अनूप रूपको निहार रहे हैं। इसी समय लक्ष्मणजी कहने लगे—'हे शेषजी, पृथिवी एवं पर्वतगण, आज आप निश्चल हो जाइये॥४॥ 'हे कूर्म! हे वराह! हे दिग्गजगण! तुम सब अङ्गोंसे सावधान होकर प्रभुका कार्य निष्पन्न करो। इस समय

महाराज दशरथके युवराज सहसा शिवजीका धनुष चढ़ाना चाहते हैं' ॥ ५ ॥ तब भगवान् रामने, मुनियोंको पुलकित करते हुए उस धनुषको हाथसे पकड़कर खेलहीमें उठा लिया और राजाओंके मुखोंके सहित उसे झुकाकर सभीको सुख दिया ॥ ६ ॥ फिर श्रीहरिने उसे सीताजीके हृदयसहित आकर्षित किया। इससे जनकजीका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। इस प्रकार परशुरामजीके गर्वसहित उसे तोड़ डाला और तीनों लोकोंको मोहहीन कर दिया ॥ ७ ॥ इससे प्रलयकालीन समुद्रके समान धनुषका बड़ा भारी कोलाहल हुआ। इससे शिव, ब्रह्मा और सकल दिक्पालगण चौंक पड़े तथा कान मूँदकर रह गये ॥ ८ ॥ फिर सावधान होकर वे विमानोंमें चढ़कर नगाड़े बजाते हुए चले। इससे सम्पूर्ण नगरमें आनन्द उमड़ चला तथा आकाशमें जयध्वनि और मंगलगान होने लगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञा सुन सुवासिनी सखियाँ जानकीजीको साथ लेकर चलीं। उस समय राजकुमारी जानकीजी दशरथनन्दन रामको देख उनके गलेमें जयमाल डाल सकुचाकर रह गयीं ॥ १० ॥ तब देवता और मुनिजन फूलोंकी वर्षा कर आशीर्वाद देने लगे। उनके हृदयमें प्रेम समाता नहीं था। श्रीसीता और रामजीकी उस सुन्दरतापर तुलसीदास बलिहारी है ॥ ११ ॥

राग मलार

[९१]

जब दोउ दसरथ-कुँवर बिलोके।
जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके ॥ १ ॥
बय किसोर, घन-तड़ित-बरन तनु, नखसिख अंग लोभारे।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित बिधि निज हाथ सँवारे ॥ २ ॥

संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए।
उठे राम रघुकुल-कल-केहरि गुर-अनुसासन पाए॥ ३॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई।
तुलसिदास कीरति रघुपतिकी मुनिन्ह तिहूँ पुर गाई॥ ४॥

जिस समय जनकपुरके नरनारियोंने उन दोनों राजकुमारोंको देखा उस समय उन्होंने उन्हें देखकर मनमें प्रसन्न हो अपने नेत्रोंके पलक गिराना रोक लिया अर्थात् एकटक दर्शन करने लगे॥ १॥ उनकी किशोर अवस्था है, मेघ और विद्युत्के समान श्याम एवं गौर शरीर हैं तथा नखसे लेकर शिखापर्यन्त सभी अङ्ग लुभानेवाले हैं, मानो विधाताने संसारके छविरूप धनको लेकर अपना चित्त और प्रेम लगाकर अपने हाथोंसे ही उनकी रचना की है॥ २॥ [प्रतिज्ञा और प्रेमकी खींचातानीमें पड़कर] महाराज जनक बड़े सङ्कटमें पड़े हुए हैं, सीताजीको अति सङ्कोच हो रहा है और राजा लोग [यह जानकर कि ये अवश्य धनुष तोड़ डालेंगे] सङ्कोचवश सिर झुकाये हुए हैं, इसी समय गुरुजीकी आज्ञा पा रघुकुलकेसरीप्रवर भगवान् राम उठे॥ ३॥ प्रभुने खेलहीमें धनुषको तोड़कर जय और जानकी प्राप्त कर ली। तुलसीदासजी कहते हैं, रघुनाथजीकी उस कीर्तिको मुनियोंने तीनों लोकोंमें गाया है॥ ४॥

राग टोड़ी

[९२]

मुनि-पदरेनु रघुनाथ माथे धरी है।
रामरुख निरखि, लषनकी रजाइ पाइ,
धरा धरा-धरनि सुसावधान करी है॥ १॥

सुमिरि गनेस-गुर, गौरि-हर, भूमिसुर,
सोचत सकोचत सकोची बानि धरी है।
दीनबंधु, कृपासिंधु, साहसिक, सीलसिंधु,
सभाको सकोच कुलहूकी लाज परी है॥ २॥
पेखि पुरुषारथ, परखि पन, पेम, नेम,
सिय-हियकी बिसेषि बड़ी खरभरी है।
दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु,
महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है॥ ३॥
सुर हरषत, बरषत फूल बार बार,
सिद्ध-मुनि कहत, सगुन, सुभ घरी है।
रामबाहु-बिटप बिसाल बौंड़ी देखियत,
जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है॥ ४॥
लख्यौ न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू,
घोर धुनि सुनि सिवकी समाधि टरी है।
प्रभुके चरित चारु तुलसी सुनत सुख,
एक ही सुलाभ सबहीकी हानि हरी है॥ ५॥

रघुनाथजीने मुनिके चरणकमलोंकी रज मस्तकपर धारण की, तथा रामचन्द्रजीका रुख देख तथा लक्ष्मणजीकी आज्ञा पा पृथिवीने अपने धारण करनेवाले शेष, कूर्म, वराह आदिको सावधान कर दिया॥ १॥ जानकीजी गणेश, गुरु शतानन्द, पार्वती, शंकर और ब्राह्मणोंका स्मरण कर सोच एवं संकोच करने लगीं, उनकी संकोचमय स्वभाव धारणकी बान ही है। वे पुनः श्रीरघुनाथजीसे भी मन-ही-मन

कहने लगीं कि आप तो दीनबन्धु, कृपासागर, साहसी और शील-समुद्र हैं। इस समय [धनुष और पिताके प्रणकी दृढ़ता देखकर] मुझे सभाका संकोच हो रहा है तथा मुझे मेरे कुलकी लज्जा भी रखनी पड़ी है ॥ २ ॥ उस समय राजाओंके पुरुषार्थ, जनक-जीके प्रण तथा विशेषकर अपने प्रति सीताजीका प्रेम और ऐसे नियमको देखकर कि उनके हृदयमें मेरी शरण लेनेपर भी बड़ी खल-बली पड़ी हुई है, भगवान्‌ने धनुषको दाहिना दिया (प्रदक्षिणा की) ऐसा करते ही वह धनुष सहमकर अत्यन्त लघु हो गया। जैसे किसी जड़ीको देखकर महासर्प सिकुड़कर छोटा हो जाता है ॥ ३ ॥ [ऐसा प्रभाव देखकर] देवता लोग प्रसन्न हो गये और बार-बार फूलोंकी वर्षा करने लगे। सिद्ध और मुनिजन कहते हैं कि यह घड़ी बड़ी शुभ है और सगुन भी बड़े अच्छे हैं। रामचन्द्रजीके विशाल भुजारूप सुन्दर वृक्षपर मानो जनकजीके मनोरथरूप कल्पलता फली दीख पड़ती है ॥४॥ उस धनुषको चढ़ाते, तानते और तोड़ते हुए भगवान्‌को कोई न देख सका। उसकी ध्वनिको सुनकर शिवजीकी भी समाधि टूट गयी। तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके ये मनोहर चरित्र सुनकर सबको आनन्द प्राप्त हुआ और इस एक ही सुन्दर लाभसे एक साथ सभीकी हानियाँ दूर हो गयीं ॥ ५ ॥

राग सारंग

[९३]

राम कामरिपु-चाप चढ़ायो।

मुनिहि पुलक, आनंद नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥१॥

जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहि बिषाद बढ़ायो ।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यौ, जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥२॥
पहिराई जयमाल जानकी, जुवतिन्ह मंगल गायो ।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर, सुजस तिहू पुर छायो ॥३॥

जिस समय रघुनाथजीने शङ्करका धनुष चढ़ाया उस समय मुनिवरको पुलकावली हो आयी, नगरमें आनन्द छा गया तथा देवता लोग देखकर आकाशमें बाजे बजाने लगे ॥ १ ॥ जिस धनुषने सभी राजाओंको बिना नाकका कर दिया था और सभीका विषाद बढ़ाया था वही प्रभुके हाथका स्पर्श होते ही टूट गया, मानो उसे महादेवजीने ऐसा ही पढ़ा रक्खा था ॥ २ ॥ तदनन्तर जानकीजीने जयमाला पहनायी तथा युवतियोंने मंगलगान किया। तुलसीदास कहते हैं, सभी देवगण पुष्पोंकी वर्षा कर हर्षित हो गये और भगवान्‌का सुयश तीनों लोकोंमें छा गया ॥ ३ ॥

राग टोड़ी

[९४]

जनक मुदित मन टूटत पिनाकके ।
बाजे हैं बधावने, सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एकरस रानी राजा राँकके ॥ १ ॥
दुंदुभी बजाइ, गाइ, हरषि, बरषि फूल,
सुरगन नाचैं नाच नायकहू नाकके ।
तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून-से मनो मिटाए आँकके ॥ २ ॥

धनुषके टूटते ही जनकजी मनमें प्रसन्न हो गये। इससे सुहावने बधावे बजने लगे तथा मंगलगान आरम्भ हो गया। उस समय राजा, रानी और रङ्कको एक समान आनन्द हुआ ॥ १ ॥ देवता और स्वर्गके अधिपति भी दुन्दुभी बजाते और आनन्दसे गाते हुए फूलोंकी वर्षा कर नाचने लगे। तुलसीदास कहते हैं, उस समय राजा लोग दिनमें चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे। वे मानो अङ्कके मिटा देनेपर शून्यके समान शून्यरूप (नगण्य) ही हो गये थे ॥ २ ॥

[९५]

लाज तोरि, साजि साज राजा राढ़ रोषे हैं।
कहा भौ चढ़ाए चाप, ब्याह ह्वै है बड़े खाए,
बोलैं, खोलैं सेल, असि चमकत चोखे हैं ॥ १ ॥
जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लषन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे-जोखे हैं।
कुलहि लजावैं बाल, बालिस बजावैं गाल,
कैधौं कूर कालबस, तमकि त्रिदोषे हैं ॥ २ ॥
कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सोहैं,
जहँ तहँ भे अचेत, खेतके-से धोखे हैं।
देखे नर-नारि कहैं, साग खाइ जाए माइ,
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं ॥ ३ ॥
प्रमुदित-मन लोक-कोकनद कोकगन,
रामके प्रताप-रवि सोच-सर सोखे हैं।

तबके देखैया तोषे, तबके लोगनि भले,
अबके सुनैया साधु तुलसिहु तोषे हैं ॥ ४ ॥

राजा लोग लज्जा त्यागकर युद्धका साज सजा रणके लिये रोष-युक्त हो गये और कहने लगे—'अरे धनुष चढ़ा लेनेसे ही क्या होता है, अभी विवाह तो बहुत कुछ खानेपर होगा !' ऐसा कहकर वे भाले निकालते हैं और तलवारोंको खूब चमकाते हैं ॥ १ ॥ यह जानकर पुरवासी तो भयभीत हो गये, किन्तु लक्ष्मणजी उन्हें धैर्य बँधाकर हँसने लगे और बोले—'अरे ! इनका बल तो इस धनुषने अच्छी तरह जाँच लिया है। ये मूर्ख अपने कुलको लजाते और व्यर्थ गाल बजाते हैं। अथवा क्रूर कालके वशीभूत होकर ये त्रिदोषसे तो नहीं तमक रहे हैं ?' ॥ २ ॥ ऐसा कह राजकुमार लक्ष्मणने भौंहें चढ़ा लीं। अब उन्हें सामने पड़कर कौन देख सकता था ? खेतके धोखोंके* समान सब जहाँ-तहाँ अचेत हो गये। उन्हें देखकर नगरके स्त्री-पुरुष कहने लगे 'इनकी माताओंने शाक खाकर इन्हें जना है और इन पामरोंकी मोटी-मोटी भुजाएँ भी खली खा-खाकर ही पुष्ट हुई हैं' ॥ ३ ॥ इस प्रकार रामके प्रतापरूप सूर्यके उदित होते ही सम्पूर्ण लोकरूप कमल एवं चकवा-चकवी प्रसन्नचित्त हो गये तथा शोकरूप सरोवर सूख गये। उस समयके ये सब चरित्र देखनेवाले भले लोग सन्तुष्ट हुए तथा इस समय ये सब बातें सुननेवाले साधुजन एवं तुलसीदास भी सन्तुष्ट हुए हैं ॥ ४ ॥

---

* जो मनुष्यका-सा आकार बनाकर खेतोंमें मृग एवं पक्षियोंको डरानेके लिये खड़े कर दिये जाते हैं।

[९६]

जयमाल जानकी जलजकर लई है।
सुमन सुमंगल सगुनकी बनाइ मंजु,
मानहु मदनमाली आपु निरमई है॥ १॥
राज-रुख लखि गुर भूसुर सुआसिनिन्हि,
समय-समाजकी ठवनि भली ठई है।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोयन सनेह सरसई है॥ २॥
हनि देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल,
सफल मनोरथ भौ, सुख-सुचितई है।
पुरजन-परिजन, रानी-राउ प्रमुदित,
मनसा अनूप राम-रूप-रंग रई है॥ ३॥
सतानंद-सिष सुनि पाँय परि पहिराई,
माल सिय पिय-हिय, सोहत सो भई है।
मानसतें निकसि बिसाल सुतमालपर,
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है॥ ४॥
हितनिके लाहकी, उछाहकी, बिनोद-मोद,
सोभाकी अवधि नहि अब अधिकई है।
याते बिपरीत अनहितनकी जानि लीबी
गति, कहे प्रगट, खुनिस खासी खई है॥ ५॥
निज निज बेदकी सप्रेम जोग-छेम-मई,
मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है।

छबि तेहि कालकी कृपालु सीतादूलहकी,
हुलसति हिये तुलसीके नित नई है ॥ ६ ॥

जानकीजीने अपने करकमलमें जयमाला ली है, जिस मनोहर मालाको मानो मंगलमय पुष्प और सुन्दर डोरीसे गूँथकर कामदेवरूप मालीने स्वयं ही निर्माण किया है ॥ १ ॥ राजाका रुख जान गुरु शतानन्दजी, ब्राह्मण लोग और सुवासिनी स्त्रियोंने समय और समाजके अनुरूप सुन्दर साज सजा। [अर्थात् सीताजीको आगे कर] सब सखियाँ मंगलगान करती हुई चलीं। उस समय उत्साह बढ़ानेवाले बाजे बजने लगे तथा श्रीराम और सीताके पारस्परिक दर्शनके लिये उतावले हुए नेत्रोंमें स्नेह सरसाने लगा ॥ २ ॥ देवता लोग दुन्दुभी बजाकर प्रसन्नतासे फूल बरसाने लगे। अपना मनोरथ सफल हो जानेसे उन्हें बड़ा सुख और शान्तिका अनुभव हो रहा है। पुरवासी, परिजन तथा रानी और राजा अति आनन्दित हैं और मन-ही-मन रामके अनूप रूपरंगमें रँग गये हैं ॥ ३ ॥ फिर गुरु शतानन्दजीका सिखावन सुन सीताजीने पैरों पड़कर अपने प्रियतमके गलेमें माला पहना दी। वह ऐसी शोभायमान हो रही है मानो कोई हंसोंकी पंक्ति मानसरोवरसे निकलकर किसी सुन्दर तमालवृक्षपर बैठकर सज रही हो ॥ ४ ॥ भगवान्‌के प्रेमियोंके लिये तो इससे अधिक लाभ, उत्साह, मोद, विनोद और शोभाकी अवधि और कोई है ही नहीं। किन्तु प्रभुसे द्वेष करनेवालोंकी गति इससे विपरीत समझनी चाहिये। प्रकटरूपमें यह कह सकते हैं कि उन्हें तो मानो क्रोध और ईर्ष्याने भलीभाँति ग्रस लिया है ॥ ५ ॥ तब विद्वान् ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक अपने-अपने वेदोंका

योगक्षेममय आशीर्वाद दिया । दयामय सीतापतिकी उस समयकी छवि तुलसीदासके हृदयमें नित्य नयी होकर हुलस रही है ॥ ६ ॥

राग केदारा

[९७]

लेहु री लोचननिको लाहु ।
कुँवर सुंदर साँवरो, सखि सुमुखि ! सादर चाहु ॥ १ ॥
खंडि हर-कोदंड ठाढ़े, जानु-लंबित-बाहु ।
रुचिर उर जयमाल राजति, देत सुख सब काहु ॥ २ ॥
चितै चित हित-सहित, नखसिख अंग-अंग निबाहु ।
सुकृत निज, सियराम-रूप, बिरंचि-मतिहि सराहु ॥ ३ ॥
मुदित मन बरबदन-सोभा उदित अधिक उछाहु ।
मनहु दूरि कलंक करि ससि समर सूद्यो राहु ॥ ४ ॥
नयन सुखमा-अयन हरत सरोज-सुंदरताहु ।
बसत तुलसीदास-उरपुर जानकीको नाहु ॥ ५ ॥

अरी सुमुखि सखि ! तनिक नेत्रोंका लाभ तो ले । साँवला कुँवर बड़ा ही सुन्दर है, इसे तनिक आदरपूर्वक देख ले ॥ १ ॥ देख, ये महादेव-जीका धनुष तोड़कर जानुपर्यन्त बाहु लटकाये खड़े हैं । इनके गलेमें मनोहर जयमाल सुशोभित है, जो सभीको आनन्द देती है ॥ २ ॥ इन्हें हार्दिक प्रेमसहित देख । नखसे शिखापर्यन्त इनका प्रत्येक अङ्ग यथायोग्य रूपसे सुशोभित है । इन्हें देखकर अपने पुण्य, सीता-रामके रूप तथा [इन मूर्तियोंको रचनेवाले] विधाताकी बुद्धिकी सराहना कर ॥ ३ ॥ प्रसन्न मनके कारण सुन्दर मुखमण्डलकी शोभापर और भी

अधिक उत्साह उदित हो रहा है; मानो चन्द्रमाने अपना कलङ्क दूरकर युद्धमें राहुको मार डाला हो ॥ ४ ॥ इनके सुखमासदन नयन कमलकी भी सुन्दरताको हर लेते हैं। ऐसे ये जानकीपति तुलसीदासके हृदय-रूप पुरमें विराजते हैं ॥ ५ ॥

राग सारंग

[९८]

भूपके भागकी अधिकाई।
टूट्यौ धनुष, मनोरथ पूज्यौ, बिधि सब बात बनाई ॥ १ ॥
तबतें दिन-दिन उदय जनकको जबतें जानकी जाई।
अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन, त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥ २ ॥
बारहि बार पहुनई ऐहैं राम लषन दोउ भाई।
एहि आनंद मगन पुरबासिन्ह देहदसा बिसराई ॥ ३ ॥
सादर सकल बिलोकत रामहि, काम-कोटि छबि छाई।
यह सुखसमउसमाज एक मुख क्यों तुलसी कहै गाई ? ॥ ४ ॥

[कोई सखी कहती है—] 'यह महाराज जनकके भाग्यकी अधिकता ही है कि धनुष टूट गया, मनोरथ पूर्ण हो गया और विधाता-ने सारी बात बना दी ॥ १ ॥ जबसे जानकीका जन्म हुआ है तबसे जनकजीकी दिनोंदिन उन्नति हो रही है। अब इसका विवाह करके तो इनका जीवन ही सफल हो गया है। इस समय तीनों लोकोंमें इनकी प्रशंसा विख्यात हो रही है ॥ २ ॥ अहा ! अब ये राम-लक्ष्मण दोनों भाई बारंबार पाहुने होकर आया करेंगे !' इस प्रकार आनन्दमें मग्न होकर पुरवासियोंने अपने देहकी सुधि भुला दी ॥ ३ ॥ सब लोग

आदरपूर्वक रामचन्द्रजीको देख रहे हैं, जिनपर करोड़ों कामदेवोंकी छवि छायी हुई है। इस आनन्दमय समयमें उस समाजके सुखका तुलसीदास एक ही मुखसे कैसे बखान कर सकता है ? ॥ ४ ॥

विवाहकी तैयारी

राग सोरठ

[९९]

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत, स्रम सकुचनि क्यौं कौसिकहि कहहिंगे? ॥१॥
को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ, निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ? ॥२॥
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु-परिजन-महतारी।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन, मख रखवारी ॥३॥
सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल, काकपच्छ-धर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वै है दिन सोऊ ? ॥४॥

[इधर कौसल्याजी चिन्ता कर रही हैं—] 'मेरे बालक किस प्रकार मार्गमें निर्वाह करेंगे। वे सङ्कोचवश अपनी भूख, प्यास, शीत और श्रम आदिके विषयमें विश्वामित्रजीसे भी क्यों कहेंगे ? ॥ १ ॥ उन्हें प्रातःकाल होते ही उबटन मलकर कौन स्नान करावेगा, कौन कलेवा निकालकर देगा और कौन आभूषण पहनाकर निछावर करते हुए नेत्रोंका आनन्द लूटेगा ? ॥ २ ॥ जिन्हें पिता, परिजन और माताएँ सर्वदा नेत्रोंकी पलकोंके समान सँभाल रखते थे उन्हें राजाने यज्ञकी रखवाली

और निशाचरोंका संहार करनेके लिये विश्वामित्रजीके साथ भेज दिया ! ॥ ३ ॥ हे विधाता ! क्या कभी वह दिन आवेगा जब मैं उन अति सुन्दर, सलोने, सुकुमार, सुकोमल और काकपक्षधारी दोनों बालकोंको देखकर हर्षित हो हृदयसे लगाऊँगी ?' ॥ ४ ॥

[१००]

ऋषि नृप-सीस ठगौरी सी डारी ।
कुलगुर, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी ॥१॥
सिरिस-सुमन-सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी ।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि-बान-धनुधारी ॥२॥
अति सनेह-कातरि माता कहै, सुनि सखि ! बचन दुखारी ।
बादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि-जाति-गति भारी ॥३॥
जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनिमख-रखवारी ।
सो तुलसी प्रिय मोहिं लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी ॥४॥

'ऋषिवर विश्वामित्रजीने तो राजाके मस्तकपर कुछ जादू-सा कर दिया । इस विपरीत स्थितिमें कुलगुरु, मन्त्री और निपुण नायकोंने भी उनकी बुद्धिका सुधार नहीं किया ! ॥ १ ॥ देखो, दोनों कुमार तो सिरसके फूलके समान सुकुमार हैं और राक्षस लोग बड़े शूरवीर तथा क्रोधी हैं । फिर भी क्रीडाके धनुष-बाण लिये उन्हें बिना किसी प्रकार-की सहायताके पैदल ही भेज दिया !' ॥ २ ॥ इस प्रकार माता कौसल्या स्नेहसे आतुर और दुःखित होकर कहने लगीं—'अरी सखि ! सुन, संसारमें वीर पुरुषकी माताका जीवन तो वृथा ही है और क्षत्रिय जाति-की गति भी बड़ी ही विकट है ॥ ३ ॥ जो पुरुष मुझसे यह कहेगा कि

'राम और लक्ष्मण मुनिके यज्ञकी रक्षा कर घर लौट आये हैं वह स्वभावसे ही मुझे ऐसा ही प्रिय लगेगा जैसे कि चारों पुत्र' ॥ ४ ॥

[१०१]

जबतें लै मुनि संग सिधाए ।
राम-लखनके समाचार, सखि ! तबतें कछुअ न पाए ॥१॥
बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं ।
सर-सरिता जलपान, सिसुनके संग सुसेवक नाहीं ॥२॥
कौसिक परम कृपालु, परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि आली ! ॥३॥
बचन सप्रेम सुमित्राके सुनि सब सनेह-बस रानी ।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ॥४॥

'अरी सखि ! जबसे मुनीश्वर अपने साथ लेकर गये हैं तबसे मुझे राम-लक्ष्मणका कुछ भी समाचार नहीं मिला ॥ १ ॥ उन्हें बिना जूतियोंके चलना, फलाहार करना, वृक्षकी छायामें पृथिवीपर सोना और नदी एवं तालावोंका जल पीना होगा। उन बालकोंके साथ कोई अच्छा सेवक भी नहीं है ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी तो बड़े कृपालु, परम-हितकारी, सामर्थ्यवान्, सुखदायक और सदाचारी हैं; परन्तु ये शुद्धचित्त बालक भी बड़े ही सुकुमार और सङ्कोच करनेवाले हैं—अरी आली ! यह जानकर ही मुझे बड़ा सोच हो रहा है' ॥ ३ ॥ सुमित्राके ये प्रेमपूर्ण वचन सुनकर सब रानियाँ स्नेहवश हो गयीं । तुलसीदास कहते हैं, इसी समय भरतजीने आकर ये मंगलमय वचन कहे ॥ ४ ॥

[१०२]

सानुज भरत भवन उठि धाए।
पितु-समीप सब समाचार सुनि, मुदित मातु पहँ आए॥१॥
सजल नयन, तनु पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिये लाइ हृदय, 'बलि' कहौ, कछु है सुधि पाई? ॥२॥
सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए।
खेम कुसल रघुबीर-लषनकी ललित पत्रिका ल्याये॥३॥
दलि ताड़का, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी।
दै बिद्या लै गये जनकपुर, हैं गुरु संग सुखारी॥४॥
करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोर्‍यो।
राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोर्‍यो॥५॥
यों कहि सिथिल सनेह बंधु दोउ, अंब अंक भरि लीन्हें।
बार बार मुख चूमि, चारु मनि बसन निछावरि कीन्हें॥६॥
सुनत सुहावनि चाह अवध घर घर आनंद बधाई।
तुलसिदास रनिवास रहस बस, सखी सुमंगल गाई॥७॥

भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजी उठकर राजभवनको दौड़ आये। वे पिताजीके पास सारे समाचार सुन, प्रसन्न होकर माताके पास आये ॥ १ ॥ उनके नेत्रोंको जलयुक्त, शरीरको रोमाञ्चित और ओठोंको फड़कते देख माता कौसल्याको उनका प्रेम अच्छा मालूम हुआ और उन्होंने हृदय लगाकर कहा—'बेटा, बलिहारी जाऊँ, कहो कोई समाचार मिला है क्या?' ॥ २ ॥ [भरतजीने कहा—] 'माता! तिरहुत-राज जनकजीने अपने पुरोहित शतानन्दजीको भेजा है; वे राम-लक्ष्मण-

के कुशल-क्षेमकी सुन्दर पत्रिका लाये हैं ॥ ३ ॥ उन्होंने ताड़काका दमन और राक्षसोंका संहार कर विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा की और फिर मुनिपत्नी अहल्याका उद्धार किया। तदनन्तर विश्वामित्रजी उन्हें विद्या पढ़ाकर जनकपुर ले गये; वहाँ वे गुरुजीके साथ आनन्दपूर्वक हैं ॥ ४ ॥ जनकजीने पिनाकको पण बनाकर, अपनी पुत्रीके स्वयंवरका साज सजा बहुत-से राजाओंको एकत्रित किया था। उस राजसभामें रघुनाथजीने वह धनुष कमलनालके समान तोड़ डाला' ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर दोनों भाई स्नेहवश शिथिल हो गये। तब माताने उन्हें गोदमें उठा लिया और बारंबार मुख चूमकर उनपर मनोहर मणि और वस्त्रादि निछावर किये ॥ ६ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस सुहावनी मनोकामनाका समाचार सुनते ही अयोध्यामें घर-घर आनन्दमयी बधाई बजने लगी और रनिवासमें भी सखियोंने आनन्दवश मंगलगान आरम्भ कर दिया ॥ ७ ॥

राग कान्हरा

[१०३]

राम-लषन सुधि आई, बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका, उपरोहितके कर जनक-जनेस पठाई॥१॥
कन्या भूप बिदेहकी रूपकी अधिकाई।
तासु स्वयंबर सुनि सब आए देस देसके नृप चतुरंग बनाई॥२॥
पन पिनाक, पबि मेरुतें गुरुता कठिनाई।
लोकपाल, महिपाल, बान बानइत, दसानन सके न चाप चढ़ाई॥३॥

तेहि समाज रघुराजके मृगराज जगाई ।
भंजि सरासन संभुको जग जय, कल कीरति, तिय तियमनि सिय पाई ॥४॥
पुर घर घर आनंद महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मंगल सजैं, कहैं मुनि प्रसाद भये सकल सुमंगल, माई ॥५॥
गुरु-आयसु मंडप रच्यो, सब साज सजाई ।
तुलसिदास दसरथ बरात सजि, पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥६॥

[अयोध्यावासी नरनारी आपसमें कहने लगे—] 'आज राम-लक्ष्मणका समाचार मिला है, इसीसे अयोध्यामें बधाई बज रही है। महाराज जनकने सुन्दर लग्नपत्रिका लिखकर अपने पुरोहितके हाथ भेजी है ॥ १ ॥ महाराज विदेहके रूपमें बढ़ी-चढ़ी एक कन्या है। उसके स्वयंवरका समाचार सुन देश-देशान्तरके नृपतिगण अपनी-अपनी चतुरङ्गिणी सेनाएँ सजाकर आये थे ॥ २ ॥ उस स्वयंवरका पण महादेवजीका धनुष था, जिसकी गुरुता और कठोरता वज्र एवं मेरुसे भी अधिक थी । उस धनुषको लोकपाल तथा यशस्वी बाणासुर एवं रावणादि महिपालगण भी नहीं चढ़ा सके ॥ ३ ॥ उस राजसमाजमें [महाराज जनकने कुछ कटु वचन कहकर] रामरूप मृगराज (सिंह) को जगा दिया । उन्होंने महादेवजीका धनुष तोड़कर संसारमें विजय, कमनीय कीर्ति और पत्नीरूपसे स्त्रीरत्न सीताको प्राप्त किया' ॥ ४ ॥ यह सुहावना समाचार सुनकर नगरमें घर-घर परम आनन्द हो रहा है । माताएँ प्रसन्न होकर मंगलके साज सजाती हैं और कहती हैं—'माई ! मुनीश्वरकी कृपासे ही ये सारे सुमंगल हुए हैं' ॥ ५ ॥ फिर गुरुजीकी आज्ञा पा, सब प्रकारकी सामग्रियोंसे सजाकर मण्डप

रचा गया । तुलसीदासजी कहते हैं—इस प्रकार महाराज दशरथ बरात सजाकर, गणेशजीका पूजनकर निशान बजाते हुए चले ॥ ६ ॥

राग केदारा

[१०४]

मनमें मंजु मनोरथ हो, री !
सो हर-गौरि-प्रसाद एकतें, कौसिक-कृपा चौगुनो भो, री ! ॥१॥
पन-परिताप, चाप-चिंता-निसि, सोच-सकोच-तिमिर नहि थोरी ।
रबिकुलरबि अवलोकि सभासर हितचित-बारिज-बन बिकसो री ॥२॥
कुँवर-कुँवरि सब मंगलमूरति, नृप दोउ धरमधुरंधर-धोरी ।
राजसमाज भूरिभागी, जिन लोचन लाहु लह्यो एक ठौरी ॥३॥
ब्याह-उछाह राम-सीताको सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो, री ।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख, जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥४॥

[बारात देखकर जनकपुरकी स्त्रियाँ कहने लगीं—] अरी सखि! हमारे मनमें जो एक मनोहर मनोरथ था वह श्रीशङ्कर और पार्वतीजीके प्रसादसे तथा विश्वामित्रजीकी कृपासे चौगुना हो गया ॥ १ ॥ प्रणके पश्चात्ताप और चापरूप चिन्ताकी रात्रिमें [धनुष न टूटनेका] सोच और [प्रण छोड़नेका] सङ्कोचरूप अन्धकार कुछ कम नहीं था; किन्तु सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रको देखते ही इस राजसभारूप सरोवरमें सुहृज्जनोंके चित्तरूप कमलोंका वन विकसित हो गया है ॥ २ ॥ राम आदि राजकुमार और जानकी आदि कुमारियाँ—ये सभी मंगलकी मूर्ति हैं और दोनों महाराज भी धर्मधुरन्धरोंमें धुरीण हैं । यह राजसमाज भी बड़ा ही बड़भागी है, जिसने यह नेत्रोंका लाभ एक ही

स्थानपर प्राप्त कर लिया ॥ ३ ॥ यह राम-सीताके विवाहका उत्साह विधाताने सारे सुकृतोंको एकत्रित करके रचा है। तुलसीदासजी कहते हैं, इस सुखको वही जान सकता है जिसके हृदयमें यह मनोहर जोड़ी विराजमान रहती है ॥ ४ ॥

[१०५]

राजति राम-जानकी-जोरी।
स्याम-सरोज जलद-सुंदर वर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥१॥
ब्याह समय सोहति बितानतर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहु मदन मंजुल मंडपमहँ छबि-सिँगार-सोभा इक ठौरी ॥२॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनककलसकहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥३॥
इत बसिष्ठ मुनि, उतहि सतानँद, बंस बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस, उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुखसिंधु हिलोरी ॥४॥
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान-निसान-बेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री? ॥५॥
नयननको फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी।
तुलसी जेहि आनंदमगन मन, क्यों रसना बरनै सुख सो री! ॥६॥

राम और जानकीकी जोड़ी विराजमान है। वर नीलकमल एवं श्याममेघके समान सुन्दर है तथा दुलहिन बिजलीके समान गोरे शरीरकी है ॥ १ ॥ विवाहके समय वे मण्डपके नीचे शोभायमान हैं। इस समय मेरी बुद्धिको कहींपर उनकी उपमा नहीं मिलती। मानो कामदेवरूप मण्डपमें छबि और श्रृङ्गाररसकी शोभा ही एकत्रित हो

गयी हो ॥ २ ॥ दोनों ही परम मंगलमय और मनोहर अङ्गोंवाले हैं तथा चूनरी और पीताम्बरके ग्रन्थिबन्धनके सहित सुवर्णमय कलशकी भाँवरी दे रहे हैं। उस रूपमाधुरीको देखकर शारदाकी बुद्धि भी चकरा गयी ॥ ३ ॥ इधर वसिष्ठजी और उधर मुनिवर शतानन्द—ये दोनों ओरसे शाखोच्चार कर रहे हैं। तथा इधर अयोध्यापति दशरथ-जी और उधर मिथिलाधिपति जनक आनन्दसिन्धुमें हिलोरें लेकर गोद भर रहे हैं ॥ ४ ॥ इस समय जनकजी परम प्रसन्न हैं, रनिवास स्नेहविवश हो रहा है तथा चतुर नारियाँ [नज़र न लग जाय, इसलिये] तिनका तोड़कर निहार रही हैं। उस समय गान, निशान और वेदोंकी ध्वनि सुनकर देवता लोग फूलोंकी वर्षा करते हैं। उस हर्षका भला कौन बखान कर सकता है ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार नेत्रोंका फल पाकर सब नरनारी प्रेमवश श्रीमहादेवजीका निहोरा देकर आशीर्वाद देते हैं। तुलसीदास कहते हैं, जिस सुखमें मन भी आनन्दमें डूब जाता है उसका जिह्वा भला कैसे वर्णन कर सकती है ? ॥ ६ ॥

[१०६]

दूलह राम, सीय दुलही री !

घन-दामिनि बर बरन, हरन-मन, सुंदरता नखसिख निबही, री ॥१॥

ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही, री।

जीवन-जनम-लाहु, लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥२॥

सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री।

मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री ॥३॥

तुलसिदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल, न जाति कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥

राम दूलह हैं और सीता दुलहिन हैं। दोनोंका मेघ और बिजलीके समान सुन्दर वर्ण है तथा नखसे लेकर शिखापर्यन्त मनको चुरानेवाली सुन्दरता छायी हुई है ॥ १ ॥ इन्हें विवाहके वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देख सारा सखीसमाज ठगा-सा रह गया है। वास्तवमें जीवन और जन्मका लाभ तथा नेत्रोंका फल तो इतना ही है जो आज पूरा-पूरा प्राप्त कर लिया ॥ २ ॥ कामदेवरूप ग्वालेने मानो सौन्दर्यरूप सुरभिसे शृङ्गाररूप दूध दुहकर जो अमृतमय दही तैयार किया था उसे मथकर ही मक्खनरूप राम और सीता रचे हैं तथा सारे लोकोंकी शोभा उससे रहा-सहा मट्ठा है ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, उस जोड़ीको देखनेसे बड़ा सुख होता है; उसकी अतुलित शोभा कही नहीं जाती। उन्हें विधाताने मानो रूपकी राशि ही बनाया है तथा रति और कामको तो उनका केवल सिला[1] और लवनी[2] ही मिला है ॥ ४ ॥

[१०७]

जैसे ललित लषन लाल लोने ।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने ॥१॥
सुखमासार सिँगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने ।
रूपप्रेम-परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने ॥२॥
सोभा-सील-सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने ।
देखि तियनिके नयन सफल भये, तुलसीदासहूके होने ॥३॥

१ जो दाने खेत काटनेके अनन्तर पृथिवीमें पड़े रह जाते हैं।

२ अन्नका वह थोड़ा-सा भाग जो खेत काटनेवालोंको मजदूरीमें दिया जाता है।

जैसे सुन्दर लावण्यधाम श्रीलषणलाल हैं वैसी ही सुन्दरी उर्मिला-जी भी हैं। वे दोनों एक दूसरेको नेत्रोंकी कनखियोंसे देख रहे हैं ॥ १ ॥ सुखमा और शृङ्गारके सारका सुवर्ण बनाकर फिर उस सुवर्णसे ही मानो ये मूर्तियाँ रची हैं। इनके रूप और प्रेमकी सीमाका वर्णन नहीं किया जाता; बुद्धि थककर मौन हो गयी है ॥ २ ॥ जिस समय वे क्रीडाभवनमें गये उस समय उनकी शोभा, शील और सुहावना स्नेह देखकर स्त्रियोंके नेत्र सफल हो गये और अब तुलसीदासके भी होनेवाले हैं ॥ ३ ॥

राग बिलावल

[१०८]

जानकी-बर सुंदर, माई।
इंद्रनील-मनि-स्याम सुभग, अँग अंग मनोजनि बहु छबि छाई ॥१॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत, कछुक अरुनाई।
कंजदलनिपर मनहु भौम दस बैठे अचल सुसदसि बनाई ॥२॥
पीन जानु, उर चारु, जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सोहाई।
पीत पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥३॥
किंकिनि कनक कंज अवली मृदु मरकतसिखर मध्य जनु जाई।
गई न उपर, सभीत नमितमुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥४॥
नाभि गँभीर, उदर रेखा बर, उर भृगु-चरन-चिह्न सुखदाई।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥५॥
जग्योपबीत बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई।
कंद-तड़ित बिच जनु सुरपति-धनु रुचिर बलाकपाँति चलि आई ॥६॥

कंबु कंठ, चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसननकी रुचिराई ।
पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥७॥
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रूकुटिल, कचनि अनुपम छबि पाई ।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥८॥
भाल तिलक, कंचनकिरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई ।
निरखहिं नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृपकी मरजाद मिटाई ॥९॥
सारद-सेस-संभु निसि बासर चिंतत रूप, न हृदय समाई ।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥१०॥

अरी माई ! जानकीके वर बड़े ही सुन्दर हैं। इनका सुन्दर शरीर इन्द्रनीलमणिके समान श्यामवर्ण है तथा अङ्ग-अङ्गमें अनेकों कामदेवोंकी छबि छायी हुई है ॥ १ ॥ इनके चरण अरुणवर्ण, अँगुलियाँ मनोहर तथा नख कान्तिमय और कुछ-कुछ लालिमा लिये हैं, मानो कमलकी पङ्खड़ियोंपर दश मंगल ग्रह निश्चल होकर अपनी सभा बनाकर बैठे हैं ॥ २ ॥ इनके घुटने स्थूल हैं, वक्षःस्थल सुन्दर है तथा चरणोंमें सुन्दर ध्वनि करनेवाले मणिमय नूपुर हैं, जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो भ्रमरगण दो पीत पराग भरे हुए कमलोंको देखकर उन्हींमें लुभाकर रह गये हों ॥ ३ ॥ कमरमें जो सुवर्णमयी करधनी है वह मानो सुवर्णवर्ण सरसिजोंकी माला ही है; जो मरकतमणिके पर्वतके मध्य भागमें उत्पन्न हुई है और मुखचन्द्रसे भयभीत होकर ऊपरको नहीं गयी, बल्कि नीचेको मुख लटकाकर रह गयी है। उसकी सुन्दरता दशों दिशाओंमें फैली हुई है ॥ ४ ॥ भगवान्‌की नाभि गम्भीर है, उदर-देशमें सुन्दर रेखाएँ हैं, हृदयपर परम सुखदायक भृगुजीका चरणचिह्न

है, अनेकों आभूषणोंसे युक्त लम्बी-लम्बी भुजाएँ हैं तथा पीताम्बरकी अतिशय शोभा हो रही है ॥ ५ ॥ प्रभुके हृदयमें मुझे अति विचित्र सुवर्णवर्ण यज्ञोपवीत तथा मोतियोंकी माला प्रिय जान पड़ती है; मानो बादल और बिजलीके बीचमें इन्द्रधनुष हो और उसी बीचमें बगुलोंकी पंक्ति भी आ जाय। [यहाँ श्याम शरीर मेघ है, पीताम्बर बिजली है, यज्ञोपवीत इन्द्रधनुष है और मोतियोंकी माला बगुलोंकी पंक्ति है] ॥६॥ भगवान्का कण्ठ शङ्खके समान है, चिबुक और अधर सुन्दर हैं तथा दाँतोंकी सुन्दरताका तो मैं वर्णन ही किस प्रकार करूँ ? मानो साक्षात् वज्र (हीरे) ही बिजली और बालसूर्यकी कान्तिके सहित कमलकोशमें बसने लगा हो। [यहाँ मुख कमलकोश है, दाँत वज्र हैं तथा अधर और ताम्बूलकी लालिमा ही बिजली और बालसूर्यकी कान्ति है] ॥ ७ ॥ उनकी नासिका सुन्दर है, नेत्र सुहावने हैं, भृकुटियाँ टेढ़ी हैं तथा बालोंने अनुपम छबि प्राप्त की है। मानो दो कमलोंको हृदयमें कुछ-कुछ डरते हुए भौंरोंने घेर रक्खा हो। [यहाँ दोनों नेत्र कमल हैं और भृकुटियाँ भौंरे हैं] ॥ ८ ॥ प्रभुके माथेपर तिलक है, सिरपर सुवर्णमय मुकुट है, कानोंमें हिलते हुए कुण्डल हैं जिनकी कपोलोंपर झाँई पड़ती है। उन्हें देखकर जनकपुरकी स्त्रियोंने निमिकुलकी मर्यादा मिटा दी। [अर्थात् सब पलक मारना छोड़कर एकटक देखती रह गयी हैं] ॥ ९ ॥ शारदा, शेष और महादेवजी रात-दिन प्रभुके स्वरूपका चिन्तन करते हैं, फिर भी उनके हृदयमें वह नहीं समाता। फिर दुष्ट तुलसीदास ही इस छबिका कैसे वर्णन कर सकता है, जिसे वेदने भी 'नेति-नेति' कहकर ही गाया है ॥ १० ॥

अयोध्या-आगमन

राग कान्हरा

[१०९]

भुजनिपर जननी वारि फेरि डारी ।
क्यों तोर्‌यो कोमल कर-कमलनि संभु-सरासन भारी ? ॥१॥
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी ?
मुनि-प्रसाद मेरे राम-लषनकी बिधि बड़ि करवर टारी ॥२॥
चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारी ।
कहौ धौं तात ! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी ॥३॥
दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी ।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी ॥४॥
उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुनसहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी ॥५॥

माता कौसल्या भगवान् रामकी भुजाओंपर वार-फेर करती हैं और कहती हैं—'भला, इन कोमल करकमलोंसे महादेवजीका भारी धनुष किस प्रकार तोड़ा होगा ? ॥ १ ॥ इनसे महाबली मारीच और सुबाहु तथा प्रबल ताड़काको भी कैसे मारा होगा ? विश्वामित्रजीकी कृपासे विधाताने मेरे लाल राम और लक्ष्मणकी बड़ी भारी आपत्ति टाल दी है' ॥ २ ॥ फिर भगवान्‌के चरणोंकी रज लेकर नेत्रोंसे लगाती हैं और कहती हैं—'हे तात ! कहो तो तुमने किस प्रकार मुनिपत्नीका उद्धार किया ? और कैसे सारे राजाओंको जीतकर जानकीको विवाहा ? ॥ ३ ॥ परशुराम तो दुःसह क्रोधकी मूर्ति और नृपसमूहका क्षय करनेवाले हैं । उन्होंने हृदयमें हारकर किस प्रकार तुम्हें शार्ङ्ग-

धनुष सौंप दिया और कैसे तुम्हारी बहुत कुछ अनुनय-विनय की ? ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर माता कौसल्या आरती उतारती हैं और आनन्दसे उमँग-उमँगकर वधुओंके सहित चारों पुत्रोंको देखती हैं ॥ ५ ॥

[११०]

मुदित-मन आरती करै माता ।
कनक-बसन-मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता ॥१॥
पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता ।
देहिं असीस ते 'बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिबाता' ॥२॥
राम-सीय-छबि देखि जुवतिजन करहिं परसपर बाता ।
अब जान्यो, साँचहू सुनहु, सखि ! कोबिद बड़ो बिधाता ॥३॥
मंगल-गान निसान नगर-नभ, आनँद कह्यो न जाता ।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता ॥४॥

माता कौसल्या सुवर्ण, वस्त्र और मणि निछावर कर प्रेमसे पुलकित और प्रफुल्लित हो प्रसन्न मनसे आरती करती हैं ॥ १ ॥ वे दुलहिनोंको अपने ही समान अन्य सात सौ सासुओंके भी पावों लगना सिखाती हैं और वे सब आशीर्वाद देती हैं कि 'तुम्हारा सुहाग करोड़ों वर्षतक अचल रहे' ॥ २ ॥ राम और सीताकी छबि देखकर युवतियाँ आपसमें बातें करती हैं कि 'अरी सखि ! सुन, हमने तो अब जाना है कि विधाता बड़ा ही चतुर है' ॥ ३ ॥ नगर और आकाशमें मंगलगान हो रहा है और निशान बज रहे हैं, उस समयका आनन्द कहा नहीं जाता। [सब लोग यही आशीर्वाद दे रहे हैं] तुलसीदासको सुख देनेवाले अवधेशके सभी पुत्र चिरजीवी हों ॥ ४ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

अयोध्याकाण्ड

राज्याभिषेककी तैयारी

राग सोरठ

[१]

नृप कर जोरि कह्यो गुर पाहीं ।
तुम्हरी कृपा असीस, नाथ! मेरी सबै महेस निबाहीं ॥१॥
राम होहिं जुवराज जियत मेरे, यह लालच मन माहीं ।
बहुरि मोहिं जियबे-मरिबेकी चित चिंता कछु नाहीं ॥२॥
महाराज, भलो काज बिचार्‌यो, बेगि बिलंब न कीजै ।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै ॥३॥
सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी ।
तुलसीदास देवमायाबस कठिन कुटिलता ठानी ॥४॥

महाराज दशरथने हाथ जोड़कर गुरुजीसे कहा—'हे नाथ! आपकी कृपा और आशीर्वादसे महादेवजीने मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दी हैं ॥ १ ॥ अब तो मेरे मनमें यही लालच है कि मेरे जीतेजी श्रीराम युवराज हो जायँ। फिर मुझे अपने जीने-मरनेकी चित्तमें कुछ भी चिन्ता नहीं है' ॥ २ ॥ [यह सुनकर वसिष्ठजी बोले—] 'राजन्! तुमने बहुत अच्छा कार्य सोचा है। इसे शीघ्र ही करना चाहिये, देरी मत करो। यदि विधाता अनुकूल रहे तो सबके साथ मिलकर यह जीवनका लाभ लूट लीजिये' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस समय नगरमें [रामराज्याभिषेकसम्बन्धी] आनन्दमय बधाई सुनकर कैकेयी व्याकुल हो गयी और देवमायाके वशीभूत हो उसने कठिन कुटिलता धारण कर ली ॥ ४ ॥

वनके लिये विदाई

राग गौरी

[२]

सुनहु राम मेरे प्रानपियारे।
बारौं सत्यबचन श्रुति-सम्मत, जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥१॥
बिनु प्रयास सब साधनको फल प्रभु पायो, सो तो नाहिं सँभारे।
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे ॥२॥
रुचिर काँचमनि देखि मूढ ज्यों करतलतें चिंतामनि डारे।
मुनि-लोचन-चकोर-ससि राघव, सिव-जीवनधन, सोउ न बिचारे ॥३॥
जद्यपि नाथ तात! मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहिं बिसारे।
तदपि हमहि त्यागहु जनि रघुपति, दीनबंधु, दयालु, मेरे बारे ॥४॥

अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि, प्रभु कोमल-चित चलत न पारे।
तुलसिदास जौं रहौं मातु-हित, को सुर-बिप्र-भूमि-भय टारे ? ॥५॥

[भगवान् रामके मुखसे वनगमनका प्रस्ताव सुन माता कौसल्या कहने लगीं—] 'मेरे प्राणाधार राम ! सुनो, जिनके कारण तुम्हारे चरणोंका वियोग होता हो उन श्रुतिसम्मत सत्य वचनोंको मैं तुम्हारे ऊपर निछावर करती हूँ ॥ १ ॥ जो सारे साधनोंका फल है उस प्रभुको अनायास ही प्राप्त कर लिया। फिर भी उसकी तो सँभाल की नहीं, अब श्रीहरिको त्यागकर धर्मशील होने चले हैं। हाय ! राजाने स्त्रीके वशीभूत होकर अपना सर्वस्व हार दिया ॥ २ ॥ जैसे कि मूढ़ पुरुष सुन्दर काचमणि देखकर हाथसे चिन्तामणि गिरा देता है। 'राम मुनीश्वरोंके नेत्ररूप चकोरोंके लिये चन्द्रमा हैं और साक्षात् श्रीशङ्करके प्राणसर्वस्व हैं' राजाने तो इस बातका भी विचार नहीं किया ॥ ३ ॥ हे तात ! यद्यपि स्वामीने मायाके वशीभूत होकर ही अपने सुखनिधान पुत्र तुम्हें त्याग दिया है, तो भी हे दीनबन्धु, हे दयामय, हे मेरे लाल रघुनन्दन ! तुम हमें तो मत छोड़ो' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं, माताके ये अतिशय प्रीति और विनययुक्त वचन सुनकर कोमलहृदय भगवान् राम वहाँसे चल न सके और सोचने लगे—'यदि मैं माताका प्रिय करनेके लिये यहीं रह जाऊँ तो देवता, ब्राह्मण और पृथिवीका भय कौन दूर करेगा ?' ॥ ५ ॥

[३]

रहि चलिए सुंदर रघुनायक।
जो सुत ! तात-बचन-पालन-रत, जननिउ तात ! मानिबे लायक ॥१॥

बेद-बिदित यह बानि तुम्हारी, रघुपति सदा संत-सुखदायक ।
राखहु निज मरजाद निगमकी, हौं बलि जाउँ, धरहु धनुसायक ॥२॥
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक ।
यह दूसन बिधि तोहि होत अब रामचरन-बियोग-उपजायक ॥३॥
मातु बचन सुनि स्रवत नयन जल, कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक ।
तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक ॥४॥

हे सुन्दर रघुनन्दन! आप रह जाइये। बेटा! यदि तुम पिताके वचनोंका पालन करनेमें ऐसे तत्पर हो तो हे तात! तुम्हारे लिये माता भी तो माननीया है ॥ १ ॥ तुम्हारा यह स्वभाव तो वेदमें भी विख्यात है कि रघुनाथजी सर्वदा सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले हैं। अतः मैं बलिहारी जाऊँ, तुम अपनी वेदोक्त मर्यादाकी रक्षा करो और धनुष-बाण उतारकर रख दो ॥ २ ॥ रामके वनगमनका समाचार पाते ही सारा नगर शोककूपमें डूब जायगा और महाराज भी प्राण छोड़ देंगे। अरे रामचरणोंसे विछोह करानेवाले विधाता! देख यह दोष अब तेरे ऊपर आनेवाला है ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, माताके ये वचन सुनकर प्रभु नेत्रोंसे जल बहाने लगे, मानो कुछ तो यह नरदेह पानेका सुभाव था और कुछ यह विचार भी था कि यदि मैंने देवताओंका कार्य पूर्ण न किया तो मुझे पृथिवीमें आनेका दोष ही लगेगा ॥ ४ ॥

राग सोरठ

[४]

राम! हौं कौन जतन घर रहिहौं?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौनसों कहिहौं ॥१॥

इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें ।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें ॥२॥
जिन्ह श्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी ।
तिन्ह श्रवननि बनगवन सुनति हौं, मोतें कौन अभागी ? ॥३॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन, बदनकमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥४॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥५॥

[माता कौसल्या कहने लगी—] 'बेटा राम ! मैं किस प्रकार घरमें रह सकूँगी ? मैं बारंबार अंक भरकर गोदमें ले किससे 'लाल' कहकर बोलूँगी ? ॥ १ ॥ मेरे लाल ! तुम जो बहुत-से बालकोंको साथमें लेकर इस आँगनमें विहार किया करते थे सो हे बेटा ! तुम्हारी उन बहुत-सी बाललीलाओंको याद कर-करके मेरे प्राण कैसे रह सकेंगे ? ॥ २ ॥ जिन कानोंसे तुम्हारे सुन्दर बोल सुन-सुनकर मैं स्नेहमें डूब जाती थी आज उन्हींसे तुम्हारे वनगमनका समाचार सुन रही हूँ ! भला, मुझसे अधिक अभागिनी और कौन होगी ॥ ३ ॥ हे राम ! तुम्हारा मुखारविन्द न देखनेपर तो मुझे एक-एक निमेष युगके समान बीतता है; अब यदि (चौदह) वर्ष बीतनेपर भी यह शरीर रह गया तो बेटा ! बलिहारी जाऊँ, इसकी तुम्हारे प्रति क्या प्रीति समझी जायगी ?' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं, माताको इस प्रकार व्याकुल देख श्रीहरि प्रेमसे अधीर हो गये । उनका कण्ठ भर आया, नेत्रोंसे जल बहने लगा और उन्होंने बारंबार शीघ्र ही लौट आनेके लिये कहा ॥ ५ ॥

राग बिलावल

[५]

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि !
सादर सासु चरन सेवहु नित, जो तुम्हरे अति हित, गृह-स्वामिनि ॥१॥
राजकुमारि ! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
दुसह बात, बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ॥२॥
हौं पुनि पितु-आग्या प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी, मुरछित भइ भामिनि।३।

[फिर सीताजीको साथ चलनेके लिये हठ करती देख भगवान् रामने कहा—] 'हे प्रिये ! हमारे कहनेसे तुम घर ही रहो। तुम्हारे लिये जो अत्यन्त हितकर और गृहकी स्वामिनी हैं उन सासके चरणोंकी तुम सर्वदा आदरपूर्वक सेवा करो ॥ १ ॥ हे राजकुमारि ! वनका मार्ग बड़ा ही कठिन और कण्टकाकीर्ण है। हे गजगामिनि ! तुम अपने कोमल चरणोंसे उसपर कैसे चल सकोगी ? अगणित दिन और रात्रियोंतक तुम दुःसह वायु, वर्षा, शीत और घाम कैसे सहन कर सकोगी ? ॥ २ ॥ हे विद्युत्कान्तिमयि ! मैं भी पिताजीकी आज्ञाका पालनकर शीघ्र ही लौट आऊँगा।' तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके ये वियोगसूचक वचन सुनकर सीताजी उन्हें सह न सकीं और मूर्च्छित हो गयीं ॥ ३ ॥

[६]

कृपानिधान सुजान प्रानपति, संग बिपिन ह्वै आवोंगी ।
गृहतें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोंगी ॥१॥

थाके चरनकमल चापौंगी, श्रम भए बाउ डोलावोंगी।
नयन-चकोरनि मुखमयंक-छबि सादर पान करावोंगी ॥२॥
जौ हठि नाथ राखिहौ मोकहँ, तौ सँग प्रान पठावोंगी।
तुलसिदास प्रभु बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन देखावोंगी? ॥३॥

[सीताजी कहने लगीं—] 'मैं अपने कृपानिधान सुजानशिरोमणि प्राणनाथके साथ वनमें रह आऊँगी। और मार्गमें आपके साथ चलते हुए सचमुच घरसे भी करोड़ों गुना सुख पाऊँगी ॥ १ ॥ जब आप थक जायँगे तो मैं आपके चरणकमल दबाऊँगी और श्रम मालूम होनेपर हवा करूँगी, तथा अपने नेत्ररूप चकोरोंको आपके मुखचन्द्रकी छबि आदरपूर्वक पान कराऊँगी ॥ २ ॥ और हे नाथ! यदि आप हठपूर्वक मुझे यहीं छोड़ जायँगे तो मैं लाचार होकर अपने प्राणोंको ही आपके साथ भेज दूँगी, क्योंकि आपके चले जानेपर फिर प्रभुके बिना जीवित रहकर मैं अपना मुख कैसे दिखलाऊँगी?' ॥ ३ ॥

[७]

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जोपै पिय परिहर्‌यो राजु ॥१॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद-मूल-फल अमिय नाजु।
प्रभुपदकमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहितें अधिक कहा सुख-समाजु? ॥२॥
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै, पति कानन कियो मुनिको साजु।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥३॥

'कहिये, भला आपके बिना इस घरमें मेरा क्या काम है? जब प्रियतमने राज्य त्याग दिया तब मेरे लिये तो वन ही करोड़ों स्वर्ग-

लोकोंके समान है ॥ १ ॥ मुझे तो वल्कल ही अति मनोहर और निर्मल दुकूल होगा और कन्द-मूल-फल ही अमृतमय अन्न होगा। अहा! मेरे नेत्र क्षण-क्षणमें प्रभुके चरणकमलोंका दर्शन करेंगे—इससे अधिक और क्या सुखकी सामग्री होगी? ॥ २ ॥ हाय! मैं तो राजभवनमें भोगलम्पट होकर रहूँ और पतिदेव वनमें मुनियोंके ठाटसे निवास करें—ऐसे विरहसूचक वचनोंको सुनकर भी आज मेरा कठोर हृदय क्यों विदीर्ण नहीं हो जाता?' ॥ ३ ॥

[८]

प्रिय निठुर बचन कहे कारन कवन?
जानत हौ सबके मनकी गति, मृदुचित, परमकृपालु, रवन! ॥१॥
प्राननाथ सुंदर सुजानमनि, दीनबंधु, जग-आरति-दवन।
तुलसिदास प्रभु-पदसरोज तजि रहिहौं कहा करौंगी भवन? ॥२॥

'हे प्राणनाथ! आज आपने ऐसे कठोर वचन किस कारणसे कहे? हे रमण! आप मृदुलचित्त और परम कृपालु हैं; आप सबके मनकी गति जानते हैं ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ! हे सुन्दर! हे सुजान-शिरोमणि! हे दीनबन्धु! हे जगत्का दुःख दूर करनेवाले! आपके चरणकमलोंको त्यागकर मैं घरमें रहकर क्या करूँगी?' ॥ २ ॥

[९]

मैं तुम्हसों सतिभाव कही है।
बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥१॥
जौ चलिहौ तौ चलो चलि कै बन, सुनि सिय मन अवलंब लही है।
बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहु नाह बचनमिस बाँह गही है ॥२॥

प्राननाथके साथ चलीं उठि, अवध सोकसरि उमगि बही है।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥३॥

[भगवान् राम बोले—] 'प्रिये! मैंने तो तुमसे सच्चे मनसे कहा है; तुम इस प्रकार और तरह क्यों समझती हो? वनमें सचमुच ही बहुत क्लेश है ॥ १ ॥ यदि तुम चलना ही चाहती हो तो चलो, वनके लिये तैयार हो जाओ।' यह सुनकर सीताजीके चित्तको सहारा मिल गया, मानो विरहरूप समुद्रमें डूबते-डूबते इस वचनके मिषसे ही पतिदेवने उनकी बाँह पकड़ ली ॥ २ ॥ वे उठकर प्राणनाथके साथ चल दीं। इस समय अयोध्यामें शोककी सरिता उमड़कर बहने लगी। तुलसीदास कहते हैं, यह तो कभी किसीने कहीं नहीं सुना कि शरीरको छोड़कर परछाईं रही हो [फिर इस समय भगवान् रामको छोड़कर श्रीसीताजी कैसे रह सकती थीं] ॥ ३ ॥

[१०]

जबहि रघुपति-सँग सीय चली।
बिकल-बियोग लोग-पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली ॥ १ ॥
कोउ कहै, मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।
कोउ कहै, कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली ॥ २ ॥
एक कहैं, बन जोग जानकी! बिधि बड़ बिषम बली।
तुलसी कुलिसहुकी कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥ ३ ॥

जिस समय भगवान् रामके साथ सीताजी चल दीं उस समय नगरके नरनारी वियोगव्यथासे व्याकुल होकर कहने लगे—'अरी आली! यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है' ॥ १ ॥ कोई कहने लगे—

'राजाने अच्छा नहीं किया। वे काँचके लिये मणियोंको त्याग रहे हैं।' कोई बोले—'कैकेयी कुलके लिये कुवेल (बुरी वेल) रूप है, जो इस समय दुःखरूप विषमय फलोंसे फली है' ॥ २ ॥ किसीने कहा—'विधाता भी बड़ा ही विषम और बलवान् है! भला जानकी क्या वनके योग्य है?' तुलसीदासजी कहते हैं, उस दिन तो वज्रकी कठोरता भी तड़ककर फट गयी ॥ ३ ॥

[११]

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे।
उर धकधकी, न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥१॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान-कृपान बीर-सी छोरे।
तात बिदा माँगिए मातुसों, बनिहै बात उपाइ न औरे ॥२॥
जाइ चरन गहि आयसु जाँचौ, जननि कहत बहुभाँति निहोरे।
सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वैहौ तौ जानिहौं, सही सुत मोरे ॥३॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर, राम समीप सुकृत नहि थोरे।
तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित, उड़्यो मानो बिहग बधिक भए भोरे॥

श्रीलक्ष्मणजी करकमल जोड़े हुए खड़े हैं। उनके हृदयमें धकधकी लगी हुई है, संकोचवश कुछ कहते नहीं [बस यही सोचते हैं—] 'हाय! इस समय तो प्रभु सभीको तृण तोड़कर त्याग रहे हैं [न जाने, इस सेवकको भी साथ लेंगे या नहीं?]' ॥ १ ॥ कृपासागर भगवान् रामने भाईको वीरोंके समान प्राणरूप कृपाण खोले हुए देख [अर्थात् वीर जैसे तलवार खोले खड़े रहते हैं इसी तरह लक्ष्मणजीको

प्राण निछावर करनेके लिये उद्यत देख] उनसे कहा—'भैया! मातासे विदा माँग आओ, इसके सिवा किसी और तरह बात नहीं बन सकेगी' ॥ २ ॥ जब लक्ष्मणने जाकर माताके चरण पकड़कर उनसे आज्ञा माँगी तब माताने लक्ष्मणजीसे बहुत निहोरा करके कहा—'यदि तुम राम और सीताकी सेवा करके पवित्र होगे तो ही मैं तुम्हें अपना सच्चा पुत्र जानूँगी ॥ ३ ॥ तुम बारंबार यह विचार करना कि रघुनाथजीके पास रहना कोई कम पुण्यकी बात नहीं है।' तुलसीदास कहते हैं, माताकी यह शिक्षा सुन लक्ष्मणजी इस प्रकार चकितचित्त होकर चले जैसे बधिकको असावधान देखकर पक्षी उड़ जाता है ॥ ४ ॥

राग सोरठ

[१२]

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै।
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउ, जहाँ मोहि मिलि लीजै ॥ १ ॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें ॥ २ ॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥ ३ ॥
तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह बिषम हिम पाई ॥ ४ ॥

[भगवान्‌को वनकी ओर जाते सुन महाराज दशरथ कहने लगे—] 'हे राम-लक्ष्मण! मुझे अपना मुखचन्द्र देख लेने दो। अब मेरी तो यही अन्तिम भेंट है। मैं बलिहारी जाता हूँ, जहाँ भी जाओ, मुझसे मिल-

कर जाना' ॥ १ ॥ पिताके ये वचन सुन रघुनाथजीने उनके चरण पकड़ लिये। तब राजाने भी उन्हें छातीसे लगा लिया। उस अवसरकी याद आनेपर तो आज भी पृथिवी दरारके मिषसे विदीर्ण हो जाती है ॥ २ ॥ फिर प्रभुने सिर नवाकर वनके लिये प्रस्थान किया। उस समय महाराज मूर्च्छित हो गये और उन्हें फिर चेतना न हुई, मानो कर्मरूप चोर राजारूप पथिकको मारकर उसका रामरूप रत्न लेकर भाग गया ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, तदनन्तर भानुकुल-भानु भगवान् राम रथपर आरूढ़ हो अति सुहावनी दक्षिणदिशाको चले। उस समय प्रभुका विरहरूप विषम हिम पाकर अयोध्यारूप सरोवरके पुरजनरूप कमल मुरझा गये ॥ ४ ॥

वनके मार्गमें

राग बिलावल

[१३]

कहौ सो बिपिन हैं धौं केतिक दूरि।
जहाँ गवन कियो, कुँवर कोसलपति, बूझति सियपिय पतिहि बिसूरि ॥१॥
प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि।
करौं बयारि, बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥ २॥
तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरि।
कानन कहाँ अबहिं सुनु सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥ ३॥

[मार्गमें थक जानेसे] श्रीजानकीजी चिन्तित होकर भगवान् रामसे पूछती हैं—'हे कोसलराजकुमार! आपने जहाँके लिये प्रस्थान किया है वह वन यहाँसे कितनी दूर है? ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ! आपने

सब सुख तृणके समान त्याग दिये और अब परदेशको पैदल ही जा रहे हैं। [आप थक गये होंगे] कुछ देर इस वृक्षके नीचे विश्राम कीजिये; मैं आपको हवा करूँगी और चरणकमलोंकी धूलि झाड़ूँगी ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, प्रियाके ये वचन सुनकर प्रभुके नेत्रकमलोंमें जल भर आया, और 'अरी सुन्दरि ! अभी वन कहाँ ?' ऐसा कहकर उनकी ओर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक निहारा ॥ ३ ॥

[१४]

फिरि फिरि राम सीयतनु हेरत ।
तृषित जानि जल लेन लषन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥१॥
अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत ।
मगन न डरत निरखि कर-कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥२॥
अवलोकत मग-लोग चहूँ दिसि, मनहु चकोर चंद्रमहि घेरत ।
ते जन भूरिभाग भूतलपर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत ॥३॥

भगवान् राम पुनः पुनः सीताजीकी ओर देखते हैं। उन्हें प्यासी जानकर लक्ष्मणजी जल लेने गये, तब भगवान् ऊँचे टीलेपर चढ़कर उन्हें भुजा उठाकर पुकारते हैं ॥ १ ॥ पृथिवीपर मृग और वृक्षोंकी डालियोंपर पक्षी प्रभुका रूपलावण्य देख रहे हैं—वे पलक भी नहीं मारते और प्रभुको अपने धनुष-बाणपर करकमल फेरते देखकर भी भय नहीं मानते—प्रेममें मग्न हो रहे हैं ॥ २ ॥ मार्गमें लोग चारों दिशाओंसे देख रहे हैं, मानो चकोर पक्षी चन्द्रमाको घेरे हुए हों। तुलसीदास कहते हैं, जो लोग बटोही रामके चरणोंमें रत हैं वे पृथिवीपर बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ३ ॥

[१५]

नृपति-कुँवर राजत मग जात ।

सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन, मरकत-कनकबरन मृदुगात ॥१॥

अंसनि चाप, तून कटि मुनिपट, जटा मुकुट बिच नूतन पात ।

फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात ॥२॥

संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि, राजति बिन भूषन नव-सात ।

सुखमा निरखि ग्राम-बनितनिके नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥३॥

अंग अंग अगनित अनंग-छबि, उपमा कहत सुकबि सकुचात ।

सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥४॥

मार्गमें जाते हुए राजकुमार बड़े ही शोभायमान हो रहे हैं। उनका सुन्दर मुखमण्डल है, कमलके समान नेत्र हैं तथा मरकत-मणि और सुवर्णके-से रंगके मृदुल शरीर हैं ॥ १ ॥ वे कन्धोंपर धनुष रक्खे हुए हैं, कमरमें तरकस और मुनिजनोचित वस्त्र हैं, सिरपर जटाजूटका मुकुट है, जिसमें बीच-बीचमें नवीन पत्ते खोंसे हुए हैं। वे धनुषपर अपना करकमल फेर रहे हैं और स्वभावसे मुसकराते ही चित्तको चुरा लेते हैं ॥ २ ॥ उनके साथमें सोलहों शृङ्गार किये बिना ही एक अति सुन्दरी सुकुमारी स्त्री शोभायमान है। उनकी शोभा देखते ही ग्रामीण स्त्रियोंके नेत्रकमल प्रातःकालीन कमलोंके समान खिल उठते हैं ॥ ३ ॥ उनके अंग-अंगमें अगणित कामदेवोंकी शोभा है, उसकी उपमा कहनेमें अच्छे-अच्छे कवि भी सङ्कोच मानते हैं। तुलसीदासके हृदयमें तो सीताजीके सहित वे किशोर अवस्थावाले बटोही दोनों भाई सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ४ ॥

[१६]

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुंदर दोऊ।

मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांतिहरन,

चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ॥ १॥

कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,

संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।

तापस वर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,

चितके चोर, बय किसोर, लोचन भरि जोऊ॥ २॥

दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,

परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ।

तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,

कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ॥ ३॥

[कोई ग्रामीण स्त्री कहती है—] 'अरी सखि ! तू देख तो, ये दोनों पथिक बड़े ही सुन्दर हैं। ये मरकत और सुवर्णके समान श्याम एवं गौरवर्ण हैं, करोड़ों कामदेवोंकी कान्तिको हरनेवाले हैं तथा इनके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं। जान पड़ता है—ये कोई राजकुमार हैं॥ १॥ इनके हाथोंमें धनुष-बाण है, कमरमें तरकस है तथा सुन्दर शरीरमें मुनिजनोचित वस्त्र शोभायमान हैं। इनके साथ एक चन्द्रमुखी स्त्री है, वह भी बड़ी ही सुन्दरी है। इन्होंने तपस्वियोंका-सा सुन्दर वेष धारणकर मानो सारी शोभा लूट ली है। इन किशोर अवस्थावाले चित्तचोरोंको तनिक नेत्र भरकर देख ले'॥ २॥ तब सूर्यकुलशिरोमणि भगवान् रामको देखकर सब ग्राम-नारियाँ प्रेममें मग्न हो गयीं और

आपसमें कहने लगीं—'अरी सखि! इन मणियोंको प्रेमरूप तागेमें पिरो लो।' तुलसीदास कहते हैं, इस ध्यानको शुभ धन जानकर और इसे ही बड़ा भारी लाभ समझकर तू कृपणके समान प्रेमपूर्वक अपने हृदयरूप घरमें छिपाकर रख ॥ ३ ॥

[१७]

कुँवर साँवरो, री सजनी! सुंदर सब अंग।
रोम रोम छबि निहारि आलि वारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग ॥ १ ॥
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा-कलाप,
सुचि सर कर, मुनिपट कटि-तट कसे निषंग।
आयत उर-बाहु-नैन, मुख-सुखमाको लहै न,
उपमा अवलोकि लोक, गिरामति-गति भंग ॥ २ ॥
यों कहि भई मगन बाल, बिथकीं सुनि जुवति-जाल,
चितवत चले जात संग मधुप-मृग-बिहंग।
बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि,
तुलसी मन-बसन रँगे रुचिर रूपरंग ॥ ३ ॥

'अरी सखि! यह साँवला कुमार तो सभी अंगोंसे सुन्दर है। अरी आली! इनकी रोम-रोमकी छवि देखकर इनपर करोड़ों अश्विनी-कुमार, शरद्ऋतुके चन्द्रमा और कामदेव निछावर कर दे ॥ १ ॥ इनके वामभागमें धनुष शोभायमान है, सिरपर मनोहर जटाजूट है, हाथमें सुन्दर बाण है तथा कटिप्रदेशमें मुनियोंके-से वस्त्र और तरकस कसे हुए हैं। इनके वक्षःस्थल, भुजाएँ और नेत्र विशाल हैं तथा

मुखकी शोभा तो कोई भी नहीं पा सकता । संसारमें इनकी उपमा देखते-देखते तो सरस्वतीकी बुद्धिकी भी गति नष्ट हो गयी है' ॥ २ ॥ ऐसा कहकर ग्रामकी बालाएँ भगवान्‌की रूपराशिमें डूब गयीं, तथा उनकी बातें सुनकर नवयुवतियाँ थकी-सी रह गयीं । भौंरे, मृग और पक्षिगण तो प्रभुको निहारते हुए उन्हींके संग हो लिये । तुलसीदास कहते हैं, उनके शरीरकी दशा तथा वेदके लिये भी अगम्य प्रेमरसका मैं कैसे वर्णन करूँ ? उनके मनरूप वस्त्र प्रभुके अति रुचिर रूप-रंगमें रँग गये ॥ ३ ॥

राग कल्याण

[१८]

देखु, कोऊ परमसुंदर सखि ! बटोही ।

चलत महि मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन,
भूपसुत रूपनिधि निरखि हौं मोही ॥ १ ॥

अमल मरकत स्याम, सील-सुखमा-धाम,
गौरतनु सुभग सोभा सुमुखि जोही ।

जुगल बिच नारि सुकुमारि सुठि सुंदरी,
इंदिरा इंदु-हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥

करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर-सुखद, मरदन अवनि-द्रोही ।

अंबुजायत नयन, बदन-छबि बहु मयन,
चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥ ३ ॥

बचन प्रिय सुनि श्रवन राम करुनाभवन,
चितए सब अधिक हित सहित कछु ओही ।

दास तुलसी नेह-बिबस बिसरी देह,
जान नहिं आपु तेहि काल धौं को ही ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! देख तो कोई बड़े ही सुन्दर बटोही राजकुमार अपने अरुणकमलवत् कोमल चरणोंसे पृथिवीपर पैदल जा रहे हैं; उन रूपनिधानको देखकर मैं तो मोहित हो गयी हूँ ॥ १ ॥ अरी सुमुखि ! मैंने उनके शील और सुषमाके आगार, स्वच्छ मरकतमणिके समान श्याम तथा अति सुन्दर गौर शरीरकी शोभा देखी है। उन दोनोंके बीचमें एक परम लावण्यमयी और सुन्दरी सुकुमारी नारी है, मानो चन्द्रमा और श्रीहरिके मध्यमें साक्षात् लक्ष्मीजी ही विराजमान हों ॥ २ ॥ उनके करकमलोंमें मनोहर धनुष-बाण हैं और कमरमें सुन्दर तरकस है। वे बड़े ही धीर, देवताओंको सुख देनेवाले और पृथिवीके द्रोहियोंका दमन करनेवाले हैं। उनके नयन कमलदलके समान विशाल और मुखकी कान्ति अनेकों कामदेवोंके सदृश है, तथा वे परम चतुर अपनी चारु चितवनसे सबके चित्तोंको आकर्षित कर लेते हैं' ॥ ३ ॥ उनके ये प्रिय वचन कानोंमें पड़ते ही करुणा-अयन भगवान् रामने उनकी ओर कुछ और भी अधिक प्रीतिसे देखा। तुलसीदासजी कहते हैं, प्रेममें अधीर हो जानेके कारण उन्हें अपने शरीरकी सुधि जाती रही और उस समय किसीको अपना भी ज्ञान न रहा ॥ ४ ॥

राग केदारा

[१९]

सखि ! नीके कै निरखि, कोऊ सुठि सुंदर बटोही।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन-जोग,
बदन सोभासदन देखि हौं मोही ॥ १ ॥

साँवरे-गोरे किसोर, सुर-मुनि-चित्त-चोर,
उभय-अंतर एक नारि सोही।
मनहु बारिद-बिधु बीच ललित अति,
राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जनम सफल करि,
सुनहि सुमुखि ! जनि बिकल होही।
को जानै, कौने सुकृत लह्यौ है लोचन-लाहु,
ताहितें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी-सी काढ़ी,
कौन जानै, कहाँतें आई, कौनकी, को ही ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! तनिक अच्छी तरह देख, कोई बड़े ही सुन्दर बटोही जा रहे हैं। देख कामदेवको भी लुभानेवाली इनकी मधुर मूर्ति देखने ही योग्य है। इनके शोभामय मुखमण्डलको देखकर मैं तो मोहित हो गयी हूँ ॥ १ ॥ ये साँवरे-गोरे किशोरवयस्क बालक देवता और मुनियोंके भी चित्तको चुरानेवाले हैं। इन दोनोंके बीचमें एक सुन्दरी बाला सुशोभित है; मानो मेघ और चन्द्रमाके मध्यमें अति ललित विद्युत् अपना स्वभाव (चञ्चलता) छोड़कर विराज रही हो ॥ २ ॥ अरी सखि ! मैं जो कुछ कहती हूँ वह सुन, व्याकुल मत हो और चित्तमें धैर्य धारणकर अपना जन्म सफल कर ले। कौन जाने, आज किस पुण्यके प्रतापसे हमें यह नेत्रोंका लाभ मिला है; इसीसे मैं तुझसे

बारंबार कह रही हूँ ॥ ३ ॥ इस प्रकार सखीको सुशिक्षा दे वह प्रेममें डूब गयी और उसे अपनी सुधि जाती रही। तुलसीदास कहते हैं, फिर तो वह पत्थरमें गढ़कर काढ़ी हुईके समान ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयी। फिर यह कौन जाने कि वह कहाँसे आयी थी और किसकी कौन लगती थी ? ॥ ४ ॥

[२०]

माई ! मनके मोहन जोहन-जोग जोही ।
थोरी ही बयस गोरे-साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित, बिधुबदन बटोही ॥ १ ॥
सिरनि जटा-मुकुट मंजुल सुमनजुत,
तैसिये लसति नव पल्लव खोही ।
किये मुनि-बेष बीर, धरे धनु-तून-तीर,
सोहैं मग, को हैं, लखि परै न मोही ॥ २ ॥
सोभाको साँचो सँवारि रूप जातरूप,
ढारि नारि बिरची बिरंचि, संग सोही ।
राजत रुचिर तनु सुंदर श्रमके कन,
चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही ? ॥ ३ ॥
सनेह-सिथिल सुनि बचन सकल सिया,
चितई अधिक हित सहित ओही ।
तुलसी मनहु प्रभु-कृपाकी मूरति फिरि,
हेरि कै हरषि हिये लियो है पोही ॥ ४ ॥

'अरी माई ! वे मनमोहन देखने ही योग्य हैं; आज मैंने उन्हें देखा है। उनकी थोड़ी ही अवस्था है और वे परम सुन्दर साँवले-गोरे,

सुन्दर नेत्रवाले, चन्द्रमुख बटोही नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले हैं ॥ १ ॥ उनके सिरपर सुन्दर पुष्पोंके सहित जटाओंका मुकुट है और वैसी ही नवीन पत्तोंकी खोही (पत्तोंका बना हुआ छाता) भी है। वे वीरश्रेष्ठ मुनियोंका वेष बनाये, धनुष-बाण और तरकस धारण किये मार्गमें शोभायमान हैं। वे हैं कौन—सो मैं नहीं जानती ॥ २ ॥ विधाताने शोभाका साँचा और रूपका सुवर्ण बनाकर जो एक स्त्री ढाली है वही उसके साथ शोभायमान है। उनके सुन्दर शरीरपर पसीनेकी सुहावनी बूँदें विराजती हैं। तुझसे क्या कहूँ, उन्हें देखकर आँखों-में चकाचौंध हो जाती है' ॥ ३ ॥ उसके ये सारे वचन सुन सीताजी स्नेहसे शिथिल हो गयीं और उसकी ओर विशेष प्रेमसे देखा। तुलसीदास कहते हैं, मानो प्रभुकृपाकी मूर्तिने उसकी ओर घूमकर प्रसन्नतापूर्वक देखकर उसका हृदय अपनेमें ही अटका लिया है [जिससे अब वह अन्यत्र नहीं जा सकता] ॥ ४ ॥

[२१]

सखि ! सरद-बिमल-बिधुबदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी,
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी ।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥ २ ॥

'अरी सखि ! यह बहू तो शरत्कालीन निर्मल चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाली है। ऐसी सुन्दरी स्त्री तो न पहले हुई, न है और न आगे ही होगी। विधाताने रतिको भी, इसे सुधारते समय जो छवि रह गयी थी उसीसे रचा है ॥ १ ॥ यह इन साँवले-गोरे पथिकोंके बीचमें और भी अधिक शोभायमान होती है, मानो इन तीनोंने मिलकर तीनों लोकोंकी शोभा लूट ली हो। तुलसीदासजी कहते हैं, सीताको देखकर स्त्रियाँ प्रेमके वशीभूत होकर कहती हैं—'अरी अपने नेत्ररूप बालकोंको यह अमृतमयी घुट्टी पिलाओ' ॥ २ ॥

[२२]

सोहैं साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी ।
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी,
बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी ॥ १ ॥
नीके कै निकाई देखि, जनम सफल लेखि,
हम-सी भूरि-भागिनि नभ न छोनी ।
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,
सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी ॥ २ ॥

साँवले पथिकके पीछे यह अति सुन्दरी ललना शोभायमान है। यह बिजलीके समान गौरवर्ण है। इसे देखकर सखियाँ तृण तोड़ती और कहती हैं—'इसकी किशोरावस्था तो बीत चुकी है अब यौवन आनेवाला है १ इसकी सुन्दरताको अच्छी तरह देखकर अपना जन्म सफल समझो। हमारे समान बड़भागिनी स्त्रियाँ तो स्वर्गमें अथवा पृथ्वीपर कहीं भी नहीं हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, स्वामी और स्वामिनीजीको देखकर ग्रामोंकी स्त्रियाँ

उनके सौन्दर्यसुधाको नेत्ररूप दोनोंसे पीकर मोहित हो रही हैं ॥ २ ॥

[२३]

पथिक गोरे-साँवरे सुठि लोने ।
संग सुतिय, जाके तनुतें लही है द्युति सोन सरोरुह-सोने ॥ १ ॥
बय किसोर-सरि-पार मनोहर बयस-सिरोमनि होने ।
सोभा-सुधा आलि ! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने ॥ २ ॥
हेरत हृदय हरत, नहि फेरत चारु बिलोचन कोने ।
तुलसी प्रभु किधौं प्रभुको प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने ॥ ३ ॥

'ये साँवले-गोरे पथिक बड़े ही सुन्दर और सुहावने हैं। इनके साथ एक सुन्दरी स्त्री है जिसके शरीरसे अरुणकमल और सुवर्णने भी कान्ति पायी है ॥ १ ॥ किशोरावस्थारूप सरिताको पारकर अब ये आयुशिरोमणि युवावस्थामें प्रवेश करनेवाले हैं। अरी आली ! अपने नेत्रोंको मनोहर और मृदुल दोने बनाकर इनकी छबिरूप अमृतका पान करो ॥ २ ॥ इन्हें देखते ही हृदय थकित हो जाता है और मनोहर नेत्र कोने नहीं फेरते ।' तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु अथवा प्रभुका प्रेम तो किसी प्रकारका दुराव न रखकर स्पष्ट ही टोना करता है ॥ ३ ॥

[२४]

मनोहरताके मानो ऐन ।
स्यामल-गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति, उपमा कहुँ कोऊ है न ।
मानहु रति-ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैन ॥ २ ॥
किधौं सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चित-बित लैन ।
अदभुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन ॥ ३ ॥

सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामबधुन्हके बैन।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे, किए प्रेम कनौडे कै न ? ॥४॥

'अरी सखि ! तनिक नेत्र भरकर देख, ये दोनों श्याम-गौर किशोरवयस्क पथिक तो मानो मनोहरताके आश्रय ही हैं ॥ १ ॥ इनके बीचमें एक चन्द्रमुखी स्त्री विराज रही है, जिसकी कहीं कोई भी उपमा नहीं है; मानो रति और ऋतुराज वसन्तके सहित साक्षात् कामदेव ही मुनिवेष धारण किये हो ॥ २ ॥ अथवा शृंगार, सुन्दरता और सुप्रेम ही आपसमें मिलकर संसारका चित्तरूप धन हरण करनेके लिये तो नहीं चले किंवा विधाताने अद्भुतत्रयी (वशीकरण, आकर्षण और मोहिनी) को ही मार्गस्थ लोगोंको सुख देनेके लिये भेजा है' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, ग्रामवधुओंके ये पवित्र, सरल, स्नेहमय सुहावने वचन सुनकर प्रभु एक वृक्षके नीचे ठहर गये, क्योंकि प्रेम करनेपर वे किसके कनौड़े नहीं हो जाते ॥ ४ ॥

[२५]

बय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं।
सब अँग सहज सोहावने, राजिव जिते नैननि, बदननि बिधु निदरे हैं ॥१॥
तून-सुमुनिपट कटि कसे, जटा-मुकुट करे हैं।
मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्मों न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं ? ॥२॥
उभय बीच बनिता बनी, लखि मोहि परे हैं।
मदन सप्रिया सप्रिय सखा मुनि-बेष बनाए लिए मन जात हरे हैं ॥३॥
सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भरे हैं।
राम-पथिक छबि निरखि कै, तुलसी, मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं ४

'कुमारोंकी किशोरावस्था है, श्याम और गौरवर्ण है और धनुष-बाण धारण किये हैं। उनके सभी अंग सहज शोभायुक्त हैं, नेत्रोंने कमलोंको जीत लिया है और मुख चन्द्रमाका निरादर करता है॥ १॥ वे कमरमें मुनियोंके-से वस्त्र तथा तरकस कसे हुए हैं और सिरपर जटाओंका मुकुट बनाये हैं। उनकी अति मञ्जुल और मधुर मृदुल मूर्ति है, पैरोंमें जूतियाँ भी नहीं हैं, न जाने ये किस प्रकार मार्गमें चलकर आये हैं॥२॥ दोनोंके बीचमें एक स्त्रीरत्न है, उन्हें देखकर हम तो मोहित हो गयी हैं। मानो साक्षात् कामदेव ही अपनी प्रिया रति और प्रिय सखा वसन्तके साथ मुनिवेष बनाकर हमारे चित्तोंको हरे लिये जाता है'॥ ३॥ यह सुनकर सब लोग जहाँ-तहाँ प्रेमसे भरकर उन्हें देखनेके लिये चल दिये। तुलसीदास कहते हैं, बटोही रामकी छबि देखकर मार्गके लोग अपने घरके धन्धोंको भी भूल गये हैं॥ ४॥

[२६]

कैसे पितु-मातु, कैसे ते प्रिय-परिजन हैं ?
जगजलधि ललाम, लोने लोने, गोरे-स्याम,
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं॥ १॥
रूपके न पारावार, भूपके कुमार मुनि-बेष,
देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं।
सुखमाकी मूरति-सी, साथ निसिनाथ-मुखी,
नखसिख अंग सब सोभाके सदन हैं॥ २॥
पंकज-करनि चाप, तीर-तरकस कटि,
सरद-सरोजहुतें सुंदर चरन हैं।

सीता-राम-लषन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि! हेली हियके हरन हैं ॥ ३ ॥
प्रानहूके प्रानसे, सुजीवनके जीवनसे,
प्रेमहूके प्रेम, रंक कृपिनके धन हैं।
तुलसीके लोचन-चकोरके चंद्रमासे,
आछे मन-मोर चित-चातकके घन हैं ॥ ४ ॥

'अरी सखि! वे माता-पिता कैसे हैं? और कैसे वे प्रिय कुटुम्बी लोग हैं जिन्होंने संसारसमुद्रके सुन्दर रत्नरूप इन सलोने श्याम-गौर बालकोंको वनमें भेज दिया है? ॥ १ ॥ इनके रूपका पारावार नहीं है; इन मुनिवेषधारी राजकुमारोंकी सुन्दरता देखकर तो कामदेव भी तुच्छ जान पड़ता है। इनके साथ सौन्दर्यकी मूर्ति-जैसी एक चन्द्रमुखी बाला है जिसके नखसे लेकर शिखापर्यन्त सभी अङ्ग शोभाके आश्रय हैं ॥ २ ॥ इनके करकमलोंमें धनुष है और कमरमें तीरोंसे भरा तरकस है तथा इनके चरण शरत्कालीन कमलसे भी सुन्दर हैं।' इस प्रकार सीता, राम और लक्ष्मणको देखकर गाँवोंकी स्त्रियाँ कहती हैं—'अरी सहेली! देख, देख, देख, ये तो बड़े ही चित्त-को चुरानेवाले हैं ॥ ३ ॥ ये तो प्राणोंके भी प्राण-जैसे, जीवनके भी जीवन-जैसे, प्रेमके भी प्रेम-जैसे और रंक तथा कृपणोंके भी धन-जैसे हैं।' ये तुलसीदासके नेत्ररूप चकोरके लिये चन्द्रमाके समान तथा मनरूप मोर और चित्तरूप चातकके लिये सुन्दर मेघके समान हैं ॥ ४ ॥

राग भैरव

[२७]

देखि! द्वै पथिक गोरे-साँवरे सुभग हैं।
सुतिय सलोनी संग सोहत सुमग हैं ॥ १ ॥

सोभासिंधु-संभव-से नीके नीके नग हैं।
मातु-पितु-भाग-बस गए परि फँग हैं ॥ २ ॥
पाइँ पनह्यौ न, मृदु पंकज-से पग हैं।
रूपकी मोहनी मेलि मोहे अग-जग हैं ॥ ३ ॥
मुनि-बेष धरे, धनु-सायक सुलग हैं।
तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! देख, दो अति सुन्दर साँवले-गोरे पथिक जा रहे हैं। मार्गमें उनके साथ एक अति सुन्दरी और सलोनी स्त्री भी शोभायमान है ॥ १ ॥ ये शोभारूप समुद्रके सुन्दर रत्नके समान हैं; इस समय माता-पिताके दुर्भाग्यवश फन्देमें पड़ गये हैं ॥ २ ॥ इनके चरण कमलके समान कोमल हैं, परन्तु उनमें जूतियाँ भी नहीं हैं। उन्होंने अपने रूपकी मोहिनी डालकर सारे स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको मोहित कर लिया है ॥ ३ ॥ ये मुनिवेष धारण किये हैं और इनके पास धनुष-बाण भी हैं।' इनके सुन्दर-सुन्दर डग तुलसीदासके हृदयमें विराजमान हैं ॥ ४ ॥

[२८]

पथिक पयादे जात पंकज-से पाय हैं।
मारग कठिन, कुस-कंटक-निकाय हैं ॥ १ ॥
सखी ! भूखे-प्यासे, पै चलत चित चाय हैं।
इन्हके सुकृत सुर-संकर सहाय हैं ॥ २ ॥
रूप-सोभा-प्रेमके-से कमनीय काय हैं।
मुनिबेष किये किधौं ब्रह्म-जीव-माय हैं ॥ ३ ॥

बीर, बरियार, धीर, धनुधर-राय हैं।
दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय हैं ॥ ४ ॥
मग-लोग देखत करत हाय हाय हैं।
बन इनको तो बाम बिधि कै बनाय हैं ॥ ५ ॥
धन्य ते, जे मीन-से अवधि-अंबु-आय हैं।
तुलसी प्रभुसों जिन्हहूँके भले भाय हैं ॥ ६ ॥

हाय! ये पथिक अपने कमलसदृश चरणोंसे पैरों ही चल रहे हैं। मार्ग बड़ा ही कठोर है तथा उसमें कुश और कण्टकोंका समूह भरा हुआ है ॥ १ ॥ हे सखि! फिर भी ये भूखे-प्यासे बड़े चावसे चले जा रहे हैं। मालूम होता है, इनके पुण्यबलसे देवता और महादेवजी इनके सहायक हैं ॥ २ ॥ ये मानो रूप, शोभा और प्रेमकी मनोहर मूर्तियाँ ही हैं अथवा मुनिवेष धारण किये ब्रह्म, माया और जीव ही विराजमान हैं ॥३॥ ये वीर, बलवान्, धैर्यवान् और धनुर्धरोंमें अग्रगण्य हैं अथवा चौदहों भुवनोंकी रक्षा करनेवाले महाकीर्ति हरि ही हैं ॥ ४ ॥ मार्गके लोग देखकर 'हाय! हाय!!' करते हैं और कहते हैं कि 'इन्हें जो वनवास हुआ है सो विधाता इनके लिये बहुत ही टेढ़ा जान पड़ता है' ॥ ५ ॥ जिन लोगोंकी आयु इनके लौटनेकी अवधिरूप जलमें मीनके समान हो रही है वे धन्य हैं। तुलसीदास कहते हैं, जिनका प्रभुमें सद्भाव है वे लोग भी धन्य हैं ॥ ६ ॥

राग आसावरी

[२९]

सजनी! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद-कमलनि दोउ सील-रूप-आगार ॥ १ ॥

आगे राजिवनैन स्याम-तनु, सोभा अमित अपार ।
डारौं वारि अंग-अंगनिपर कोटि कोटि सत मार ॥ २ ॥
पाछे गौर किसोर मनोहर, लोचन-बदन उदार ।
कटि तूनीर कसे, कर सर-धनु, चले हरन छिति-भार ॥ ३ ॥
जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिंगार ।
इंद्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार ॥ ४ ॥
अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार ।
पुनि कहँ यह सोभा, कहँ लोचन, देह-गेह-संसार ? ॥ ५ ॥
सुनि प्रिय-बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपा-सुखसार ।
तुलसिदास प्रभु हरे सबन्हिके मन, तन रही न सँभार ॥ ६ ॥

'अरी सजनी ! ये कोई राजकुमार हैं। ये दोनों ही शील और रूपके भण्डार हैं तथा मार्गमें अपने मृदुल चरणकमलोंसे पैदल ही चल रहे हैं ॥ १ ॥ आगे तो कमलनयन और श्याम शरीरवाले कुँवर हैं, जिनकी शोभा अतुलित और अपार है। उनके एक-एक अङ्गपर मैं सैकड़ों करोड़ कामदेव निछावर करती हूँ ॥ २ ॥ और पीछे गौरवर्ण, मनोहर किशोरावस्थावाले लाल हैं। उनके नेत्र और मुख भी बड़े ही सुन्दर हैं। वे कमरमें तरकस और हाथोंमें धनुष-बाण लेकर मानो पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही जा रहे हैं ॥ ३ ॥ दोनोंके बीचमें एक सुकुमारी नारी बिना ही श्रृंगार किये विराज रही है। ये तीनों मिलकर ऐसे जान पड़ते हैं मानो पृथिवी इन्द्रनील, सुवर्ण और मुक्तामणिका हार पहने हुए हो ॥ ४ ॥ इन्हें तनिक नेत्र भरकर देख लो, व्याकुल मत होओ, तनिक विचार लो—फिर कहाँ यह शोभा मिलेगी ? कहाँ हमारे

नेत्र होंगे और कहाँ इस संसारमें ये घर और शरीर रहेंगे ?" ॥ ५ ॥ ये प्रिय वचन सुनकर कृपा और सुखके सारस्वरूप भगवान् रामने उनकी ओर प्रीतिपूर्वक देखा । तुलसीदास कहते हैं, ऐसा करके प्रभुने उन सबके चित्त चुरा लिये और उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न रही ॥ ६ ॥

[३०]

देखु री सखी! पथिक नख-सिख नीके हैं।
नीले पीले कमल-से कोमल कलेवरनि,
तापस हू बेप किये काम कोटि फीके हैं ॥ १ ॥
सुकृत-सनेह-सील-सुखमा-सुख सकेलि,
बिरचे बिरंचि किधौं, अमिय अमीके हैं।
रूपकी-सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,
उमहु रमातें आछे अंग अंग तीके हैं ॥ २ ॥
बन-पट कसे कटि, तून-तीर-धनु धरे,
धीर, बीर, पालक कृपालु सबहीके हैं।
पानही न, चरन-सरोजनि चलत मग,
कानन पठाए पितु-मातु कैसे हीके हैं ? ॥ ३ ॥
आली अवलोकि लेहु, नयननिके फल येहु,
लाभके सुलाभ, सुखजीवन-से जीके हैं।
धन्य नर-नारि जे निहारि बिनु गाहक हू,
आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं ॥ ४ ॥
बिबुध बरखि फूल हरपि हिये कहत,
ग्राम-लोग मगन सनेह सिय-पीके हैं।

जोगीजन-अगम दरस पायो पाँवरनि,
प्रमुदित मन सुनि सुरप-सचीके हैं ॥ ५ ॥
प्रीतिके सुबालक-से लालत सुजन मुनि,
मग चारु चरित लषन-राम-सीके हैं।
जोग न बिराग-जाग, तप न तीरथ-त्याग,
एही अनुराग भाग खुले तुलसीके हैं ॥ ६ ॥

'अरी सखि! देख, ये पथिक तो नखसे सिखतक सुन्दर हैं। ये अपने नीले और पीले कमलोंके समान कोमल शरीरोंसे तापस वेष बनाये रहनेपर भी करोड़ों कामदेवोंको फीके कर रहे हैं ॥ १ ॥ कहीं विधाताने सुकृत, स्नेह, शील, सुषमा और सुख—इन सबको एकत्रित करके तो इन्हें नहीं रचा है? ये तो अमृतके भी अमृत हैं। इनके साथ रूपमें विद्युत्के समान एक स्त्री शोभायमान है, उसके प्रत्येक अङ्ग उमा और रमासे भी उत्कृष्ट हैं ॥ २ ॥ ये कमरमें वनवासियोंके-से वस्त्र पहने तथा तरकस, तीर और धनुष धारण किये हैं। ये बड़े ही धीर-वीर, कृपालु और सभीका पालन करनेवाले हैं। इनके चरणोंमें जूतियाँ भी नहीं हैं, ये मार्गमें अपने सुकुमार चरणकमलोंसे ही चल रहे हैं। अहो! इनके माता-पिता न जाने कैसे कठिन हृदयके हैं जिन्होंने इन्हें वनमें भेज दिया है ॥ ३ ॥ अरी आली! अच्छी तरह देख लो, यही तो नेत्रोंका फल है। यह लाभका भी लाभ है और चित्तका सुखमय जीवन-सा है। वे नर-नारी धन्य हैं जो इन्हें देखकर विना ग्राहक ही इनके हाथ अपने-आप वेमोल बिक गये हैं' ॥ ४ ॥ देवता लोग फूल बरसाकर हृदयमें हर्षित हो कहते हैं, देखो ये गाँवके लोग श्रीसीतापतिके स्नेहमें मग्न हो रहे हैं।

जिसका मिलना योगियोंको भी कठिन है इन बेचारे पामर प्राणियोंने उन्हीं प्रभुका दर्शन प्राप्त किया, प्रभुका वनगमन सुनकर इन्द्र और शचीका चित्त भी परम आनन्दित हो रहा है ॥ ५ ॥ राम, लक्ष्मण और सीताके जो मार्गमें पवित्र चरित्र होते हैं वे प्रीतिके बालकोंके समान हैं, जिन्हें सुजन मुनिजन [पिताके समान] लालन करते हैं। योग, वैराग्य, यज्ञ, तप, तीर्थ और त्याग आदिका अभाव होनेपर भी इसी अनुरागके कारण तुलसीदासके भी भाग्य खुल गये हैं ॥ ६ ॥

[३१]

रीति चलिबेकी चाहि, प्रीति पहिचानिकै।
आपनी आपनी कहैं, प्रेम-परबस अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानिकै ॥ १ ॥
साँवरे कुँवरके बराइकै चरनके चिह्न,
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानिकै।
जुगल कमल-पद-अंक जोगवत जात,
गोरे गात कुँवर महिमा महा मानिकै ॥ २ ॥
उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन-सीकी,
तिनकी गहनि जे पथिक उर आनिकै।
लोचन सजल, तन पुलक, मगन मन,
होत भूरिभागी जस तुलसी बखानिकै ॥ ३ ॥

ग्रामके नर-नारी राम, लक्ष्मण और सीताजीके चलनेकी रीति देखकर और उनकी प्रीति पहचानकर, प्रेमके वशीभूत हो, स्नेहसुधामें डुबोकर अपनी-अपनी बुद्धिसे ये मनोहर और मृदुल वचन कह रहे हैं ॥१॥

'देखो, यह बहू न जाने क्या समझकर साँवले कुँवरके चरण-चिह्नोंको बचाकर पाँव रखती है ! और ये गोरे शरीरवाले कुँवर मनमें अत्यन्त महिमा मानकर दोनोंहीके चरणकमलोंके चिह्नोंको सँभालते हुए चलते हैं' ॥ २ ॥ उन ग्राम्यपुरुषोंका कथन अच्छा है, सीता और लक्ष्मणका रहन-सहन अच्छा है, तथा जिन्होंने उन पथिकोंको हृदयमें धारण किया है उनका ग्रहण करना अच्छा है । तुलसीदास भी सजल नयन, पुलकित शरीर और मनमें मग्न होकर उनके सुयशका वर्णन कर बड़भागी हो रहा है ॥ ३ ॥

राग केदारा

[३२]

जेहि जेहि मग सिय-राम-लषन गए,
तहँ तहँ नर-नारि बिनु छर छरिगे ।
निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भए
बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे ॥ १ ॥
जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु,
सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे ।
मुनिहु मनोरथको अगम अलभ्य लाभ,
सुगम सो राम लघु लोगनिको करिगे ॥ २ ॥
लालची, कौड़ीके कूर पारस परे हैं पाले,
जानत न, को हैं, कहा कीबो सो बिसरिगे ।
बुधि न बिचार, न बिगार न सुधार सुधि,
देह-गेह-नेह-नाते मनसे निसरिगे ॥ ३ ॥

बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,
'अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे'।
सो सनेह-समउ सुमिरि तुलसीहूके-से
भली भाँति भले पैंत, भले पाँसे परिगे ॥ ४ ॥

राम, लक्ष्मण और सीता जिस-जिस मार्गसे होकर निकले वहाँ-वहाँके स्त्री-पुरुष बिना छरे ही छर गये [अर्थात्, जिस प्रकार धान छरनेसे उसका तुष दूर हो जाता है और स्वच्छ चावल रह जाता है, उसी प्रकार मार्गस्थ स्त्री-पुरुष बिना अभ्यासके ही पाप-पुण्योंसे मुक्त होकर शुद्ध हो गये]। उनकी सुन्दरताकी अधिकता देखकर वाणी शिथिल हो गयी तथा शरीररूप भूमिके नयनरूप सरोवर शोभारूप अमृतसे पूर्ण हो गये ॥ १ ॥ सुकृतरूप खेतमें सुखरूप धान बिना जोते, बोये और अच्छी तरह निराये ही फूल-फल गये। जो लाभ मुनियोंके मनोरथकी पहुँचसे भी बाहर और अत्यन्त दुर्लभ था उसे श्रीरघुनाथजी छोटे-छोटे लोगोंके लिये भी सुलभ कर गये ॥ २ ॥ जो वेचारे कौड़ियों (तुच्छ देवताओंके दर्शनों) के लिये ललचा रहे थे उनके पाले पारस (रामदर्शन) पड़ गया। वे यह भी नहीं जानते कि 'ये हैं कौन ?' और 'इनके साथ क्या करना चाहिये' यह भी भूल गये। उन्हें न बुद्धि ही रही और न विचार ही; और न कुछ बिगाड़-सुधारकी ही सुधि रही। उनके मनसे देह, गेह और स्नेहके सभी नाते निकल गये ॥ ३ ॥ देवता लोग फूल बरसाकर प्रसन्न हो-होकर कहते हैं, 'अहो ! ये तुच्छ लोग भी बिना प्रयासके ही खूब संसार-सागरको पार कर गये।' उस स्नेह और आनन्दका स्मरण कर तुलसीदास-जैसोंके भी अच्छी तरह अच्छे दाँव और अच्छे पाँसे पड़ गये ॥ ४ ॥

[३३]

बोले राज देनको, रजायसु भो काननको,
आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो।
मातु-पिता-बंधु-हित, आपनो परम हित,
मोको बीसहूकै ईस अनुकूल आजु भो ॥ १ ॥
असन अजीरनको समुझि तिलक तज्यो,
बिपिन-गवनु भले भूखेको सुनाजु भो।
धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजूको
कोटि राज सरिस भरतजूको राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगनकी
चले जात बंधु दोउ मुनिको सो साज भो।
ध्याइबेको, गाइबेको, सेइबे सुमिरिबेको,
तुलसीको सब भाँति सुखद समाज भो ॥ ३ ॥

[मार्गस्थ स्त्री-पुरुष कहते हैं—] राजाने राज्य देनेके लिये कहा था, इतनेहीमें वन जानेकी आज्ञा हो गयी। किन्तु इसपर रघुनाथजीका तो मुख खिल उठा और मन प्रसन्न हो गया। ये सोचने लगे—'यह बड़ा भारी काम बना, इसमें माता-पिता और भाईका भी हित है और मेरा भी परम कल्याण है। आज विधाता मुझपर बीसों बिस्वे प्रसन्न हुआ है' ॥ १ ॥ फिर इन्होंने राजतिलकको अजीर्णका भोजन समझकर त्याग दिया तथा वनगमनको भूखेके लिये नाजके समान हितकारी समझकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार परम धीर-वीर, धर्मधुरीण रघुनाथजीके लिये भरतजीका राजतिलक करोड़ों राज्याभिषेकोंके

समान हुआ ॥२॥ मार्गस्थ पुरुषोंके द्वारा कही हुई ऐसी बातें सुनते हुए मुनियोंका-सा साज सजाये दोनों भाई चले जा रहे हैं। तुलसीदासको तो ध्यान करने, गाने, सेवन करने और स्मरण करनेके लिये यह समाज सभी प्रकार सुखदायक हुआ ॥ ३ ॥

[३४]

सिरिस-सुमन-सुकुमारि, सुखमाकी सींव,
सीय राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाईके प्रान समान, प्रियाके प्रानके प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील मई है ॥ १ ॥
आलबाल-अवध सुकामतरु कामबेलि,
दूरि करि केकई बिपत्ति-बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरुजन, प्रिय परिजन,
प्रजाहूको कुटिल दुसह दसा दई है ॥ २ ॥
पंकज-से पगनि पानह्यौं न, परुष पंथ,
कैसे निबहे हैं, निबहैंगे, गति नई है ?।
एहीं सोच-संकट-मगन मग-नर-नारि,
सबकी सुमति राम-राग-रँग-रई है ॥ ३ ॥
एक कहैं, बाम बिधि दाहिनो हमको भयो,
उत कीन्हीं पीठि, इतको सुडीठि भई है।
तुलसी सहित बनबासी मुनि हमरिऔ,
अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ ४ ॥

जो भाई लक्ष्मणके प्राणोंके समान और प्रियतमा सीताके प्राणोंके भी प्राण हैं उन कृपाशीलमय रघुनाथजीने स्वभाव तथा प्रीतिकी रीति

जानकर ही बड़े सङ्कोचसे सिरससुमनके समान सुकुमारी तथा सौन्दर्य-की सीमा श्रीसीताजीको अपने साथ लिया है ॥ १ ॥ कैकेयीने अयोध्यारूप आलवालसे [राम और सीतारूप] कल्पवृक्ष एवं कल्पलताको निकाल-कर उसमें विपत्तिकी वेल बो दी है। इस प्रकार उसने अपने लिये तथा पति, पुत्र, गुरुजन, प्रिय कुटुम्बियों एवं प्रजावर्गके लिये भी अत्यन्त कुटिल और दुःसह दशा उपस्थित कर दी है ॥ २ ॥ मार्ग बड़ा कठिन है और पैरोंमें जूते भी नहीं हैं; अतः अपने कमल-जैसे कोमल चरणोंसे इन्होंने कैसे तो अबतक निर्वाह किया है और कैसे आगे करेंगे ? यह तो एक नयी लीला देखनेमें आ रही है। मार्गके सारे नर-नारी इसी सोच और सङ्कटमें पड़े हुए हैं, उन सभीकी बुद्धि भगवान् रामके अनुरागरूप रंगमें रँग गयी है ॥ ३ ॥ कोई कहते हैं—'यह वाम विधाता हमारे लिये तो अनुकूल ही है; इसने उधरसे पीठ कर ली है तो हमारी ओर तो इसकी सुदृष्टि ही जान पड़ती है।' अतः, तुलसीदासजी कहते हैं, वनवासी मुनियोंके सहित हमारी बात तो अनायास ही खूब अच्छी तरह बन गयी है ॥ ४ ॥

राग गौरी

[३५]

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए ।१।
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनिबसन-तून, धनु-सर कर, स्यामल-गौर, सुभाय सोहाए ॥ २ ॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु-उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहि लगी चौंधी-सी, जानौं न, कौन, कहाँ तें धौं आए ॥ ३ ॥

मनु गयो संग, सोचवस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसिदास लालसा दरसकी सोइ पुरवै, जेहि आनि देखाए ॥ ४ ॥

'अरी सखि! इस मार्गसे जो दो मनोहर पथिक एक चन्द्रमुखी स्त्रीके सहित गये हैं उन्हें मैं तो अच्छी तरह देख भी न सकी ॥ १ ॥ उनके नेत्र कमलके समान थे, सुन्दर किशोर अवस्था थी, सिरपर जटाओंसे रचकर मुकुट बनाये हुए थे, कमरमें मुनियोंके-से वस्त्र और तरकस तथा हाथोंमें धनुष-बाण धारण किये थे। वे श्याम-गौरवर्ण और स्वभावसे ही शोभायमान थे ॥ २ ॥ उनका मनोहर मुखमण्डल था, विशाल वक्षःस्थल और भुजाएँ थीं, तथा अपने शरीरकी कान्तिसे वे करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करते थे। उन्हें देखकर मुझे तो चौंधी-सी लग गयी; मैं तो यह भी नहीं जान सकी कि वे कौन थे और कहाँसे आये थे? ॥ ३ ॥ मेरा मन तो उन्हींके साथ चला गया, नेत्र भी सोचवश जल बरसा रहे हैं। मैंने चित्तको बहुत कुछ समझाया है, तो भी उनके दर्शनकी लालसा लगी हुई है; अब इसे वही पूर्ण करेगा जिसने उन्हें एक बार यहाँ लाकर दिखा दिया था' ॥ ४ ॥

[३६]

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
स्यामल-गौर, सहज सुंदर, सखि! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥ १ ॥
कर-कमलनि सर, सुभग सरासन, कटि मुनिबसन-निषंग सोहाए।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक-जननि जेहि जाए ॥ २ ॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन।
तुलसिदास मनमथ मारगमें राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥ ३ ॥

'अरी सखि ! वे वीर बटोही इस मार्गसे फिर नहीं लौटे। वे श्याम-गौर कुँवर स्वभावसे ही सुन्दर थे। क्या हम उन्हें एक बार फिर देख सकेंगी ? ॥ १ ॥ उनके करकमलोंमें बाण और सुन्दर धनुष थे तथा कमरमें मुनियोंके-से वस्त्र और तरकस शोभायमान थे। उनकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी और सभी अङ्ग अत्यन्त मनोहर थे। वे माता-पिता-जिन्होंने उन्हें जन्म दिया है, धन्य हैं' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, जिनका शरच्चन्द्रके समान सुन्दर मुखमण्डल है, सिरपर जटाएँ हैं तथा अरुण कमलके समान अति सुन्दर नेत्र हैं वे करोड़ों कामदेवोंके मदका मथन करनेवाले प्रभु हमारे मनोमय मार्गमें विराजमान हैं ॥ ३ ॥

राग केदारा

[३७]

आली ! काहू तौ बूझौ न, पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँतें आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम-गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ? ॥ १ ॥
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं ।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत,
लोयननि लाहु देत जहाँ जहाँ जैहैं ॥ २ ॥
राम-लषन-सिय-पंथिकी कथा पृथुल,
प्रेम बिथकीं कहति सुमुखि सबै हैं ।
तुलसी तिन्ह सरिस तेऊ भूरिभाग जेऊ,
सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं ॥ ३ ॥

'अरी आली ! किसीसे पूछो तो 'ये पथिक कहाँ जायँगे ? कहाँसे आये हैं ? कौन हैं ? इन श्याम-गौर कुमारोंके नाम क्या हैं ? और अपना कार्य समाप्त करनेपर फिर कुशलपूर्वक इसी मार्गसे लौटेंगे या नहीं ?' ॥ १ ॥ इनकी उठती हुई अवस्था है, शरीरपर यौवनका रंग चढ़ रहा है, देखनेमें बड़े ही सुहावने और सरल जान पड़ते हैं, इनकी शोभा देखनेवाले बिना मोल ही बिके जा रहे हैं । इनके साथकी जो सुघड़ ललना है वह तो देखकर ही लोगोंके चित्तोंको चुरा लेती है। ये जहाँ-जहाँ जायँगे वहाँ-वहाँके लोगोंको इसी प्रकार नेत्रोंका लाभ देंगे' ॥ २ ॥ इस प्रकार सभी सुन्दरियाँ प्रेममें विह्वल होकर बटोही राम, लक्ष्मण और सीताकी भारी कथाको ही कह रही हैं। तुलसीदास कहते हैं, जो लोग उन कथाओंको समाहित चित्तसे सुनकर उन्हींमें मन लगाये रहते हैं वे भी उन ग्रामनारियोंके समान हो सौभाग्यवान् हैं ॥ ३ ॥

[३८]

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही ।
गए जो पथिक गोरे-साँवरे सलोने,
सखि ! संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
जानि-पहिचानि बिनु आपुतें, आपुनेहुतें,
प्रानहुतें प्यारे प्रियतम उपही ।
सुधाके, सनेहहूके सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥ २ ॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुक, कहत,
तनु पुलक, नयन जलधार बही ।

तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ ३ ॥

'अरी सखि ! बहुत दिन बीत गये, परन्तु अभीतक जो साँवले-गोरे सुन्दर पथिक गये थे और जिनके साथ एक सुकुमारी स्त्री भी थी, उनकी कुछ भी सुधि नहीं मिली ॥ १ ॥ वे परदेशी—जान-पहचान न होनेपर भी—अपनेसे, अपने प्रिय जनोंसे तथा अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ते थे। उन्हें विधाताने अमृत और स्नेहका भी सार लेकर रचा है। वे जैसे प्रिय लगते हैं वह हमसे कहा नहीं जाता ॥ २ ॥ क्या उन पथिकोंको हम फिर भी देख सकेंगी'—ऐसा कहते ही उनके शरीर पुलकित हो जाते हैं और नेत्रोंसे जलकी धाराएँ बहने लगती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुका स्मरण कर ग्रामीण स्त्रियाँ शिथिल हो गयी हैं और बिना परिश्रम ही प्रेममें सच्ची सिद्ध हो गयी हैं ॥ ३ ॥

[३९]

आली री ! पथिक जे एहि पथ परौं सिधाए ।
ते तौ राम-लषन अवधतें आए ॥ १ ॥
संग सिय सब अंग सहज सोहाए ।
रति-काम-ऋतुपति कोटिक लजाए ॥ २ ॥
राजा दसरथ, रानी कौसिला जाए ।
कैकेयी कुचाल करि कानन पठाए ॥ ३ ॥
बचन कुभामिनीके भूपहि क्यों भाए ?
हाय ! हाय ! राय बाम बिधि भरमाए ॥ ४ ॥

कुलगुर सचिव काहू न समुझाए।
काँच-मनि लै अमोल मानिक गवाँए ॥ ५ ॥
भाग मग-लोगनिके, देखन जे पाए।
तुलसी सहित जिन गुन-गान गाए ॥ ६ ॥

अरी आली ! परसों जो पथिक इस मार्गसे गये थे उनका नाम राम-लक्ष्मण था और वे अयोध्यापुरीसे आये थे ॥ १ ॥ उनके साथ सीताजी थीं। वे स्वभावसे ही सब अङ्गोंसे शोभायमान थे। उन्हें देखकर करोड़ों रति, कामदेव और ऋतुराज (वसन्त) लज्जित होते थे ॥ २ ॥ उन्हें राजा दशरथ और रानी कौसल्याने जन्म दिया है। कैकेयीने कुचाल करके उन्हें वनमें भेज दिया ॥ ३ ॥ भला उस दुष्टा स्त्रीके वचन राजाको क्यों अच्छे लगे ? हाय ! हाय !! राजाको वाम विधाताने भ्रममें डाल दिया ! ॥ ४ ॥ उन्हें कुलगुरु या मन्त्रियोंमेंसे भी किसीने नहीं समझाया; उन्होंने काँचका मनका लेकर अमूल्य मणिको खो दिया ! ॥ ५ ॥ मार्गके लोगोंके बड़े ही भाग्य हैं जिन्होंने उन्हें देखा और तुलसीदासके सहित वे भी बड़े भाग्यवान् हैं जिन्होंने इनके गुण गाये हैं ॥ ६ ॥

[४०]

सखि ! जबतें सीतासमेत देखे दोउ भाई।
तबतें परै न कल, कछु न सोहाई ॥ १ ॥
नखसिख नीके, नीके निरखि निकाई।
तन-सुधि गई, मन अनत न जाई ॥ २ ॥

हेरनि-हँसनि हिय लिये हैं चोराई।
पावन-प्रेम-बिबस भई हौं पराई॥ ३॥
कैसे पितु-मातु, प्रिय परिजन-भाई।
जीवत जीवके जीवन बनहि पठाई॥ ४॥
समउ सो चित करि हित अधिकाई।
प्रीति ग्रामबधुनकी तुलसिहु गाई॥ ५॥

अरी सखि! जबसे सीताजीके सहित दोनों भाइयोंको देखा है तबसे हमें चैन नहीं पड़ता और न कुछ सुहाता ही है॥ १॥ वे नखसे शिखातक सुन्दर थे, उनकी सुन्दरताको अच्छी तरह देखकर शरीरकी सुधि जाती रही है और अब मन किसी दूसरी जगह नहीं जाता॥ २॥ उनकी चितवन और हँसीने मेरे चित्तको चुरा लिया है, उनके पवित्र प्रेमवश मैं बिरानी (दूसरेकी) हो रही हूँ [अब अपनेपर मेरा अधिकार नहीं है]॥ ३॥ वे माता, पिता, प्रिय परिजन और भाई न जाने कैसे हैं जिन्होंने स्वयं जीवित रहते इन जीवोंके जीवन रघुनाथजीको वनमें भेज दिया है॥ ४॥ उस समयको चित्तमें लानेसे प्रेम बढ़ता है। अतः तुलसीदासने भी ग्रामवधुओंकी उस प्रीतिको गाया है॥ ५॥

राग केदारा

[४१]

जबतें सिधारे यहि मारग लखन-राम,
जानकी सहित, तबतें न सुधि लही है।
अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिंध्यगिरि,
कैधौं कहुँ रहे, सो कछु, न काहू कही है॥ १॥

एक कहै, चित्रकूट निकट नदीके तीर,
परनकुटीर करि बसे, बात सही है।
सुनियत, भरत मनाइबेको आवत हैं,
होइगी पै सोई, जो बिधाता चित्त चही है॥ २॥
सत्यसंध, धरम-धुरीन रघुनाथजूको,
आपनी निबाहिबे, नृपकी निरबही है।
दस-चारि बरिस बिहार बन पदचार,
करिबे पुनीत सैल, सर-सरि, मही है॥ ३॥
मुनि-सुर-सुजन-समाजके सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।
पुर पाँव धारिहैं, उधारिहैं, तुलसी हू से जन,
जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है॥ ४॥

जबसे राम और लक्ष्मण जानकीजीके सहित उस मार्गसे गये हैं तबसे उनकी कोई भी सुधि नहीं मिली। वे अयोध्यापुरीको लौट गये या विन्ध्याचल पर्वतपर चढ़े अथवा और कहीं रहे—यह किसीने कुछ भी नहीं कहा॥ १॥ कोई कहते हैं कि वे चित्रकूटके समीप मन्दाकिनी नदीके तटपर पर्णकुटी बनाकर रहने लगे हैं—यह बात बिलकुल ठीक है। सुना जाता है कि भरतजी उन्हें मनानेके लिये आ रहे हैं; परन्तु बात तो वही होगी जिसे विधाताने चित्तमें करना चाहा होगा॥ २॥ महाराज दशरथकी बात तो निभ गयी, अब तो धर्म-धुरन्धर सत्यसन्ध रघुनाथजीको अपनी प्रतिज्ञा निभानी होगी। अतः वे चौदह वर्षतक वनोंमें पैदल फिरकर विहार करते हुए पर्वत,

सरोवर, नदी और भूमिको पवित्र करेंगे ॥ ३ ॥ जहाँ-जहाँ जिन-जिनकी अवस्था बिगड़ी हुई है उन ऋषि-मुनि, देवता और साधुजनोंके सारे कार्य सुधारकर वे अपनी राजधानीमें पधारेंगे और तुलसीदास-जैसे सेवकोंका भी उद्धार करेंगे, जिन्होंने जान-बूझकर दीनताको दृढ़तासे पकड़ रखा है ॥ ४ ॥

राग सारंग

[४२]

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम-गौर, धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥१॥
इन्हहि बहुत आदरत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता-बंधु समेत बसे बन, पितु हित कठिन कलेस सहे, री ॥२॥
बचन परसपर कहति किरातिनि, पुलक गात, जल नयन बहे, री।
तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिनु पलक लहे, री।३।

'अरी सखि! ये परदेशी कोई मृगयाशील राजकुमार हैं। ये धनुष-बाण और तरकसधारी श्याम-गौर बालक इस समय चित्रकूट पर्वतपर आकर रहने लगे हैं ॥ १ ॥ मेरे पतिदेवने यह समाचार सुनाया है कि बड़े-बड़े मुनीश्वर लोग इनका बहुत सम्मान करते हैं। इस समय ये स्त्री और भाईके सहित वनमें आ बसे हैं, इन्होंने अपने पिताके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं' ॥ २ ॥ इस प्रकार किरातिनियाँ आपसमें बातचीत कर रही हैं, उनके अंग पुलकित हो रहे हैं और नेत्रोंसे जलकी धाराएँ बह रही हैं। तुलसीदास कहते हैं, प्रभुको देखकर उनके नेत्र तो मानो बिना पलकके ही हो गये हैं ॥ ३ ॥

चित्रकूट-वर्णन

राग चंचरी

[४३]

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन, महि पवित्र,
पावनि पय-सरित सकल मल-निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक-लोचनाभिराम,
बाम अंग बामाबर बिस्व-बंदिनी ॥ १ ॥
रिषिबर तहँ छंद बास, गावत कल कोकिल हास,
कीर्तन उनमाय काय क्रोध-कंदिनी।
बर बिधान करत गान, वारत धन-मान-प्रान
झरना झरत झिंग झिंग झिंग जलतरंगिनी ॥ २ ॥
बर बिहारु चरन चारु पाँडर चंपक चनार
करनहार बार पार पुर-पुरंगिनी।
जोबन नव ढारत ढार दुत्त मत्त मृग मराल
मंजु मंजु गुंजत हैं अलि अलिंगिनी ॥ ३ ॥
चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी ॥ ४ ॥

चित्रकूट पर्वत बड़ा ही विचित्र है; वहाँका वन बड़ा ही सुन्दर और पृथिवी अतिशय पवित्र है। वहाँ सम्पूर्ण मलोंको नष्ट करनेवाली

परमपावनी पयस्विनी * नदी है। वहीं सकल लोकोंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले भगवान् राम अपने अनुज लक्ष्मणके सहित रहते हैं तथा उनके वामभागमें विश्ववन्दिता रमणीरत्न जानकीजी विराजती हैं ॥१॥ अनेक ऋषिश्रेष्ठ वहाँ स्वच्छन्द निवास करते हैं और शरीरको क्रोधरहित कर कोकिल-स्वरसे प्रभुके हास और कीर्तनका गान करते हैं। वे ऋषिगण बड़ी विधिपूर्वक वेदोंका गान करते हैं और प्रभुपर धन, मान एवं प्राणोंको निछावर करते हैं तथा नदियाँ झिग्-झिग् स्वर करती हुई जलके झरने झरती हैं ॥ २ ॥ उस ग्रामकी स्त्रियाँ पाउर, चम्पक और कचनार आदि वृक्षोंमें उत्तम विहार करनेवाले श्रीरघुनाथजीपर अपने नवयौवनको निछावर करती हैं। [उनकी मनोहर ध्वनि सुनकर] मतवाले हुए मृग तथा हंसोंके जोड़े और भौंरा-भौंरी मन्द-मन्द गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए मुनिजनरूप चकोरपक्षी सर्वदा आकाशरूप वनमें उदित हुए श्रीराम और सीतारूप अक्षय एवं अकलंक चन्द्र तथा चन्द्रिकाको निहार रहे हैं। तुलसीदासजी भी प्रसन्नचित्तसे कहते हैं, रघुनन्दन भगवान् राम और जनकदुलारी सीताजीकी जय हो, जय हो ॥ ४ ॥

[४४]

फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु-तमाल,
ललित लता-जाल हरति छबि बितानकी।
मंदाकिनि-तटिनि-तीर, मंजुल मृग-बिहग-भीर,
धीर मुनिगिरा गभीर सामगानकी ॥ १ ॥

* मन्दाकिनीका ही दूसरा नाम 'पयस्विनी' है।

मधुकर-पिक-बरहि मुखर, सुंदर गिरि निरझर झर,
जल-कन घन-छाँह, छन प्रभा न भानकी।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचबानकी॥ २॥
बिरचित तहँ परनसाल, अति बिचित्र लषनलाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन,
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पानकी॥ ३॥
सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,
तिलक-करनिका कहौं कलानिधानकी।
माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी॥ ४॥

[प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये] विशाल फटिकशिला बड़ी कोमल हो गयी है; वहाँ उगे हुए कल्पवृक्ष, तमालतरु तथा मनोहर लतासमूह बड़े-बड़े चँदोवोंकी छबि छीन रहे हैं। मन्दाकिनी नदीके तीरपर मनोहर मृग और पक्षियोंकी भीड़ लगी रहती है तथा मनस्वी मुनियोंके साम-गानका गम्भीर शब्द होता रहता है॥ १॥ भौंरे, कोकिल और मयूरगण कोलाहल करते रहते हैं, सुन्दर पर्वतोंसे झरने झरते हैं, जलकणमिश्रित मेघोंकी छाया बनी रहती है जिससे एक क्षणके लिये भी सूर्यका प्रकाश नहीं होता। सभी ऋतुओंमें ऋतुराज वसन्तका प्रभाव बना रहता है और निरन्तर त्रिविध समीर बहता रहता है। ऐसा जान पड़ता है, मानो यह वन महाराज कामदेवकी विहार-वाटिका ही हो॥२॥

वहाँ लखनलालने एक बड़ी ही विचित्र पर्णशाला बनायी है जहाँ सदा ही कृपामय राम एवं जानकीजी निवास करती हैं । कमलनयन भगवान् रामने अपने ही हाथोंसे नवीन और कोमल पत्तोंकी शय्या रची है, क्योंकि प्रिया-प्रीतमको परस्पर प्रेमरस-पानकी प्यास है ॥ ३ ॥ भगवान् राम सीताजीके अंग-प्रत्यंगोंपर सिंगरफ, हरताल आदि धातुओं-से पत्ररचना करते हैं और फूलोंके आभूषण बनाते हैं । मैं कलाकुशल श्रीरामकी तिलकरचनाका क्या वर्णन करूँ ? तुलसीदासके हृदयमें वह परम प्राणप्रिय जोड़ी सर्वदा निवास करती है और वह उसकी माधुरी तथा उसके हास, विलास एवं सुयशका गान करता है ॥ ४ ॥

राग केदारा

[४५]

लोने लाल लषन, सलोने राम, लोनी सिय,
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं ।
गोरे-साँवरे सरीर पीत नील नीरज-से
प्रेम-रूप-सुखमाके मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख-सिख, निरुपम, निरखन जोग,
बड़े उर-कंधर, बिसाल भुज बर हैं ।
लोने लोने लोचन, जटनिके मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने लोने धनुष, बिसिष कर-कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सरघर हैं ।

प्रिया प्रिय बंधुको दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु कुंज, सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिनके आश्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं,
लागी मधु, सरित झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप-पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत
भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल
जाको सिसकत सुर बिधि-हरि-हर हैं ॥ ५ ॥

श्रीलखनलाल और भगवान् राम बड़े ही सुन्दर हैं तथा सीताजी भी बड़ी ही सुघड़ हैं। ये सब महामनोहर चित्रकूटपर्वतपर कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए हैं। पीले और नीले कमलके समान इनके गोरे और साँवले शरीर हैं, जो इस [चित्रकूटरूप] काम-सरोवरके मानो प्रेम, रूप और शोभामय कमल ही हैं ॥ १ ॥ ये नखसे सिखतक सुन्दर, अनुपम और दर्शनीय हैं। इनके वक्षःस्थल और कन्धे विशाल हैं तथा भुजाएँ अति सुन्दर हैं एवं इनके नेत्र तथा जटाओंके मुकुट भी बड़े ही मनोहर हैं। अपने मनोहर मुखमण्डलसे इन्होंने करोड़ों चन्द्रमाओंको जीत लिया है ॥ २ ॥ इनके करकमलोंमें सुन्दर-सुन्दर धनुष-बाण तथा कटिप्रदेशमें मनोहर मुनिवस्त्र और सुन्दर तरकस हैं। भगवान् राम अपनी प्राणप्रिया सीता तथा प्रिय सहोदर लक्ष्मणको वृक्ष, लता, मनोहर कुञ्जें, शिलातल तथा पत्र, पुष्प और फल दिखलाते हैं ॥ ३ ॥

वे ऋषियोंके आश्रमोंकी सराहना करते हैं, मृगोंके नाम बतलाते हैं, सब ओर मधु भरा हुआ है, नदी और झरने झर रहे हैं, मयूर सुहावना नृत्य करते हैं, भौंरे और कोयल गाना गा रहे हैं तथा पक्षी और आकाश, जल एवं स्थलमें विहार करनेवाले प्राणी सुन्दर बोली बोल रहे हैं ॥ ४ ॥ प्रभुको देखकर मुनीश्वरगण शरीरमें पुलकित होकर कहते हैं, 'देखो ये सब अधम स्त्री-पुरुष आज कैसे बड़भागी हो रहे हैं।' तुलसीदास कहते हैं, जिसके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महादेव-जैसे देवता भी सिसकते रहते हैं उस सुख और लाभको आज किरात और कोल आदि लूट रहे हैं ! ॥ ५ ॥

राग सारंग

[४६]

आइ रहे जबतें दोउ भाई ।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई ॥ १ ॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई ।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप, त्रयताप नसाई ॥ २ ॥
उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई ।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥ ३ ॥
सरित-सरनि सरसीरुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई ।
कूजत बिहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥ ४ ॥
त्रिबिध समीर, नीर झर झरननि, जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई ।
सीतल सुभग सिलनिपर तापस करत जोग-जप-तप मन लाई ॥ ५ ॥

भए सब साधु किरात-किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई ।
खग-मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई ॥ ६ ॥
कामकेलि-बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई ।
सकल-भुवन-सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई ॥ ७ ॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई ।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई ॥८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, संपति-महिमा-मोद-मनोहरताई ।
तुलसी जहँ बसि लषन रामसिय आनँद-अवधि अवध बिसराई ॥ ९ ॥

जबसे दोनों भाई आकर रहे हैं तबसे चित्रकूटके वनकी शोभा दिनोंदिन अधिक-अधिक हो रही है ॥ १ ॥ सीता, राम और लक्ष्मणजीके चरणचिह्नोंसे अंकित उस सुहावनी भूमिका वर्णन नहीं होता । मन्दाकिनीका स्नान अथवा दर्शन करनेसे ही तीनों प्रकारके पाप और ताप नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, जो सूख चुके थे, वे भी फिर हरे हो गये हैं तथा कमल भी नित्य नवीन-नवीन शोभा धारण कर रहे हैं । सब प्रकारके अभिमत और सुखदायी वृक्ष तथा लता आदि पुष्पित, फलित, पल्लवित और हरे-भरे हो रहे हैं ॥ ३ ॥ नदी और तालाबोंमें कमल खिले हुए हैं, मानो लक्ष्मीजी अपने घरोंको सँभालकर निवास करने लगी हों । पक्षिगण कूज रहे हैं तथा भ्रमरोंका मनोहर गुञ्जार हो रहा है, मानो वे जानेवाले पथिकोंको अपने पास बुला रहे हैं ॥ ४ ॥ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रहा है, झरनोंमें जल झर रहा है, ऋषिगण जहाँ-तहाँ कुटी बनाकर बसे हुए हैं तथा तपस्वी लोग दत्तचित्त होकर शीतल और सुन्दर

शिलाओंपर जप, तप एवं योगसाधन कर रहे हैं ॥ ५ ॥ सारे किरात और किरातिनियाँ साधु हो गये हैं। भगवान् रामका दर्शन पाकर उनकी कलुषता जाती रही है। पक्षी और मृगगण अपना स्वाभाविक वैर भूलकर प्रसन्नतापूर्वक एक साथ विहार कर रहे हैं ॥ ६ ॥ उस वनको कामदेवके क्रीडोद्यान और नन्दनवनकी लघु उपमा देनेमें भी कविको लज्जा होती है; मानो विधाताने सारे भुवनोंकी शोभाको एकत्रितकर भगवान् रामके वनमें ही लाकर बसा दिया है ॥ ७ ॥ उस वनके मिषसे ही मुनिजन, मुनिपत्नियाँ और मुनिबालक रघुनाथजीके विमल सुयशका वर्णन करते हैं और अपने जीवनका फल पाकर पुलकित एवं शिथिलशरीर, सजलनयन और प्रसन्नचित्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, जहाँ आनन्दके सीमास्वरूप भगवान् राम, लक्ष्मण और सीताजी अयोध्याको त्यागकर निवास करते हैं उस चित्रकूटपर्वतकी सम्पत्ति, महिमा, प्रसन्नता एवं मनोहरताका मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? ॥ २ ॥

राग गौरी

[४७]

देखत चित्रकूट-बन मन अति होत हुलास ।
सीता-राम-लषन-प्रिय, तापस-बृंद-निवास ॥ १ ॥
सरित सोहावनि पावनि, पापहरनि पय नाम ।
सिद्धि-साधु-सुर-सेवित देति सकल मन-काम ॥ २ ॥
बिटप-बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति ।
कंदमूल, जल-थलरुह अगनित अनबन भाँति ॥ ३ ॥

बंजुल, मंजु बकुल, कुल-सुरतरु, ताल, तमाल ।
कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल, पनस, रसाल ॥ ४ ॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि-अनुराग-सभाग ।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध-बन-बाग ॥ ५ ॥
जाइ न बरनि राम-बन, चितवत चित हरि लेत ।
ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहु मनोज-निकेत ॥ ६ ॥
सरित-सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग ।
गुंजत मंजु मधुपगन, कूजत बिबिध बिहंग ॥ ७ ॥
लषन कहेउ, रघुनंदन, देखिय बिपिन-समाज ।
मानहु चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥ ८ ॥
चित्रकूटपर राउर जानि अधिक अनुरागु ।
सखासहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु ॥ ९ ॥
झिल्लि झाँझ, झरना डफ नव मृदंग निसान ।
भेरि उपंग भृंग रव, ताल कीर-कलगान ॥१०॥
हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर ।
गावत मनहु नारिनर मुदित नगर चहु ओर ॥११॥
चित्र-बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग ।
जनु पुरबीथिन बिहरत छैल सँवारे स्वाँग ॥१२॥
नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बँधान ।
निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय समान ॥१३॥
भरि भरि सुंड करिनि-करि जहँ तहँ डारहिं बारि ।
भरत परसपर पिचकनि मनहु मुदित नर-नारि ॥१४॥

पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहि डार।
जनु मुँह लाइ गेरु-मसि भए खरनि असवार ॥१५॥
लिये पराग सुमनरस डोलत मलय-समीर।
मनहु अरगजा छिरकत, भरत गुलाल-अबीर ॥१६॥
काम कौतुकी यहि बिधि प्रभुहित कौतुक कीन्ह।
रीझि राम रतिनाथहि जग-बिजयी बर दीन्ह ॥१७॥
दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ।
'भलेहि नाथ,' माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ ॥१८॥
मुदित किरात-किरातिनि रघुबर-रूप निहारि।
प्रभुगुन गावत नाचत चले जोहारि जोहारि ॥१९॥
देहिं असीस, प्रसंसहिं मुनि, सुर बरषहिं फूल।
गवने भवन राखि उर मूरति मंगलमूल ॥२०॥
चित्रकूट-कानन-छवि को कबि बरनै पार।
जहँ सिय-लषनसहित नित रघुबर करहिं बिहार ॥२१॥
तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम-गुनग्राम।
गावहिं, सुनहिं नारि-नर, पावहिं सब अभिराम ॥२२॥

जो सीता, राम और लक्ष्मणको अत्यन्त प्रिय तथा तपस्वियोंका निवासस्थान है उस चित्रकूट-वनको देखकर मनमें बड़ा ही आनन्द होता है ॥ १ ॥ वहाँ बड़ी ही सुहावनी, पवित्रकारिणी एवं पापनाशिनी 'पयस्विनी' नामकी नदी है, जो सिद्ध, साधु और देवताओंसे सेवित है और सम्पूर्ण मनोकामनाओंको पूर्ण कर देती है ॥ २ ॥ सघन और सुन्दर जातिके वृक्ष तथा लताएँ नवीन पल्लव और पुष्पोंसे आच्छादित हैं तथा

अगणित और अनेक प्रकारके कन्द-मूल एवं जल-थलके वृक्ष लगे हुए हैं ॥ ३ ॥ मनोहर बेत, वकुलसमुदाय (मौलसिरी), कल्पवृक्ष, ताल, तमाल, कदली, कदम्ब, चम्पक, पाटल, कटहल और आम्रके वृक्ष मानो छवि, अनुराग और सौभाग्यसे अत्यन्त भरे हुए हैं। उस वनको देखकर देवताओंके बहुत-से वन और बगीचे भी तुच्छ जान पड़ते हैं ॥ ४-५ ॥ भगवान् रामके वनका वर्णन नहीं हो सकता; वह देखते ही चित्तको चुरा लेता है [और ऐसा जान पड़ता है] मानो मनोहर लता और वृक्षोंसे पूर्ण कामदेवका निवासस्थान ही हो ॥ ६ ॥ वहाँके नदी और तालाबोंमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं, जिनपर मनोहर भ्रमरगण गुञ्जार कर रहे हैं तथा तरह-तरहके पक्षी कूज रहे हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी कहते हैं—'हे रघुनाथजी! इस वनका ठाट-बाट तो देखिये, ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवके नगरमें उसका प्रिय सुहृद् ऋतुराज (वसन्त) आनन्द मनाने आया हो ॥ ८ ॥ अथवा चित्रकूटपर आपका अधिक प्रेम देखकर मानो अपने सखाके सहित कामदेव फाग खेलने आया हो ॥ ९ ॥ वहाँ जो झींगरका शब्द होता है वही झाँझ है, झरना डफ, नवीन मृदङ्ग और निशानके समान है, भौंरोंका शब्द भेरी और उपङ्ग (नसतरङ्ग) है तथा तोतोंका कलरव ताल है ॥ १० ॥ इस वनमें जो हंस, कपोत, कबूतर, चकवा और चकोर आदि पक्षी बोलते हैं वे ही इस कामनगरमें मानो चारों ओर नर-नारिवृन्द प्रसन्न होकर गा रहे हैं ॥ ११ ॥ पहाड़ और सघन वनखण्डकी ऊँची-नीची भूमिमें जो चित्र-विचित्र अनेकों मृग डोल रहे हैं वह उस नगरकी गलियोंमें मानो अनेकों छैल ही स्वाँग बनाकर विचर रहे हैं ॥ १२ ॥ मयूर नृत्य करते हैं तथा कोकिल पक्षी सुन्दर स्वरमें राग बाँधकर गान कर रहे

हैं, सो ऐसा जान पड़ता है मानो निर्लज्ज युवक और युवतियाँ समयानुसार खेल रहे हों ॥ १३ ॥ हाथी और हथिनियाँ सूँडोंमें जल भरकर जहाँ-तहाँ उडेल देते हैं, मानो स्त्री और पुरुष प्रसन्न होकर आपसमें पिचकारियाँ भर रहे हों ॥ १४ ॥ [काले और लाल मुखके] बन्दर अपने बच्चोंको पीठपर चढ़ाकर एक डालसे दूसरी डालपर कूदते हैं, सो ऐसा जान पड़ता है मानो [स्वाँग रचनेवाले लोग] मुखोंपर गेरू या स्याही लगाकर गधोंपर सवार हो गये हों ॥ १५ ॥ मलयवायु पराग तथा पुष्पोंके रससे भरकर विचर रहा है, मानो वह जहाँ-तहाँ अरगजा छिड़कता हो अथवा मुखोंपर गुलाल या अबीर मल रहा हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार प्रभुके लिये कौतुकी कामदेव मानो खेल कर रहा है और इसीलिये रघुनाथजीने प्रसन्न होकर उसे विश्वविजयी होनेका वर दिया है ॥ १७ ॥ [और कहा है कि] 'देखो, मेरे दासको दुःख न देना, सर्वदा मेरी इस आज्ञाका पालन करना।' तब कामदेव भी 'प्रभो ! बहुत अच्छा' ऐसा कह भगवान्की आज्ञा सिरपर धारणकर वहाँसे चला गया ॥ १८ ॥ रघुनाथजीका रूप देखकर किरात और किराती भी खूब प्रसन्न हैं और प्रभुका गुण गाते-नाचते जुहार कर-करके चले जाते हैं ॥ १९ ॥ मुनिलोग भगवान्को आशीर्वाद देते और उनकी प्रशंसा करते हैं तथा देवतालोग फूलोंकी वर्षा करते हैं, और फिर हृदयमें भगवान्की मङ्गलमयी मूर्ति धारणकर अपने घरोंको चले जाते हैं ॥ २० ॥ जहाँ सीता और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् राम सदा ही विहार करते हैं उस चित्रकूटपर्वतके वनकी शोभाका वर्णन कर कौन कवि उसका पार पा सकता है ? ॥ २१ ॥ तुलसीदास कहते हैं, हमने तो चाँचर (होलीके गान) के मिससे ही

कुछ रामके गुण गाये हैं। जो स्त्री-पुरुष इनका गान या श्रवण करेंगे व सब प्रकार शुभ फल प्राप्त करेंगे ॥ २२ ॥

राग वसन्त

[४८]

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मानो खेलत फागु मुद मदन बीर१
बट, बकुल, कदंब, पनस, रसाल। कुसुमित तरु-निकर कुरव-तमाल ॥
मानो बिबिध बेष धरे छैल-जूथ। बिच बीच लता ललना-बरूथ ॥२॥
पनवानक निरझर, अलि उपंग। बोलत पावत मानो डफ-मृदंग ॥
गायक सुक-कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु भाँति बरहि-मराल ॥३॥
मलयानिल सीतल, सुरभि, मंद। बह सहित सुमन-रस रेनुबृंद ॥
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार लीला अनंग ॥४॥
क्रीडत जीते सुर-असुर-नाग। हठि सिद्ध-मुनिनके पंथ लाग ॥
कह तुलसिदास, तेहि छाडु मैन। जेहि राख राम राजीवनैन ॥५॥

'हे धैर्यवान् भगवान् राम! देखिये, आज यह वन ऐसा बना हुआ है मानो वीरवर कामदेव आनन्दित होकर फाग खेलता हो ॥ १ ॥ वट, बकुल (मौलसिरी), कदम्ब, कटहर, आम, कुरव और तमाल आदि वृक्ष फूले हुए हैं, मानो तरह-तरहके वेष धारण किये अनेकों छैल हों और उनके बीच-बीचमें लतारूप स्त्रीसमुदाय शोभायमान हों ॥ २ ॥ झरने ऐसे जान पड़ते हैं मानो नगारे और ढोल हों, भ्रमर उपङ्ग (मुरचङ्ग) के समान प्रतीत होते हैं तथा कबूतर जो बोलते हैं सो मानो डफ और मृदङ्ग हैं। शुक और कोकिल गान

करनेवाले हैं, झिल्लीकी झनकार मानो उनकी ताल है तथा मयूर और हंस अनेकों प्रकारसे नृत्य कर रहे हैं ॥ ३ ॥ शीतल-मन्द-सुगन्ध मलयमारुत फूलोंका रस और पराग लेकर बह रहा है, सो ऐसा जान पड़ता है मानो उदार लीलाविहारी कामदेव सबपर सुन्दर रंग छिड़कता हुआ विराजमान हो ॥ ४ ॥ इसने खेलमें ही देवता, असुर और नाग आदिको जीत लिया है तथा हठपूर्वक सिद्ध मुनीश्वरोंके मार्गमें रोड़े अटकाये हैं। तुलसीदास कहते हैं—यह कामदेव तो उसीको छोड़ता है जिसकी कमलनयन भगवान् राम रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

[४९]

ऋतु पति आए भलो बन्यो बनसमाज।मानो भए हैं मदन महाराज आज१
मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति। होरी मिस अरिपुर जारि जीति ॥
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि। नयनगर बसाए बिपिन झारि ॥२॥
सिंहासन सैल-सिला सुरंग। कानन-छबि रति, परिजन कुरंग ॥
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान। चामर समीर, निरझर निसान ॥३॥
मनो मधु-माधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर ॥
मधुकर-सुक-कोकिल बंदि-बृंद। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद ॥४॥
महि परत सुमन-रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर-बिभाग ॥
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार। कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार।५।
बिरहिनपर नित नइ परै मारि। डाँड़ियत सिद्ध-साधक प्रचारि ॥
तिनकी न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसहिं रघुबीर-बाँह ॥६॥

ऋतुराजके आनेपर वनकी शोभा बड़ी भली बन गयी है, मानो आज कामदेवको महाराज पद प्राप्त हुआ हो ॥ १ ॥ अतः उन्होंने

फागके मिससे मर्यादा छोड़कर [वनरूप] शत्रुके नगरपर विजय प्राप्तकर उसे होलीके बहाने जला (सुखा) डाला हो और फिर वायुरूपसे पत्ररूप प्रजाको लूटकर समग्र वनमें [नवीन कोंपले उत्पन्न-कर] कोई नया नगर बसाया हो ॥ २ ॥ उन मदन महाराजका राजसिंहासन पर्वतकी सुन्दर शिला है, वनकी शोभा रति है, मृगगण कुटुम्बी हैं, पुष्प श्वेतच्छत्र हैं, लताएँ वितान हैं, वायु चमर है और झरने नौबत हैं ॥ ३ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो चैत्र और वैशाख ये दोनों धीर-वीर राजे हैं, अनेकों सुन्दर वृक्ष उनके दरबारी वीर हैं तथा भौंरे, शुक और कोकिल पक्षी वन्दीजन हैं जो अनेकों छन्दोंमें उनका विशुद्ध यश बखान करते हैं ॥ ४ ॥ पृथिवीपर जो फूलोंका रस, पराग अथवा फल गिरते हैं सो मानो अन्य सामन्तगण उन्हें कर देते हैं। इस प्रकार नीतिनिपुण कामदेवने अपने मन्त्री कलियुगके सहित मानो साम, दान, दण्ड, भेद चारों प्रकारसे सारे विश्वको अपने अधीन कर लिया है ॥ ५ ॥ इसके राज्यमें विरही पुरुषोंपर नित्य नयी मार पड़ती है तथा सिद्ध और साधकोंको बुला-बुलाकर धमकाया जाता है। तुलसीदास कहते हैं, किन्तु जो श्रीरघुनाथकी बाँहके नीचे बसे हुए हैं, उनकी तो छायाको भी यह कामदेव नहीं छू सकता ॥ ६ ॥

राग मलार

[५०]

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रबेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥ १ ॥
चहुँदिसि बन संपन्न, बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥ २ ॥

सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहु आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥ ३ ॥
सिखर परस घन-घटहि, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥ ४ ॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ॥ ५ ॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौ राम-भगतिके पाछे ॥ ६ ॥

चित्रकूट पर्वत सभी दिन बड़ा सुहावना लगता है। वर्षाऋतुका प्रवेश होनेपर तो इसे देखनेके लिये मन बहुत ही छटपटाता है ॥ १ ॥ इसके चारों ओर फल-फूल आदिसे सम्पन्न वन है; वहाँ बोलते हुए पक्षी और मृगगण ऐसी शोभा पाते हैं मानो किसी अच्छे राजाके देश और नगरमें प्रजा आनन्दपूर्वक सब प्रकारके सुख भोग रही हो ॥ २ ॥ गेरू आदि धातुओंसे रँगे हुए गिरिशिखरोंपर मधुर-मधुर घोर करते हुए मेघ ऐसे शोभायमान होते हैं मानो देवता और मुनिजनरूप भ्रमरोंसे गुञ्जायमान आदिकमल [जिससे ब्रह्माजी प्रकट हुए थे] विराजमान हो ॥ ३ ॥ जब बगुलोंकी पंक्ति शिखरको स्पर्श करके श्याम घटाओंसे मिलती है तो उसकी छवि कवियोंने इस प्रकार वर्णन की है मानो आदिवराह समुद्रमें क्रीडा कर, दाँतोंपर पृथिवी धारणकर उससे बाहर निकले हैं [यहाँ पर्वत आदिवराह है, बगुलोंकी पंक्ति दाँत हैं और घटाएँ पृथिवी हैं] ॥ ४ ॥ जलसे भरी हुई निर्मल शिलाओंमें आकाश और वनका प्रतिबिम्ब ऐसा झलकता है जैसे विराट् भगवान्‌के

अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें संसारकी विचित्र रचना प्रतिफलित हो रही हो ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं, स्वच्छ जलसे भरे हुए झरने झर-झरकर मन्दाकिनी नदीमें मिल जाते हैं, जैसे सारे सुकृत और सुख एकमात्र रामभक्तिके ही पीछे लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

कौसल्याकी विरह-वेदना

राग सोरठ

[५१]

आजुको भोर, और सो, माई ।
सुनौं न द्वार बेद-बंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई ॥ १ ॥
निज निज सुंदर पति-सदननितें रूप-सील-छबि-छाईं ।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आईं ॥ २ ॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री सुमित्रा माता ?' ।
तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ॥ ३ ॥

[रामविरहसे व्याकुल होकर माता कौसल्या कह रही हैं—] 'अरी माई ! आजका भोर तो मुझे और ही तरहका जान पड़ता है । आज द्वारपर न तो वेद और वन्दीजनकी ही ध्वनि सुनायी देती है और न गुणियोंकी मनोहर वाणीका ही शब्द है ॥ १ ॥ अपने-अपने पतियोंके सुन्दर महलोंसे रूप, शील और छविसे सम्पन्न मेरी पुत्रवधुएँ भी सीताको आगेकर आज मेरे पास आशीर्वाद लेनेके लिये नहीं आयीं ॥ २ ॥ आज मैं भी अपने रघुवीरसे हँसकर यह नहीं पूछ सकी कि 'सुमित्रा माता कहाँ है रे ?' अहो ! मेरे महासुखको मानो विधाता ही नहीं देख सका ॥ ३ ॥

[५२]

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार बार उर-नैननि लावति प्रभुजूकी ललित पनहियाँ ॥ १ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु बदनपर, अनुज-सखा सब द्वारे ॥ २ ॥
कबहुँ कहति यों, बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै, गई निछावरि मैया ॥ ३ ॥
कबहुँ समुझि बनगवन रामको रहि चकि चित्र लिखी-सी।
तुलसिदास वह समय कहेतें लागति प्रीति सिखी-सी ॥ ४ ॥

माता रघुनाथजीके खेल-कूदके धनुषको देखती हैं और प्रभुजीकी जो नन्ही-नन्ही सुन्दर जूतियाँ हैं उन्हें बारंबार हृदय और नेत्रोंसे लगाती हैं ॥ १ ॥ कभी पहलेकी भाँति सवेरे ही मन्दिरमें जाकर इस प्रकारके प्रिय वचन कहकर जगाने लगती हैं कि, 'हे तात! उठो, मुखचन्द्रपर माता बलिहारी जाती है, देखो, सारे अनुज और सखागण द्वारपर खड़े हैं' ॥ २ ॥ और कभी कहती हैं—'भैया! बहुत विलम्ब हो गया है, महाराजके पास जाओ और अपने साथियोंको बुलाकर जो रुचे सो भोजन करो, माता निछावर होती है' ॥ ३ ॥ तथा कभी रामका वनगमन स्मरणकर चकित होकर चित्रलिखित-सी रह जाती है। तुलसीदास कहते हैं, उस समयका वर्णन करनेसे तो प्रीति सीखी हुई-सी जान पड़ती है [क्योंकि सत्य प्रेम होनेपर तो उसका वर्णन ही नहीं हो सकेगा, चित्त विवश होकर विरहाग्निमें दग्ध हो जायगा] ॥ ४ ॥

[५३]

माई री ! मोहि कोउ न समुझावै ।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥ १ ॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम-लषन अरु सीता ।
तदपि न मिटत दाह या उरको, बिधि जो भयो बिपरीता ॥ २ ॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे ।
करत न प्रान पयान, सुनहु, सखि ! अरुझि परी यहि लेखे ॥ ३ ॥
कौसल्याके बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी ।
तुलसिदास रघुबीर-बिरहकी पीर न जाति बखानी ॥ ४ ॥

[माता कौसल्या कहती हैं—] 'अरी मैया ! मुझे कोई नहीं समझाता । मुझे अभीतक विश्वास नहीं होता कि रामका वनगमन सत्य है या कोई स्वप्न हुआ है ॥ १ ॥ राम, लक्ष्मण और सीता मेरे नेत्रोंके सामने सदा लगे ही रहते हैं, तो भी विधाता ऐसा विपरीत हो गया है कि इस हृदयका दाह दूर ही नहीं होता ॥ २ ॥ रघुनाथजीके देखनेपर तो दुःख नहीं रह सकता और बिना देखे शरीरका रहना असम्भव है । किन्तु मेरे प्राणोंने अभीतक कूच नहीं किया; अतः सखि ! सुनो, इस नियममें अवश्य कोई गड़बड़ हुई है' ॥ ३ ॥ कौसल्याजीके यह विरह-वाक्य सुनकर सब रानियाँ रो पड़ीं । तुलसीदास कहते हैं, रघुनाथजीके विरहकी व्यथाका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

[५४]

जब जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब तब बिकल होति कौसल्या, दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥१॥

सुमिरत बाल-बिनोद रामके सुंदर मुनि-मन-हारी ।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर-बिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई !
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥ ३ ॥
जीवौं तौ बिपति सहौं निसिबासर, मरौं तौ मन पछितायो ।
चलत बिपिन भरि नयन रामको बदन न देखन पायो ॥ ४ ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो ।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो ? ॥ ५ ॥

माता कौसल्या जब-जब घरको सूना देखती हैं तब-तब ही व्याकुल हो जाती हैं। उन्हें दिन-दिन दूना दुःख हो रहा है ॥ १ ॥ वह भगवान् रामके मुनिमनहारी बालविनोदोंको याद करती हैं और उनके सुकुमार चरणकमलोंको राजमन्दिरके आँगनमें ही विचरनेवाले समझकर उनके हृदयमें बड़ी पीड़ा होती है ॥ २ ॥ [वे कहने लगती हैं—] अरी मैया ! अब प्रातःकाल होते ही कलेवा माँगकर [उसमें देरी होनेपर] कौन रूठकर भागेगा और श्यामकमलसदृश नेत्रोंसे जल बहते देखकर मैं किसे हृदयसे लगाऊँगी ? ॥ ३ ॥ अब मैं जीऊँगी तो रात-दिन दुःख सहना पड़ेगा और यदि मर गयी तो हृदयमें यह पश्चात्ताप रह जायगा कि 'वनको जाते समय मैं नेत्र भरकर रामका मुख भी न देख सकी' ॥४॥ यह दशा बड़ी ही दुःसह है, बड़ा ही कठोर विरह है, ऐसा कौन है जो अत्यन्त कृपाके बिना मेरी इस शोकजनित पीड़ाको दूर कर सके ॥ ५ ॥

[५५]

मेरो यह अभिलाषु बिधाता ।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवक-सुखदाता ॥ १ ॥
सीता-सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ ।
श्रवन-सुधा-सम बचन सखी कब आइ कहैगो कोऊ ? ॥ २ ॥
सुनि संदेस प्रेम-परिपूरन संभ्रम उठि धावोंगी ।
बदन बिलोकि रोकि लोचन-जल हरषि हिये लावोंगी ॥ ३ ॥
जनकसुता कब सासु कहैं मोहि, राम लषन कहैं मैया ।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे स्याम-गौर दोउ भैया ॥ ४ ॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति बाढ़ी ।
थकित भई उर आनि राम-छबि मनहु चित्र लिखि काढ़ी ॥ ५ ॥

'अरी सखि ! मेरी इस अभिलाषाको भक्तसुखदायक विधाता श्रीहरि अनुकूल होकर कब पूर्ण करेंगे ? ॥ १ ॥ हे सखि ! मेरे पास आकर कोई पुरुष कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले ये वचन कब कहेगा कि 'सीताके सहित तुम्हारे दोनों पुत्र कुशलपूर्वक अयोध्यापुरीको आ रहे हैं' ॥ २ ॥ इस सन्देशको सुनकर मैं प्रेममें भरकर एक साथ उठकर दौड़ूँगी और उनके मुख देखकर नेत्रोंके प्रेमाश्रुओंको रोककर उन्हें हर्षपूर्वक हृदयसे लगा लूँगी ॥ ३ ॥ जनकनन्दिनी सीता मुझसे कब 'सासुजी' कहकर बोलेगी और कब राम-लक्ष्मण मुझे 'मैया' कहकर पुकारेंगे ? और कब वे श्याम-गौरवर्ण दोनों भाई बाँह-से-बाँह मिलाकर मेरे आँगनमें डोलेंगे ?' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसे मनोरथ करते-करते कौसल्याजीका स्नेह अत्यन्त बढ़ गया और वे

हृदयमें रामचन्द्रजीकी छवि धारणकर थकित-सी रह गयीं, मानो चित्रमें लिखकर काढ़ दी गयी हों ॥ ५ ॥

महाराज दशरथका देहत्याग

[५६]

सुन्यौ जब फिरि सुमंत पुर आयो ।
कहिहै कहा प्रानपतिकी गति, नृपति बिकल उठि धायो ॥ १ ॥
पाँय परत मंत्री अति ब्याकुल, नृप उठाय उर लायो ।
दसरथ-दसा देखि न कह्यो कछु, हरि जो सँदेस पठायो ॥ २ ॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतमकी, हृदय यहै पछितायो ।
साँचेहु सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो ॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो ।
हा! रघुपति कहि पर्यौ अवनि, जनु जलतें मीन बिलगायो ॥ ४ ॥

महाराज दशरथने जब सुना कि सुमन्त अयोध्यामें लौट आया है तो इस उत्कण्ठासे कि 'देखें प्राणनाथ रामकी क्या दशा सुनाता है' वे व्याकुल होकर उठ दौड़े ॥ १ ॥ फिर मन्त्रीको अत्यन्त व्याकुल होकर अपने चरणोंमें गिरते देख राजाने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और मन्त्रीने भी महाराज दशरथकी वह दीन दशा देखकर, भगवान्‌ने जो सन्देश भेजा था उसके विषयमें कुछ भी न कहा ॥ २ ॥ महाराज भी अपने प्रियतम पुत्रकी कुशल नहीं पूछ सकते थे, क्योंकि उनके हृदयमें तो यही पछतावा था कि मुझे धिक्कार है जो विधाताने सचमुच ही पुत्रका वियोग सुननेके लिये मुझे जीवित रक्खा है ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, [महाराज दशरथ कहने लगे-] 'प्रभुने मुझे

निष्ठुर जानकर न्यायसे ही मेरा परित्याग किया है।' और फिर 'हा रघुनाथ!' ऐसा कहकर वे पृथिवीपर गिर पड़े, मानो कोई मछली जलसे पृथक् कर दी गयी हो ॥ ४ ॥

[५७]

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ ॥ १ ॥
तिलकको बोल्यो, दिये बन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्यो समुझि सील-सुभाउ ॥ २ ॥
सीय-रघुबर-लषन बिनु भय भभरि भगी न आउ ।
मोहि बूझि न परत, यातें कौन कठिन कुघाउ ॥ ३ ॥
सुनि सुमंत ! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ ॥ ४ ॥

महाराज दशरथ सोचते हैं—'मैंने स्त्रीके वशीभूत होकर सोच-समझकर काम नहीं किया; इससे प्राप्त हुआ मेरा मानसिक पश्चात्ताप मरनेपर भी दूर नहीं होगा ॥ १ ॥ देखो, मैंने रामको राजतिलकके लिये बुलाकर वनवास दे दिया, फिर भी उनके चित्तमें चौगुना उत्साह बना रहा। उनका ऐसा शील और स्वभाव जानकर भी मेरा हृदय दाड़िम (अनार) के समान फट नहीं गया ॥ २ ॥ यदि सीता, राम और लक्ष्मणके बिना भी मेरी आयु भयसे घबड़ाकर नहीं भगी तो मुझे यह नहीं जान पड़ता कि इससे बढ़कर और कौन-सा कठोर घाव होगा? ॥ ३ ॥ हे सुमन्त ! सुनो, या तो मेरे सुन्दर पुत्रोंको लाकर मुझे उनके साथ जीवित रक्खो, नहीं तो अब मुझे मृत्युरूप अमृतका ही पान करा दो' ॥४॥

[५८]

अवध बिलोकि हौं जीवत रामभद्र-बिहीन ।
कहा करिहैं आइ सानुज भरत धरमधुरीन ॥ १ ॥
राम-सोक-सनेह-संकुल, तनु बिकल, मनु लीन ।
टूटि तारो गगन-मग ज्यों होत छिन-छिन-छीन ॥ २ ॥
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम पावन मीन ।
करी तुलसीदास दसरथ प्रीति-परमिति पीन ॥ ३ ॥

'अब मैं जीवित रहकर अयोध्याको मंगलमूर्ति रामके बिना देखूँगा। धर्मधुरन्धर भरतजी भी भाई शत्रुघ्नसहित आकर अब क्या करेंगे?' ॥ १ ॥ इस प्रकार रघुनाथजीके वियोगके शोक और उनके स्नेहसे सङ्कुलित महाराज दशरथका शरीर व्याकुल है और मन तनु होता जा रहा है, जैसे टूटा हुआ तारा आकाशमार्गमें क्षण-क्षणमें क्षीण होता जाता है ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, महाराज दशरथने मछलीके पवित्र प्रेम और स्नेहको हृदयमें आदरपूर्वक समझकर प्रीतिकी मर्यादाको ही दृढ़ किया ॥ ३ ॥

राग गौरी

[५९]

करत राउ मनमों अनुमान ।
सोक-बिकल, मुख बचन न आवै, बिछुरे कृपानिधान ॥ १ ॥
राज देन कहि बोलि नारि-बस मैं जो कह्यो बन जान ।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान ॥ २ ॥

ऐसे सुतके बिरह-अवधि लौं जौ राखौं यह प्रान।
तौ मिटि जाइ प्रीतिकी परमिति, अजस सुनौं निज कान ॥ ३ ॥
राम गए अजहूँ हौं जीवत, समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान ॥ ४ ॥

कृपानिधान भगवान् राम बिछुड़ गये। इससे महाराज दशरथ अत्यन्त शोकातुर हैं और उनके मुखसे वचन भी नहीं निकलता और वे मनमें अनुमान करते हैं—॥ १ ॥ 'अहो! मैंने राज्य देना कहकर जिस समय स्त्रीके वशीभूत होकर वन जानेके लिये कहा उस समय जो मेरी आज्ञाको सिरपर धारणकर हृदयमें हर्षित हो वनको घरके समान चले गये ॥ २ ॥ ऐसे पुत्रके वियोगकी अवधितक यदि मैंने अपने प्राणोंको रक्खा तो प्रेमकी मर्यादा टूट जायगी और अपने ही कानोंसे मुझे अपयश भी सुनना पड़ेगा' ॥३॥ 'हाय! रामके चले जानेपर भी मैं आजतक जीवित हूँ'-ऐसा समझकर उनका हृदय व्याकुल हो गया। तुलसीदासजी कहते हैं, तब उन्होंने रघुनाथजीके लिये अपना शरीर त्यागकर अपने प्रेमको प्रमाणित कर दिया ॥ ४ ॥

भरतजी अयोध्यामें

[६०]

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन', कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो, री ॥ १ ॥
दिनकर-बंस, पिता दसरथ-से, राम-लषन-से भाई।
जननी! तू जननी? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई? ॥२॥

हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो ।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ? ॥ ३ ॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं ।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कौनि बिधि भरिहै ॥ ४ ॥

[महाराज दशरथके प्राण-त्यागके अनन्तर जब भरतजी अयोध्यामें आये तो उन्हें सारे समाचार विदित हुए। उस समय वे अपनी माता कैकेयीसे कहते हैं—] 'अरी ! तूने 'राम ! तुम वनको जाओ' ऐसे कठोर वचन कैसे कहे? उस समय तेरा हृदय ऐसा कठोर कैसे हो गया ॥ १ ॥ हाय ! सूर्यकुल-जैसा वंश, महाराज दशरथ-से पिता और राम-लक्ष्मण-जैसे भाई मिले ! और माता ! तू माता हुई ? इसमें मैं क्या कहूँ ? विधाता किसको दोष नहीं लगाता ? ॥ २ ॥ 'मैं राजमाता होकर सुख भोगूँगी और पुत्र अपने सिरपर छत्र धारण करेगा' ऐसा कुलके लिये कलङ्करूप और पापमय मनोरथ तेरे बिना और कौन कर सकता है ? ॥ ३ ॥ भगवान् राम तो फिर भी लौट ही आवेंगे और सब लोग सुखी भी हो जायँगे तथा विधाता मेरे अपयशको भी दूर कर देंगे। परन्तु मुझे बड़ा भारी सोच तो यही है कि तू किस प्रकार अपना जीवन काटेगी !' ॥ ४ ॥

[६१]

ताते हौं देत न दूषन तोहू ।
रामबिरोधी उर कठोरतें प्रगट कियो है बिधि मोहू ॥ १ ॥
सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए ।
बिष-बारुनी-बंधु कहियत बिधु ! नातो मिटत न धोए ॥ २ ॥

होते जौं न सुजान-सिरोमनि राम सबके मन माहीं।
तौ तोरी करतूति, मातु! सुनि, प्रीति-प्रतीति कहा हीं? ॥ ३ ॥
मृदु मंजुल सींची-सनेह सुचि सुनत भरत-बर-बानी।
तुलसी 'साधु साधु' सुर-नर-मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ ४ ॥

विधाताने मुझे भी तेरे रामविरोधी कठोर हृदयसे उत्पन्न किया है; इसलिये [तेरा ही होनेके कारण] मैं तो तुझे भी दोष नहीं दे सकता ॥ १ ॥ देखो, जिसे देखनेसे ही सब प्रकारका ताप शान्त हो जाता है वह चन्द्रमा सुन्दर, सुखदायक, शीतल और अमृतका भण्डार है तो भी उसे विष और वारुणीका बन्धु कहा जाता है। सच है, नाता धोनेसे नहीं मिटता ॥ २ ॥ यदि सुजानशिरोमणि भगवान् राम सबके मनमें न बसे होते तो हे माता! तेरी करतूतको सुनकर ही प्रभुको मेरी प्रीति और प्रतीति कैसे हो सकती थी? [अर्थात् राम सर्वान्तर्यामी हैं, इसलिये तेरी ऐसी कुचाल होनेपर भी वे अपने प्रति मेरे स्नेह और विश्वासको जानते हैं] ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, भरतजीकी यह अत्यन्त मधुर, मनोहर, स्नेहसनी पवित्र वाणी सुनकर उनके प्रेमको पहचानकर देवता, मनुष्य और मुनिजन 'साधु, साधु' कहने लगे ॥ ४ ॥

[६२]

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी! जगमें या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहौं? ॥ १ ॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची?।
महिमा-मृगी कौन सुकृतीकी खल-बच-बिसिषन बाँची? ॥ २ ॥

गहि न जाति रसना काहूकी, कहौ जाहि जोइ सूझै ।
दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हियेकी बूझै ? ॥ ३ ॥
तुलसी रामबियोग बिषम-बिष-बिकल नारि-नर भारी ।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥ ४ ॥

[भरतजी माता कौसल्यासे कहते हैं–] 'मातः ! यदि मैं अपनी माताके मतमें सहमत होऊँ तो अब संसारमें इस मुखकी कालिमाको कहाँ धो सकूँगा ? ॥ १ ॥ आज सौगन्ध खानेसे मैं कैसे निर्दोष हो सकता हूँ ? मेरी बातको सच भी कौन मानेगा ? भला किस पुण्यवान्‌की महिमारूप मृगी दुष्टोंके वाग्बाणोंसे विद्ध हुए बिना बची है ? ॥ २ ॥ किसीकी जिह्वा नहीं पकड़ी जा सकती, इसलिये जिसको जैसा सूझता हो वह वैसा ही कहो । मेरे हृदयकी बात तो करुणासागर दीनबन्धु भगवान् रामके बिना और कौन जानेगा ?' ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, श्रीरामके वियोगरूप विषम विषसे सब नर-नारी बहुत व्याकुल हो रहे थे । उस समय भरतजीके स्नेहरूप अमृतसे सींचे जाकर वे सब सुखी हो गये ॥ ४ ॥

[६३]

काहेको खोरि कैकयिहि लावौं ?
धरहु धीर, बलि जाउँ, तात ! मोको आज बिधाता बावौं ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग रामको हौं न होउँ मेरे प्यारे ।
सो मेरे नयननि आगेतें रघुपति बनहि सिधारे ॥ २ ॥
तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ, आँसु पोंछि उर लाए ।
उपजी प्रीति जानि प्रभुके हित, मनहु राम फिरि आए ॥ ३ ॥

[माता कौसल्या कहती हैं—] 'बेटा ! मैं कैकेयीको क्यों दोष लगाऊँ ? मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम धैर्य धारण करो। आज विधाता ही मुझपर टेढ़ा है ॥ १ ॥ हे मेरे प्रिय पुत्र ! मैं तो रघुनाथजीका वियोग सुननेके योग्य भी नहीं हूँ, सो इस समय मेरे नेत्रोंके सामने ही वे वनको चले गये' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस प्रकार भरतजीको समझाकर माताने उनके आँसू पोंछकर हृदयसे लगा लिया। उन्हें रामके सुहृद् समझकर माताको ऐसी प्रीति उत्पन्न हुई मानो रघुनाथजी ही फिर लौट आये हों ॥ ३ ॥

भरतजीका चित्रकूटको प्रस्थान

[६४]

मेरो अवध धौं कहहु, कहा है।
करहु राज रघुराज-चरन तजि, लै लटि लोगु रहा है ॥ १ ॥
धन्य मातु, हौं धन्य, लागि जेहि राज-समाज ढहा है।
तापर मोको प्रभु करि चाहत सब बिनु दहन दहा है ॥ २ ॥
राम-सपथ, कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहि हहा है ॥ ३ ॥
यों कहि भोर भरत गिरिवरको मारग बूझि गहा है।
सकल सराहत, एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है ॥ ४ ॥
जानहिं सिय-रघुनाथ भरतको सील-सनेह महा है।
कै तुलसी जाको राम-नामसों प्रेम-नेम निबहा है ॥ ५ ॥

[भरतजी कहते हैं—] 'बताओ तो, अयोध्यामें मेरा क्या है ? लोग कहते हैं कि रघुनाथजीके चरणोंको त्यागकर राज्य करो; ये

सब-के-सब इसी धुनमें लगे हुए हैं ॥ १ ॥ मेरी माता धन्य है ! और धन्य हूँ मैं, जिसके लिये यह सारा राजसमाज ध्वंस किया गया है ! तिसपर भी मुझे अपना राजा बनाकर आपलोग बिना अग्निके ही दग्ध होना चाहते हैं ! ॥२॥ आप सबको रघुनाथजीकी सौगन्ध है, अब मुझसे कोई कुछ न कहे । मैंने बड़ा असह्य दुःख सहन किया है । मैं बलिहारी जाता हूँ, आओ सब लोग मिलकर चित्रकूटको चलें । मैं प्रार्थना करता हूँ, आपलोग मुझे क्षमा कीजिये' ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर सबेरा होते ही भरतजीने चित्रकूटका मार्ग पूछकर उसे पकड़ लिया । उस समय सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे कि 'संसारमें जन्म लेकर एकमात्र भरतजीने ही सच्चा लाभ उठाया है' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, भरतजीके महान् शील और स्नेहको या तो राम और सीता जानते हैं और या वे लोग जानते हैं जिनका राम-नामसे प्रेम और नेम लगा हुआ है ॥ ५ ॥

[६५]

भाई ! हौं अवध कहा रहि लैहौं ।
राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन काल्हि काननहि जैहौं ॥ १ ॥
जद्यपि मोतें, कै कुमाततें, ह्वै आई अति पोची ।
सनमुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची ॥ २ ॥
तुलसी यों कहि चले भोरही, लोग बिकल सँग लागे ।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहँग-मृग भागे ॥ ३ ॥

'भाई ! मैं अयोध्यामें रहकर क्या लूँगा ? मैं तो राम, लक्ष्मण और सीताजीके चरण देखनेके लिये कल ही वनको प्रस्थान करूँगा ॥ १ ॥ यद्यपि मुझसे या मेरी कुटिल मातासे बड़ी बुरी बात बन गयी है तो

भी परम संकोची भगवान् राम अपने सामने आया देखकर मुझे अवश्य अपनी शरणमें रख लेंगे' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसा कहकर भरतजी प्रातःकाल होते ही वनको चल दिये तथा अन्य लोग भी व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये, जैसे वनको भयंकर दावानलसे जलता देखकर पक्षी और मृग उससे निकलकर भागने लगते हैं ॥ ३ ॥

[६६]

सुकसों गहवर हिये कहै सारो ।
बीर कीर ! सिय-राम-लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥ १ ॥
पापिनी चेरि, अयानि रानि, नृप हित-अनहित न बिचारो ।
कुलगुर-सचिव-साधु सोचतु, बिधि को न बसाइ उजारो ? ॥ २ ॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
सुने न बचन करुनाकरके, जब पुर-परिवार सँभारो ॥ ३ ॥
भैया भरत भावतेके सँग बन सब लोग सिधारो ।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥ ४ ॥
सुनि खग कहत अंब ! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो ।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन-गारो ॥ ५ ॥
जीवन जग जानकी-लखनको, मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीतिकी चरचा करत, कहा कछु चारो ॥ ६ ॥

इस समय एक सारिका (मैना) हृदय भरकर शुकसे कहने लगी—'भैया कीर ! सीता, राम और लक्ष्मणके बिना तो सारा संसार अन्धकारमय जान पड़ता है ॥ १ ॥ दासी मन्थरा बड़ी पापिनी है, रानी कैकेयी भी बड़ी ही मूर्खा है, राजाने भी हिताहितका कोई विचार नहीं

किया। इसीसे कुलगुरु वसिष्ठजी, मन्त्रिमण्डल और साधुजन सोचते हैं कि 'विधाताने किसे बसाकर नहीं उजाड़ा?' ॥ २ ॥ हमने तो जाते समय उन्हें नेत्र भरकर देखा भी नहीं और जिस समय उन्होंने अपने नगर और परिवारकी सँभाल की थी उस समय नगरमें भारी कोलाहल होनेके कारण हम करुणाधाम भगवान् रामके वचन भी नहीं सुन सके ॥ ३ ॥ अब प्यारे भाई भरतके साथ सब लोग वनको जा रहे हैं; परन्तु हम पंख पाकर भी पिंजड़ोंमें पड़े तरस रहे हैं—यह हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य ही है' ॥ ४ ॥ सारिकाके ये वचन सुनकर तोता बोला—'अरी मैया! प्रेमका पन्थ निराला समझकर तू मौन हो रह। देख, जो उनके साथ गये थे वे भी प्रभुको वनमें पहुँचाकर कर्मके गुणोंकी निन्दा करते हुए फिर लौट आये ॥ ५ ॥ संसारमें जीवन तो सीता और लक्ष्मणका ही है तथा मरण केवल महाराजने सुधारा है, और सब तो प्रेमकी चर्चा ही करते हैं और इसके सिवा उनके लिये कोई चारा भी नहीं है, [क्योंकि न तो वे वनहीको जा सकते हैं और न प्राण ही त्याग सकते हैं] ॥ ६ ॥

[६७]

कहै सुक, सुनहि सिखावन, सारो!
बिधि-करतब बिपरीत बाम गति, रामप्रेम-पथ न्यारो ॥ १ ॥
को नर-नारि अवध खग-मृग, जेहि जीवन रामतें प्यारो।
बिद्यमान सबके गवने बन, बदन करमको कारो ॥ २ ॥
अंब, अनुज, प्रिय सखा, सुसेवक देखि बिषाद बिसारो।
पंछी परबस परे पींजरनि, लेखो कौन हमारो ॥ ३ ॥

रही नृपकी, बिगरी है सबकी, अब एक सँवारनिहारो।
तुलसी प्रभु निज चरन-पीठ मिस भरत-प्रान रखवारो ॥ ४ ॥

शुक कहता है, 'अरी सारिका ! तू मेरी शिक्षा सुन। विधाताके विपरीत होनेसे कर्मकी गति भी विपरीत हो जाती है; किन्तु रामके प्रेमका मार्ग तो इससे निराला ही है ॥ १ ॥ भला अयोध्यामें ऐसा कौन नर-नारी अथवा पशु-पक्षी है जिसे अपना जीवन रामसे अधिक प्रिय हो ? किन्तु वे सबके रहते हुए ही वनको चले गये, इससे कर्मका ही मुख काला हुआ ॥ २ ॥ यह सब देखकर भी माता, भाई, प्रिय मित्र और अच्छे-अच्छे सेवक भी उस दुःखको भूल गये ! फिर पिंजड़ोंमें परतन्त्र पड़े हुए हम पक्षियोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३ ॥ बात तो राजाकी ही रही, और सबकी बिगड़ गयी। परन्तु देखो, अब एक बात बन गयी है। तुलसीदास कहते हैं, प्रभुने अपनी चरणपादुकाओंके मिससे भरतजीके प्राणोंका रखवाला नियुक्त कर दिया है ॥ ४ ॥

[६८]

ता दिन सृंगबेरपुर आए।
राम-सखा ते समाचार सुनि बारि बिलोचन छाए ॥ १ ॥
कुस-साथरी देखि रघुपतिकी हेतु अपनपौ जानी।
कहत कथा सिय-राम-लषनकी बैठेहि रैनि बिहानी ॥ २ ॥
भोरहि भरद्वाज आश्रम ह्वै, करि निषादपति आगे।
चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घामके लागे ॥ ३ ॥
बूझत 'चित्रकूट कहँ' जेहि तेहि, मुनि बालकनि बतायो।
तुलसी मनहु फनिक मनि ढूँढ़त, निरखि हरषि हिय धायो ॥ ४ ॥

उस दिन भरतजी श्रृङ्गवेरपुर पहुँचे। वहाँ रामचन्द्रजीके सखा गुहसे प्रभुके समाचार पाकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ वहाँ रघुनाथजीकी कुशविरचित शय्या देखकर और उसमें अपनेको ही हेतु समझकर उन्होंने वह सारी रात्रि सीता, राम और लक्ष्मणजीकी बातें करते-करते बैठे-बैठे ही बिता दी ॥ २ ॥ प्रातःकाल होते ही वे निषादराजको आगे कर भरद्वाज ऋषिके आश्रमकी ओर चले; मानो किसी तृषातुर गजने दारुण घामके लगनेपर किसी तड़ागको देख लिया हो ॥ ३ ॥ फिर जहाँ-तहाँ मुनियोंके बालकोंसे यह पूछनेपर कि 'चित्रकूट कहाँ है?' उन्होंने उसका पता बतला दिया। तुलसीदास कहते हैं, उसे देखकर उन्हें ऐसा आनन्द हुआ जैसे कोई सर्प मणिको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे देख लेनेपर मारे हर्षके दौड़ पड़ता है ॥ ४ ॥

राम-भरत-सम्मेलन

राग केदारा

[६९]

बिलोके दूरितें दोउ बीर।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल-गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु-तीर ॥ २ ॥
मन अगहुँड़, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर ॥ ३ ॥
तुलसिदास दसा देखि भरतकी उठि धाए अतिहि अधीर।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर ॥ ४ ॥

भरतजीने दूरहीसे दोनों भाइयोंको देखा। उनके विशाल वक्षःस्थल हैं, जानुपर्यन्त लम्बायमान सुन्दर भुजाएँ हैं तथा श्याम और गौर शरीर हैं ॥ १ ॥ उनके सिरपर जटाएँ हैं, कमलके समान नेत्र हैं और वे मुनिवस्त्र धारण किये हैं। उनके पासहीमें तरकस रक्खे हुए हैं, संगमें सीताजी शोभायमान हैं तथा हाथोंसे वे धनुष और बाणोंको हिला रहे हैं ॥ २ ॥ प्रभुको देखकर भरतजीका मन तो आगे बढ़नेके लिये उतावला हो रहा है किन्तु शरीर रोमाञ्चित होकर शिथिल हो गया है और नेत्रकमलोंमें जल भर आया है। पैर मानो संकोचरूप दलदलमें गड़े जाते हैं और उन्हें वे प्रेमबलसे धैर्यपूर्वक बाहर निकालते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, भरतजीकी यह दशा देखकर भगवान् प्रेमसे अधीर होकर उनकी ओर उठकर दौड़े और उनकी विरह-व्यथाको दूरकर कृपानिधान प्रभुने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ ४ ॥

[७०]

भरत भए ठाढ़े कर जोरि।
ह्वै न सकत सामुहें सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि ॥ १ ॥
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि।
हृदय सोच, जल भरे बिलोचन, नेह देह भइ भोरि ॥ २ ॥
बनबासी, पुरलोग, महामुनि किए हैं काठके-से कोरि।
दै दै श्रवन सुनिबेको जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥ ३ ॥
तुलसी राम-सुभाव सुमिरि, उर धरि धीरजहि बहोरि।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना-रसहि निचोरि ॥ ४ ॥

तब भरतजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। माताकी कुचाल समझकर वे संकोचवश प्रभुके सामने खड़े नहीं हो सकते थे॥ १॥ उनके नेत्रोंमें जल भरा हुआ था, शरीर स्नेहवश शिथिल हो रहा था और चित्तमें यही सोच-विचार था कि 'न जाने प्रभु फिरेंगे अथवा मेरी कुटिलता समझकर मुझे ही लौट जानेको कह देंगे?'॥ २॥ वनवासी, पुरजन तथा बड़े-बड़े मुनि लोग काठसे गढ़कर बनाये हुए-से हो रहे हैं और जहाँ-तहाँ मनको प्रेम-रसमें डुबोकर अपने कान लगाये सुननेके लिये खड़े हैं॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं, इसी समय भरतजी रामचन्द्रजीके स्वभावका स्मरणकर हृदयमें धैर्य धारणकर करुणा-रससे भरे हुए अति विनीत, हितकारी और उचित वचन बोले॥ ४॥

[७१]

जानत हौ सबहीके मनकी।
तदपि, कृपालु! करौं बिनती सोइ, सादर सुनहु दीन-हित जनकी॥१॥
ए सेवक संतत अनन्य अति, ज्यों चातकहि एक गति घनकी।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजनकी॥२॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै जैसो अहि, जासु गई मनि फनकी।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति, आग्या देहु नाथ मोहि बनकी॥३॥
मोको जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातुतें तनकी।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पनकी॥४॥

'हे कृपालो! आप सबके मनकी बात जानते हैं, तो भी मैं कुछ विनय करता हूँ। आप दीनहितकारी हैं, अतः इस सेवककी वह

विनय तनिक ध्यान देकर सुनिये ॥ १ ॥ 'ये अयोध्यावासी सदा आपके ही अनन्य दास हैं, [इनका कोई और अवलम्ब नहीं है] जैसे पपीहेको एकमात्र मेघका ही आश्रय रहता है' ऐसा सोचकर आप उस पवित्र पुरीमें पधारिये और अपने आत्मीयोंके दुःसह दुःखको दूर कीजिये ॥ २ ॥ मेरा जीवन भी ऐसा ही समझिये जैसे कोई सर्प फणकी मणि खो जानेपर जीवित रहता हो। हे कोसलनाथ ! आप [बड़े भाईके रहते हुए छोटेको राज्य मिलनारूप] यह कुलका कलंक नष्ट कीजिये और अपने बदले मुझे वन जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३ ॥ और मुझे तो जो भी दोष लगाया जाय वही लग सकता है, क्योंकि इस शरीरकी उत्पत्ति कुमातासे हुई है। किन्तु हे प्रभो ! आप तो मेरे सब अपराधोंको भूलकर अपने विरद [शरणागतपालकत्व] की ही लाज रखिये' ॥ ४ ॥

[७२]

तात ! बिचारो धौं, हौं क्यौं आवौं।
तुम्ह सुचि, सुहृद, सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि कहि समुझावौं १
निज कर खाल खैंचि या तनुतें जौ पितु पग पानही करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथतें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥२॥
तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर, क्यों तेहि कुलहि कालिमा लावौं।
प्रभु-रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं ?

[इसपर रघुनाथजी कहने लगे—] 'भैया ! सोचो तो, मैं किस प्रकार लौट सकता हूँ ? तुम सब प्रकार निर्दोष सुहृद् और समझदार

हो, तुम्हें बहुत कहकर क्या समझाऊँ ? ॥ १ ॥ यदि मैं अपने हाथसे ही इस शरीरकी खाल खींचकर पिताजीके चरणोंकी जूतियाँ बनवाऊँ तो भी पिता दशरथजीसे मैं उऋण नहीं हो सकता; फिर उनके वाक्योंकी अवहेलना करके मैं कैसे विश्वासपात्र हो सकता हूँ ? ॥२॥ भैया ! जिस कुलका सुयश तीनों लोकोंमें छाया हुआ है उसे मैं कैसे कलङ्कित कर सकता हूँ ?' तुलसीदास कहते हैं, प्रभुका ऐसा भाव देखकर भरतजी निराश हो गये और उन्होंने विधाताको सब प्रकार वाम समझा ॥ ३ ॥

[७३]

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं ।
सकुच-सिंधु बोहित बिबेक करि बुधि-बल बचन निबाहैं ॥ १ ॥
छोटेहुतें छोह करि आए, मैं सामुहैं न हेरो ।
एकहि बार आजु बिधि मेरो सील-सनेह निबेरो ॥ २ ॥
तुलसी जो फिरिबो न बनै, प्रभु ! तौ हौं आयसु पावौं ।
घर फेरिए लषन, लरिका हैं, नाथ साथ हौं आवौं ॥ ३ ॥

भरतजी फिर भी कुछ कहना चाहते हैं। अतः सङ्कोचरूप समुद्रमें विवेकको नौका बनाकर उसपर वचनरूप पथिकोंको बुद्धिरूप केवटके बलसे पार करना चाहते हैं ॥ १ ॥ [वे कहने लगे–] 'छोटेपनमें तो प्रभु मुझपर सदासे ही स्नेह करते रहे हैं और मैंने भी आपको सामने पड़कर कभी नहीं देखा। किन्तु आज विधाताने एक ही बारमें मेरे शील और स्नेहका निबटारा कर डाला ! ॥ २ ॥ अच्छा यदि घर लौटना सम्भव न हो तो प्रभुसे मुझे इतनी ही आज्ञा मिल जाय कि यह लक्ष्मण मुझसे छोटी अवस्थाके लड़के हैं, अतः इन्हें घर भेज दिया जाय और मैं स्वामीके साथ चलूँ' ॥ ३ ॥

[७४]

रघुपति ! मोहि संग किन लीजै ?
वारबार 'पुर जाहु', नाथ ! केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अति अधम, कुटिलमति, अपराधिनिको जायो ।
प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि, सरन तकि आयो ॥ २ ॥
जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी ।
तौ परिहरहु दयालु, दीनहित, प्रभु, अभिअंतर-साखी ॥ ३ ॥
तातें, नाथ ! कहौं मैं पुनि पुनि, प्रभु पितु, मातु, गोसाईं ।
भजनहीन नरदेह बृथा, खर-स्वान-फेरुकी नाईं ॥ ४ ॥
बंधु-बचन सुनि श्रवन, नयन-राजीव नीर भरि आए ।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥

[श्रीभरतजी कहते हैं—] 'हे रघुनाथजी ! आप मुझे साथ क्यों नहीं लेते ? हे नाथ ! आप बारंबार 'तुम अयोध्यापुरीको जाओ' ऐसी आज्ञा क्यों देते हैं ? ॥ १ ॥ यद्यपि मैं बड़ा ही नीच, कुटिलमति और अपराधिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, तो भी आपका कोमल स्वभाव है तथा आप शरणागतवत्सल हैं—ऐसा चित्तमें समझकर मैं आपकी शरण ताककर आया हूँ ॥ २ ॥ यदि मुझे आपके चरणोंको छोड़कर कोई और गति हो अथवा मैं चित्तमें किसी प्रकारका भेद रखकर कहता होऊँ तो हे दीनहितकारी दयामय देव ! आप मुझे त्याग दें, क्योंकि प्रभु सबके अन्तःकरणोंके साक्षी हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ ! आप ही हमारे पिता, माता और स्वामी हैं; इसीसे मैं बारंबार [आपकी सेवामें रहनेके लिये] कह रहा हूँ, क्योंकि यह मनुष्य-शरीर आपका भजन किये बिना तो

गधे, कुत्ते और गीदड़के समान वृथा ही है' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, भाई भरतके ये वचन कानोंसे सुनकर प्रभुके नेत्रकमलोंमें जल भर आया और उन्होंने परम कृपावश उन्हें बाँह पकड़कर हृदयसे लगा लिया ॥ ५ ॥

[७५]

काहेको मानत हानि हिये हौ ?
प्रीति-नीति-गुन-सील-धरम कहँ तुम अवलंब दिये हौ ॥ १ ॥
तात ! जात जानिबे न ए दिन; करि प्रमान पितु-बानी ।
ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥ २ ॥
तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हें ।
मनहु सबनिके प्रान-पाहरू भरत सीस धरि लीन्हें ॥ ३ ॥

[भगवान् बोले—] 'भैया, अपने हृदयमें ऐसी ग्लानि क्यों मानते हो ? तुमने तो प्रीति, नीति, गुण, शील और धर्म सभीको सहारा दे रक्खा है ॥ १ ॥ हे तात ! तुम्हें ये दिन तो जाते हुए मालूम भी न होंगे । इतनेहीमें मैं पिताके वचनोंको पूरा कर शीघ्र ही लौट आऊँगा । तुम कालकी गतिको कठिन जानकर हृदयमें धैर्य धारण करो' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, भाईको इस प्रकार समझाकर भगवान्‌ने उन्हें अपनी चरणपादुकाएँ दे दीं और भरतजीने सबके प्राणोंके प्रहरीरूप उन पादुकाओंको अपने सिरपर रख लिया ॥ ३ ॥

[७६]

बिनती भरत करत कर जोरे ।
दीनबंधु ! दीनता दीनकी कबहुँ परै जनि भोरे ॥ १ ॥

तुम्हसे तुम्हहि नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि, पहिचानि प्रीति, छमिए अघ-औगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें ।
पुलक सरीर, नीर भरि लोचन, कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥ ३ ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ ॥ ४ ॥

[चलते समय] भरतजी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं—'हे दीनबन्धो ! इस दीनकी दीनता कभी भूलमें न पड़ जाय ॥ १ ॥ हे नाथ ! मेरे लिये आप-जैसे प्रभु तो आप ही हैं किन्तु आपके लिये मेरे समान सेवक अनेकों हैं—यह जानकर और मेरी आन्तरिक प्रीति पहचानकर आप मेरे अपराध और अवगुण क्षमा करें' ॥ २ ॥ ऐसा कह भरतजीने राम और सीताके चरणोंमें गिरकर लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाया। और फिर पुलकितशरीर हो, नेत्रोंमें जल भरकर, प्रेमकी प्रतिज्ञा करके कहने लगे ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, [वह प्रतिज्ञा यह थी—] हे रघुनाथजी ! वनवासकी अवधि समाप्त हो जानेपर यदि आप पहले ही दिन अयोध्यामें न आये तो प्रभुके चरणकमलोंकी सौगन्ध, आप अपने दासको जीवित न पा सकेंगे ॥ ४ ॥

[७७]

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो ।
जनमि कैकयी-कोखि कृपानिधि ! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥
'भरत भूप, सिय-राम-लषन बन,' सुनि सानंद सहौंगो ।
पुर-परिजन अवलोकि मातु सब सुख-संतोष लहौंगो ॥ २ ॥

प्रभु जानत, जेहि भाँति अवधिलौं बचन पालि निबहौंगो ।
आगेकी बिनती तुलसी तब, जब फिरि चरन गहौंगो ॥ ३ ॥

'हे कृपानिधे ! आपकी आज्ञा पाकर मैं अवश्य अयोध्यामें ही रहूँगा; कैकेयीके गर्भसे जन्म लेकर भला मैं बढ़कर कोई बात कैसे कह सकता हूँ ॥ १ ॥ अब मैं 'भरत राजा है और सीता, राम तथा लक्ष्मण वनमें हैं' यह बात सुनकर आनन्दपूर्वक सहन करूँगा, तथा नगर, कुटुम्बी लोग और सब माताओंको देखकर सुख एवं सन्तोष पाऊँगा ॥ २ ॥ जिस प्रकार मैं आपकी आज्ञा मानकर वनवासकी अवधिपर्यन्त निर्वाह करूँगा, सो तो प्रभु जानते ही हैं; अब आगेकी विनती उसी समय करूँगा जब पुनः इन चरणोंको पकड़ूँगा' ॥ ३ ॥

[७८]

प्रभुसों मैं ढीठो बहुत दई है ।
कीबी छमा, नाथ ! आरतितें कही कुजुगुति नई है ॥ १ ॥
यों कहि, बार बार पाँयनि परि, पाँवरि पुलकि लई है ।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत, जेहि बिष बेलि बई है ॥ २ ॥
आए सदा सुधारि गोसाईं, जनतें बिगरि गई है ।
थके बचन पैरत सनेह-सरि, पर्‍यो मानो घोर घई है ॥ ३ ॥
चित्रकूट तेहि समय सबनिकी बुद्धि बिषाद हई है ।
तुलसी राम-भरतके बिछुरत सिला सप्रेम भई है ॥ ४ ॥

'इस समय प्रभुके साथ मैंने बहुत ढिठाई की है [क्योंकि चुप रहनेके बजाय इतना तर्क-वितर्क किया]। किन्तु हे नाथ ! दुःखके कारण मैंने जो कोई नयी कुयुक्ति कही हो उसे क्षमा करें' ॥ १ ॥ ऐसा

कह भरतजीने बारंबार प्रभुके चरणोंमें गिर पुलकितशरीर हो उनकी पादुकाएँ उठा लीं [और कहने लगे—] 'मैं तो अपना कुसमय देखकर डरता हूँ जिसने इस समय यह सारी विषकी बेल बोई है ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! जब-जब दाससे कुछ विगाड़ हुआ तब-तब सदासे ही आप सुधारते आये हैं ।' ऐसा कहकर भरतजीके वचन थकित हो गये, मानो स्नेह-सरितामें तैरते-तैरते वे किसी भयङ्कर भँवरमें पड़ गये हों ॥ ३ ॥ उस समय चित्रकूटमें सभीकी बुद्धियाँ विषादग्रस्त हो गयीं । तुलसीदासजी कहते हैं, तब राम और भरतका वियोग होते ही वहाँकी शिला भी प्रेमवश द्रवीभूत हो गयी ॥ ४ ॥

रामविधुरा अयोध्या

[७९]

जबतें चित्रकूटतें आए ।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए ॥ १ ॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें ।
प्रभु-पद-प्रेम-नेम-ब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥ २ ॥
सिंहासनपर पूजि पादुका बारहि बार जोहारे ।
प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥ ३ ॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु, त्यौं त्यौं प्रीति अधिकाई ।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत-से भाई ॥ ४ ॥

जबसे भरतजी चित्रकूटसे लौटकर आये हैं तबसे नन्दिग्राममें पृथिवी खोदकर उसमें कुश बिछा पत्तोंकी कुटी छा ली है ॥ १ ॥ वहाँ मृगचर्म धारण किये फलाहार करते, सिरपर जटाएँ धारणकर अवधिमें

चित्त लगाये निवास करते हैं। प्रभुके चरणोंमें उनके प्रेम, नियम और व्रतको देखकर तो मुनियोंने भी लज्जावश अपना मस्तक नीचा कर लिया है ॥ २ ॥ वे प्रभुकी पादुकाओंको सिंहासनपर पूजकर बारंबार उनकी वन्दना करते हैं और प्रभु-प्रेमसे भरकर, उनकी आज्ञा ले पुरवासियोंके सब कार्य सँभालते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, ज्यों-ज्यों उनके शरीरका तेज (पुष्टता) घटता है त्यों-त्यों उनकी प्रीति बढ़ती जाती है। संसारमें भरत-जैसे भाई न कभी हुए हैं, न हैं और न भविष्यमें ही कभी होंगे ॥ ४ ॥

राग रामकली

[८०]

राखी भगति-भलाई भली भाँति भरत।
स्वारथ-परमारथ-पथी जय जय जग करत ॥ १ ॥
जो ब्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत।
सो ब्रत लिए चातक-ज्यों, सुनत पाप हरत ॥ २ ॥
सिंहासन सुभग राम-चरन-पीठ धरत।
चालत सब राजकाज आयसु अनुसरत ॥ ३ ॥
आपु अवध, बिपिन बंधु, सोच-जरनि जरत।
तुलसी सम-बिषम, सुगम-अगम लखि न परत ॥ ४ ॥

भरतने भक्ति और भलाईकी बहुत अच्छी तरह रक्षा की है। वे स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही मार्गोंमें चलनेवाले हैं, सारा संसार उनका जय-जयकार करता है ॥ १ ॥ जिस [अनन्य] व्रतका मुनियोंको मनसे भी आचरण करना कठिन है उसे उन्होंने चातकके समान निभाया,

जिसका श्रवण करनेसे ही सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ वे भगवान् रामकी चरणपादुकाओंको एक सुन्दर सिंहासनपर रखते हैं और उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हुए सब राजकार्यका सञ्चालन करते हैं ॥ ३ ॥ 'आप स्वयं अयोध्यामें हैं और भाई वनमें हैं' इस शोकरूप दाहसे वे जलते रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार भरत और रघुनाथजीको [अयोध्या और वनकी] समता और विषमता अथवा सुगमता और दुर्गमता दिखायी भी नहीं देती [अर्थात् भरतजीको अयोध्याका सुख प्रतीत नहीं होता और रघुनाथजीको वनका दुःख नहीं जान पड़ता] ॥ ४ ॥

[८१]

मोहि भावति, कहि आवति नहि भरतजूकी रहनि ।
सजल नयन सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि ॥ १ ॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम गरुअ गहनि ।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि ॥ २ ॥
सीता-रघुनाथ-लषन-बिरह-पीर सहनि ।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि ॥ ३ ॥

भरतजीका रहन-सहन मुझे बड़ा प्रिय लगता है किन्तु कहा नहीं जाता। उनका वह सजलनेत्र और शिथिल वाणीसे प्रभुका गुणगान करना ॥ १ ॥ भोजन, वस्त्र, गृह और शयन-सम्बन्धी कठोर धर्मोंको ग्रहण करना, दिनोंदिन निरुपाधि प्रतिज्ञा, प्रेम और नियमको निभाना ॥ २ ॥ सीता, राम और लक्ष्मणजीके वियोगकी व्यथा सहन करना तथा लोक-परलोक दोनोंको त्यागकर केवल भगवान् रामके चरणोंकी इच्छा करना [ये सभी अकथनीय हैं] ॥ ३ ॥

[८२]

जानी है संकर-हनुमान-लषन-भरत राम-भगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ॥ १ ॥
लहत सकृत, चहत सकल, जुग जुग जगमगाति ।
राम-प्रेम-पथतें कबहु डोलति नहिं, डगति ॥ २ ॥
रिधि-सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति ॥ ३ ॥

रामकी भक्तिको तो श्रीमहादेवजी, हनुमान्जी, लक्ष्मणजी एवं भरतजीने ही जाना है। यह कहनेमें सुगम है किन्तु करनेमें बड़ी ही अगम है और सुननेमें भी बड़ी मीठी जान पड़ती है ॥ १ ॥ इसे चाहते तो सब हैं परन्तु प्राप्त कोई विरले ही करते हैं। फिर भी यह युग-युगमें जगमगाती रहती है। यह रामप्रेमके मार्गसे कभी विलग नहीं होती और न कभी डगमगाती ही है ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, जिसके बिना ऋद्धि-सिद्धि और [सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य एवं सार्ष्टिरूप] चार प्रकारकी सुगतियाँ गतिरूप होकर भी अगति ही हैं उस भक्तिके सम्मुख हुए बिना विषयरूप ठगिनी ठगती ही रहती है ॥ ३ ॥

राग गौरी

[८३]

कैकयी करी धौं चतुराई कौन ?
राम-लषन-सिय बनहि पठाए, पति पठए सुरभौन ॥ १ ॥
कहा भलो धौं भयो भरतको, लगे तरुन-तन दौन।
पुरबासिन्हके नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौं न ॥ २ ॥

कौसल्या दिन राति बिसूरति, बैठि मनहिं मन मौन ।
तुलसी उचित न होइ रोइबो, प्रान गए सँग जौ न ॥ ३ ॥

[कौसल्याजी कहती हैं-] 'कैकेयीने भला क्या चतुराई की ? व्यर्थ राम, लक्ष्मण और सीताको वनमें भेजा और पतिको देवलोक पहुँचा दिया ! ॥ १ ॥ इससे भरतका भी क्या भला हुआ ? तरुण अवस्थामें ही उसके शरीरमें विरहरूप दावाग्नि लग गयी । इसके सिवा पुरवासियोंके नेत्र भी मुझे कभी अश्रुहीन दिखायी नहीं देते' ॥ २ ॥ इस प्रकार कौसल्याजी दिन-रात चुपचाप बैठी मन-ही-मन खिन्न होती रहती हैं और सोचती हैं कि यदि हमारे प्राण रामके साथ नहीं गये तो रोना तो हमें उचित है नहीं ॥ ३ ॥

[८४]

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।
लगी न संग चित्रकूटहुतें, ह्याँ कहा जात बह्यो ॥ १ ॥
पति सुरपुर, सिय-राम-लषन बन, मुनिब्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यौ ॥ २ ॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यौ ? ॥ ३ ॥

[कौसल्याजी सोचती हैं-] 'हमें तो हाथ मलना ही हाथ लगा है । भला मेरे बिना यहाँ क्या बहा जाता था जो मैं चित्रकूटसे भी रामके साथ नहीं लगी ॥ १ ॥ पति सुरलोक सिधार गये; राम, लक्ष्मण और सीता वनमें जा बसे और भरतने भी मुनिव्रत धारण कर लिया, किन्तु मैं श्मशानकी अग्निके समान घरमें ही रह गयी, मैंने तो मानो

मृत्युरूप मृतकको ही जला डाला है [अतः अब मुझे मौत भी नहीं आ सकती] ॥ २ ॥ विधाताने मेरा ही हृदय कठोर बनानेके लिये तो कहीं वज्र नहीं लिया ? हाय ! मैं पुत्रको वनमें पहुँचाकर लौट आयी। ऐसी अवस्थामें कोई बात कैसे कही जा सकती है ?' ॥ ३ ॥

राग सोरठ

[८५]

हौं तो समुझि रही अपनो सो ।
राम-लषन-सियको सुख मोकहँ भयो, सखी ! सपनो सो ॥ १ ॥
जिनके बिरह-बिषाद बँटावन खग-मृग जीव दुखारी ।
मोहि कहा सजनी समुझावति, हौं तिन्हकी महतारी ॥ २ ॥
भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरबासी ।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति, ह्वैहै जग उपहाँसी ॥ ३ ॥

'सखि ! मैं तो अपनी-सी बात समझती हूँ। अरी ! मेरे लिये तो राम, लक्ष्मण और सीताका सुख स्वप्नके समान हो गया ॥ १ ॥ जिनकी विरहव्यथाको बँटानेके लिये आज पशु-पक्षी आदि सभी जीव दुखी हो रहे हैं, अरी सजनी ! उनके विषयमें मुझे क्या समझाती है ? मैं तो उनकी माता हूँ ॥ २ ॥ भरतकी दशा सुनकर, महाराजकी गति स्मरण-कर और पुरवासियोंको दीन देखकर मैं तो 'राम' कहनेमें भी सकुचाती हूँ, क्योंकि इससे संसारमें मेरी हँसी होगी [कि देखो, इन दूरके सम्बन्धियोंकी तो ऐसी दुर्दशा है और स्वयं माता होकर यह जीवन धारण कर रही है]' ॥ ३ ॥

[८६]

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि भरि पतिको हित, मातुहेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए बारेतें करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत-से, खान-पान बिसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभुके बिरह-बधिक हठि राजहंस-से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम-लखनके घोरे ॥ ४ ॥

'अरी सखि ! मैं इन घोड़ोंको कैसे समझाऊँ ? देख, जैसे माताके लिये पुत्र व्याकुल रहता है उसी प्रकार इनके हृदयमें बारंबार अपने स्वामी रामकी प्रीति उमड़ आती है ॥ १ ॥ यदि कोई द्वारपर बोलता है तो ये बारंबार उसी ओर देखकर हिनहिनाने लगते हैं, क्यों ? इन्हें मेरे उन करुणामय प्रिय पुत्रोंने बालकपनसे ही अपनेसे हिला-मिला लिया था ॥ २ ॥ इनके नेत्र सदा आँसुओंसे भरे रहते हैं और ये खान-पानको भूलकर सदा सोये हुए-से रहते हैं । ये रामका नाम सुनते ही चौंक पड़ते हैं और हृदयमें उनका स्मरण आते ही शोकग्रस्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ ये राम-लक्ष्मणके घोड़े राजहंसोंके जोड़ेके समान हैं । हाय ! इन्हें प्रभुके वियोगरूप वधिकसे इस प्रकार हठपूर्वक व्यथित होते देखकर भी मैं जी रही हूँ ?' ॥ ४ ॥

[८७]

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहि सिधावौ ॥ १ ॥

जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥

'हे राघव ! तुम एक बार तो अवश्य लौट आओ । यहाँ अपने इन श्रेष्ठ घोड़ोंको देखकर फिर वनमें चले जाना ॥ १ ॥ जिन्हें तुमने दूध पिलाकर, अपने ही करकमलोंसे पुष्टकर बारंबार चुचकारा था, ऐ मेरे लाड़िले राम ! वे अब एकाएकी भूल जानेसे कैसे जीवित रह सकेंगे ? ॥ २ ॥ तुम्हारे अत्यन्त प्रिय जानकर यद्यपि भरतजी इनकी सौगुनी सँभाल रखते हैं तो भी पालेके मारे हुए कमलके समान ये दिन-दिन दुर्बल होते जा रहे हैं ॥ ३ ॥ अरे पथिको ! सुनो, यदि तुम्हें वनमें राम मिल जायँ तो तुम उनसे माताका यही सन्देश कहना कि मुझे सबसे बढ़कर इन घोड़ोंकी ही चिन्ता है' ॥ ४ ॥

राग केदारा

[८८]

काहूसों काहू समाचार ऐसे पाए ।
चित्रकूटतें राम-लषन-सिय सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥
सैल, सरित, निरझर, बन, मुनि-थल देखि-देखि सब आए ।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक, मानस-सुगम सुहाए ॥ २ ॥

बाँड़े अवलंब बाम-बिधि-बिघटित बिषम बिषाद बढ़ाए।
सिरिस-सुमन-सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढ़ाए॥ ३॥
अवध सकल नर-नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाए।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस, समुझत नहि समुझाए॥ ४॥

किसीसे किसीने ऐसी खबर पायी है कि राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूटसे कहीं अन्यत्र चले गये—ऐसा सुना गया है॥ १॥ वे कहते थे कि वहाँके पर्वत, नदी, झरने, वन और मुनियोंके निवासस्थान–ये सब हम देख आये हैं। वे सब कहने, सुनने और स्मरण करनेमें भी सुखदायक हैं तथा मनको भी बड़े सुगम और प्रिय जान पड़ते हैं॥ २॥ इसपर कोई अन्य नागरिक कहने लगे—'देखो, वाम विधाताने [यौवराज्यरूप] बड़े अवलम्बको तोड़कर यह विषम विषाद बढ़ा दिया कि जो मनोहर बालक सिरस-सुमनके समान सुकुमार थे उन्हें विन्ध्याचलपर चढ़ना पड़ा' ॥३॥ ये अप्रिय वचन सुनकर अयोध्याके सब नर-नारी अत्यन्त विकल हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय वे रामकी विरहव्यथाके कारण समझानेसे भी नहीं समझते थे॥ ४॥

[८९]

सुनी मैं, सखि! मंगल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निषादराजकी आजु भरत पहँ आई॥ १॥
कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल कुलगुर कहँ पहुँचाई।
गुर कृपालु संभ्रम पुर घर घर सादर सबहि सुनाई॥ २॥
बधि बिराध, सुर-साधु सुखी करि, ऋषि-सिख-आसिष पाई।
कुंभज-सिष्य समेत संग सिय, मुदित चले दोउ भाई॥ ३॥

बीच बिंध्य रेवा सुपास थल बसे हैं परन-गृह छाई।
पंथ-कथा रघुनाथ पथिककी तुलसिदास सुनि गाई॥ ४॥

'अरी सखि! मैंने एक मङ्गलमय शुभ समाचार सुना है। आज भरतजीके पास निषादराजकी एक शुभपत्रिका आयी है॥ १॥ हे आली! उस कुशलक्षेम-पत्रिकाको कुँवर भरतजीने तुरन्त ही कुलगुरु वसिष्ठजीके पास भेज दी थी और कृपालु गुरुजीने उसे हर्ष और आदरके सहित नगरमें घर-घर सबको सुनाया है॥ २॥ [उसमें लिखा है कि] दोनों भाई विराधका वधकर, देवता और साधु पुरुषोंको आनन्दितकर, ऋषियोंसे उपदेश और आशीर्वाद पा अगस्त्यजीके शिष्य सुतीक्ष्णके साथ सीताजीके सहित आनन्दपूर्वक आगे चले गये हैं॥ ३॥ और इस समय विन्ध्याचल और रेवा (नर्मदा) नदीके बीचमें एक सुभीतेके स्थानपर पत्तोंकी कुटी बनाकर बसे हुए हैं।' तुलसीदासने भी रघुनाथ बटोहीकी यह पन्थकथा [गुरु और पुराणादिसे] सुनकर गायी है॥ ४॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

अरण्यकाण्ड

भगवान्‌का वन-विहार

राग मलार

[१]

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टँकोर ॥१॥
कँपै कलाप बर बरहि फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर।
जहँ जहँ प्रभु बिचरत, तहँ तहँ सुख, दंडकबन कौतुक न थोर ॥२॥
सघन छाँह-तम रुचिर रजनि भ्रम, बदन-चंद चितवत चकोर।
तुलसी मुनि खग-मृगनि सराहत, भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥३॥

पथिक रामको देखकर मयूर आनन्दित होकर नाचते हैं। वे सीता-रामको देखकर मानो उन्हें बिजलीसहित सुन्दर मेघ समझते हैं

तथा उनके धनुषको इन्द्रधनुष और उसके टंकारको मेघकी गर्जना जानते हैं ॥ १ ॥ सुन्दर-सुन्दर मोर अपने पिच्छसमूहको हिलाते हुए नाचते हैं और कोकिलशावक सुमधुर गान करते हैं। प्रभु जहाँ-जहाँ जाते हैं वहीं-वहीं आनन्द दीख पड़ता है, इस प्रकार दण्डकवनमें कुछ कम कुतूहल नहीं है ॥ २ ॥ सघन वृक्षोंकी छायाके अन्धकारमें चाँदनी रातका भ्रम हो जानेसे चकोर प्रभुके मुखरूप चन्द्रमाकी ओर निहारने लगता है। तुलसीदासजी कहते हैं, इस समय मुनिजन भी पशु-पक्षियोंकी सराहना करते हैं और कहते हैं कि सारे सुकृत इन्हींके पक्षमें हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

[२]

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥१॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत, ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे ॥२॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख, लेत सरद-ससिकी छबि छोरे ॥३॥
जटा मुकुट सिर, सारस-नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे ॥४॥
चितवत चकित कुरंग-कुरंगिनि, सब भए मगन मदनके भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे ॥५॥

भगवान् राम अपने सुन्दर धनुषपर बाण चढ़ाये वनमें मृगया खेलते फिर रहे हैं। वह मधुर मूर्ति मेरे हृदयमें निवास करती

है ॥ १ ॥ उनकी कमरमें पीताम्बर और अति सुन्दर चार वाण हैं। उनकी ~~कैसी~~ चालको देखकर करोड़ों नट (नृत्यकार) हार मानते हैं। प्रभुके श्याम शरीरपर पसीनेकी बूँदें ऐसी शोभायमान हैं जैसे कोई नवीन मेघ अमृतके सरोवरमें डुबकी लगाकर निकला हो ॥ २ ॥ प्रभुके कन्धे बड़े सुन्दर हैं, भुजाएँ मनोहर हैं, वक्षःस्थल विशाल है और कण्ठकी रेखाएँ तो चित्तको चुराये लेती हैं। भगवान्का मुख देखनेसे बड़ा ही आनन्द देता है और मानो शरच्चन्द्रकी छबिको छीने लेता है ॥ ३ ॥ प्रभुके सिरपर जटाओंका मुकुट है और जिस समय वे भौंहें सिकोड़कर अपने नयनकमलोंसे निशानेकी ओर ताकते हैं उस समयकी अपार शोभा तो सारे वनमें भी नहीं समाती; वह मर्यादा छोड़कर मानो चारों दिशाओंमें उमड़कर फैल जाती है ॥ ४ ॥ उस समय मृग और मृगी भी चकित होकर उन्हींकी ओर देखने लगते हैं, मानो सब-के-सब प्रभुको कामदेव समझकर मोहित हो गये हैं। तुलसीदास कहते हैं, किन्तु उस समय प्रभु बाण नहीं छोड़ते, क्योंकि वे स्वभावसे ही थोड़े-से प्रेमके भी वशीभूत हो जानेवाले हैं ॥ ५ ॥

मारीच-वध

राग सोरठ

[३]

बैठे हैं राम-लषन अरु सीता।
पंचबटी बर परनकुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता ॥ १ ॥
कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रियसों कहति हँसि बाला।
पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला ॥ २ ॥

प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप-सर लीन्हें ।
चल्यो भाजि,फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें ॥ ३ ॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिनके पाछे ।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे ॥ ४ ॥

पञ्चवटीमें सुन्दर पर्णकुटीके भीतर राम, लक्ष्मण और सीता बैठे हुए हैं और आपसमें कुछ पवित्र कथाएँ कह रहे हैं ॥ १ ॥ इतनेमें ही एक सुवर्ण और मणिमय कपटमृगको देखकर सीताजीने अपने प्रियतमसे हँसकर कहा—'यह मनोहर मृग यदि पकड़ लिया जाय तो पालनेयोग्य है और यदि मारा भी जाय तो भी इसकी मृगछाला बड़ी सुन्दर है' ॥२॥ प्राणप्रियाके ये वचन सुन हँसकर श्रीरघुनाथजीने उनके प्रेमवश धीरेसे हाथमें धनुष-बाण लिये । उन्हें देखकर वह मृग बार-बार पीछेको देखता हुआ दौड़ चला; उसने विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी रक्षा करनेवाले भगवान् रामको पहचान लिया ॥ ३ ॥ सुवर्णमय मृगके पीछे भगवान्‌की अतिशय मधुर और मनोहर मूर्ति बड़ी शोभायमान जान पड़ती है । उस समयका प्रभुका दौड़ना, झुकना, देखना और थककर खड़ा रह जाना, तुलसीदासके हृदयमें अच्छी तरह बसा हुआ है ॥ ४ ॥

राग कल्याण

[४]

कर सर-धनु, कटि रुचिर निषंग ।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन-बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग ॥१॥

भुज बिसाल, कमनीय कंध-उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग ।
मनु मुकुता मनि मरकतगिरि पर लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग ॥२॥
नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट, बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।
तुलसिदास ऐसी मूरतिकी बलि, छबि बिलोकि लाजैं अमित अनंग ॥३॥

प्रभुके हाथमें धनुष-बाण हैं और कमरमें मनोहर तरकस है । प्रियाकी प्रीतिसे प्रेरित होकर वे वन्यमार्गोंमें कपटमय कनकमृगके साथ-साथ डोल रहे हैं ॥ १ ॥ उनकी भुजाएँ विशाल हैं, कन्धे और वक्षःस्थल सुन्दर हैं तथा साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें शोभायमान हैं, मानो मरकतमणिके पर्वतपर मनोहर सूर्यकिरणोंका संग पाकर मोती सुशोभित हो रहे हैं ॥ २ ॥ प्रभुके कमलके समान नेत्र हैं, सिरपर जटाओंका मुकुट है और उसके बीचमें पुष्पोंकी माला गुथी हुई है, जैसे शिवजीके मस्तकपर गङ्गाजी विराजमान हों । तुलसीदास ऐसी मूर्तिपर बलिहारी है, जिसकी छविको देखकर अनन्त कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

राग केदारा

[५]

राघव, भावति मोहि बिपिनकी बीथिन्ह धावनि ।
अरुन-कंज-बरन चरन सोकहरन, अंकुस-कुलिस-केतु-अंकित अवनि ।१।
सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि ।
कनक-कुरंग संग, साजे कर सर-चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि ।२।
सोहत सिर मुकुट जटा-पटल-निकर, सुमन-लता सहित रची बनवनि ।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भ्रकुटिन्हकी नवनि ।३।

देखत खग-निकर, मृग रवनिन्हजुत, थकित बिसारि जहाँ तहाँकी भँवनि
हरि-दरसन-फल पायो है ग्यान बिमल,जाँचत भगति,मुनि चाहत जवनि४
जिन्हके मन मगन भए हैं रस सगुन, तिन्हके लेखे अगुन-मुकुति कवनि।
श्रवन-सुखकरनि, भवसरिता-तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि।५।

हे राघव ! मुझे आपका वनकी वीथियोंमें दौड़ना बड़ा प्रिय जान पड़ता है, जिससे वहाँकी पृथिवी आपके अरुणकमलवर्ण शोकहारी चरणोंके अङ्कुश, वज्र एवं ध्वजा आदि चिह्नोंसे अङ्कित हो रही है ॥ १ ॥ अति सुन्दर श्याम शरीरपर रँगीला पीताम्बर धारण करना, कमरमें तरकस और फेंटा बाँधना, सुवर्णमृगके साथ हाथमें धनुष-बाण लिये दौड़ना, नेत्रकमलोंसे इधर-उधर निहारना ॥ २ ॥ तथा सिरपर पुष्प और लताओंके सहित जटाजूटके मुकुटकी रचना ये सब बड़े ही शोभायमान जान पड़ते हैं। इसी प्रकार आपके मनोहर मुखारविन्दपर पसीने शोभायमान हैं और उसी तरह मनोहर भ्रुकुटियोंका झुकाव भी है ॥ ३ ॥ उस समय पक्षिसमूह तथा मृगियोंके सहित मृग प्रभुकी सुन्दरता देखकर थकित हो जाते हैं और जहाँ-के-तहाँ भ्रमण करना छोड़ देते हैं। इन्हें प्रभुके दर्शनोंका फलस्वरूप निर्मलज्ञान तो मिल गया है, अब जिसे मुनिजन भी चाहते हैं उस अहैतुकी भक्तिकी याचना और करते हैं ॥ ४ ॥ भला जिनके चित्त सगुणस्वरूपके रसमें डूबे हुए हैं उनके लिये निर्गुण मुक्ति क्या चीज है ? तुलसीदास तो प्रभुकी श्रवणसुखदायिनी, संसारसरिन्निस्तारिणी पवित्र कीर्तिका ही गान करता है ॥ ५ ॥

राग सोरठ

[६]

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‌यो ।
लषन पुकारि, राम हरुए कहि, मरतहु बैर सँभार्‌यो ॥ १ ॥
सुनहु तात ! कोउ तुम्हहि पुकारत प्राननाथकी नाईं ।
कह्यो लषन, हत्यौ हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥ २ ॥
बंधु बिलोकि कहत तुलसी प्रभु 'भाई ! भली न कीन्हीं ।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥ ३ ॥

रघुनाथजीने बड़ी दूर जाकर उस मृगका वध किया । उसने 'हा लक्ष्मण !' ऐसा जोरसे पुकारकर, धीरेसे 'राम' कहा, और इस प्रकार मरते समय भी अपनी पूर्व-शत्रुताको याद रक्खा ॥ १ ॥ [तब सीताजीने कहा-] 'लक्ष्मण ! सुनो, तुम्हें प्राणनाथ प्रभु रामके समान कोई पुकार रहा है ।' तब लक्ष्मणजीने कहा-'कुछ नहीं, हरिण मारा गया है ।' इसपर सीताजीने कुपित होकर उन्हें हठपूर्वक बलात्कारसे भेज दिया ॥२॥ उस समय भाईको आता देख तुलसीदासके प्रभु भगवान् राम कहने लगे 'भैया ! तुमने अच्छा नहीं किया; मेरे विचारसे तो किसी दुष्टने इस प्रकार छल करके जानकीको हर लिया है' ॥ ३ ॥

सीता-हरण

[७]

आरत बचन कहति बैदेही ।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही' ॥ १ ॥

कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि, लषनलाल ! छिनि लीजै ॥ २ ॥
बनदेवनि सिय कहन कहति यों, छल करि नीच हरी हौं।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यौं, त्यौं पर-हाथ परी हौं ॥ ३ ॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
'पुत्रि पुत्रि ! जनि डरहि, न जैहै नीचु ? मीचु हौं आयो' ॥ ४ ॥

[लक्ष्मणजीके चले जानेपर रावण यतिवेष धारणकर पञ्चवटीमें आया और भिक्षाके मिससे सीताजीको पास बुला, उन्हें रथपर बिठाकर ले चला।] उस समय सीताजी आर्त वचन कहने लगीं और 'हाय ! परमप्रिय भगवान् राम मृगके साथ न जाने कितनी दूर निकल गये' ऐसा कहकर बहुत दुःख करके रोने लगीं ॥ १ ॥ 'हे लषणलाल ! मैंने तुमसे कठोर वचन कहे और तुम्हारी खींची हुई रेखाको लाँघा, सो हे तात ! तुम क्षमा करना और इस समय इस राजहंसीको वधिकके हाथमें पड़ी देखकर उससे छीन लो' ॥ २ ॥ फिर वनदेवताओंसे सीताजी इस प्रकार सन्देशा कहने लगीं—[तुम भगवान् रामसे कहना कि] 'मुझे नीच रावणने छल करके हर लिया है। हे नाथ ! कसाईके हाथ जैसे कामधेनु पड़ जाय उसी प्रकार इस समय मैं शत्रुके हाथमें पड़ गयी हूँ' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस समय सीताजीके मुखसे रघुनाथजीके नामकी ध्वनि सुनकर गृध्रराज क्रोधित होकर दौड़ा और बोला—'बेटी ! डर मत। अब यह नीच बचकर नहीं जा सकता; इसका कालरूप मैं आ गया हूँ' ॥ ४ ॥

जटायु-वध

[८]

फिरत न बारहि बार प्रचार्‌यो।
चपरि चोंच-चंगुल हय हति, रथ खंड खंड करि डार्‌यो ॥ १ ॥
बिरथ बिकल कियो, छीन लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलार्‌यौ।
तब असि काढ़ि, काटि पर, पाँवर लै प्रभु-प्रिया परार्‌यौ ॥ २ ॥
रामकाज खगराज आजु लर्‌यो, जियत न जानकि त्यागी।
तुलसिदास सुर-सिद्ध सराहत, धन्य बिहँग बड़भागी ॥ ३ ॥

जटायुने रावणको बारंबार फटकारा, परन्तु वह पीछे नहीं फिरा; तब उसने बड़ी फुर्तीसे चोंच और पञ्जोंसे घोड़ोंको मारकर रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १ ॥ फिर रावणको रथहीन करके व्याकुल कर दिया और सीताजीको छीन लिया। तब नीच रावणने बहुतसे घावोंसे व्यथित हो तलवार निकालकर उसके पंख काट डाले और प्रभुकी प्राणप्रिया सीताजीको लेकर चल दिया ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय देवता और सिद्धगण जटायुकी प्रशंसा करने लगे कि देखो, आज रामकार्यके लिये पक्षिराजने रावणसे युद्ध किया और जीते-जी जानकीको नहीं छोड़ा। बड़भागी जटायु धन्य हैं ॥ ३ ॥

रामकी वियोगव्यथा

राग गौरी

[९]

हेमको हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि
लषन ललित कर लिये मृगछाल।

आश्रम आवत चले, सगुन न भए भले,

फरके बाम बाहु, लोचन बिसाल ॥ १ ॥

सरित-जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,

अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल।

कोलिनि-कोल-किरात जहाँ तहाँ बिलखात;

बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ॥ २ ॥

तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि-करि-कपि,

हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल।

जे सुक-सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,

तेऊ न पढ़त, न पढ़ावैं मुनिबाल ॥ ३ ॥

समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,

तुलसी बिवरन परन-तृन-साल।

औरै सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु,

गहबर हिय कहैं कोसलपाल ॥ ४ ॥

इतनेहीमें रघुवंशमणि भगवान् राम कनकमृगको मारकर लौटे। लक्ष्मणजी अपने हाथमें उसकी मनोहर मृगछाला लिये हुए थे। आश्रमको आते समय उन्हें अच्छे शकुन नहीं हुए। उनकी वाम भुजा और विशाल नयन फड़क रहे थे ॥ १ ॥ नदियोंका जल मैला दिखायी देता था। कमल तालाबोंमें भी सूख रहे थे, भ्रमर गुञ्जार नहीं करते थे और हंस मनोहर शब्द नहीं करते थे। किरात, कोल और कोलिनी जहाँ-तहाँ बिलख रहे थे, वनके पक्षी और मृगसमूहकी ओर देखा नहीं जाता था ॥२॥ जानकीजीने जिन वृक्षोंको लगाया था, वे रसीले फल नहीं देते थे

और जिन सिंह, हाथी और वानरोंका उन्होंने पोषण किया था वे हुंकार भरकर देखते नहीं थे। जिन शुक और सारिकाओंको सीताजीने पाला था और माताके समान बड़े चावसे जिन्हें लाड़ लड़ाया था वे भी इस समय पढ़ते नहीं थे और न मुनिबालिकाएँ उन्हें पढ़ाती ही थीं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, जब प्रभुने देखा कि पत्ते और तिनकोंके छिद्रोंमेंसे देखकर प्राणप्रिया सीताजी स्वागत करनेके लिये नहीं आयीं तो वे सब रहस्य जानकर सहम गये और कोसलपाल प्रभु राम विह्वल हृदयसे कहने लगे—'आज सारा समाज और ही तरहका हो रहा है, मुझे कुशल नहीं जान पड़ती' ॥ ४ ॥

[१०]

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनिबधूटी, उजरी परनकुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठी न सलिल लिए, प्रेम प्रमुदित हिए,
प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे।
पल्लव-सालन हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी,
बिरह बिथकि लखि लषन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति,
तुलसी गहन बिनु दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो, तौलौं है सोचु खरो सो,
सिय-समाचार प्रभु जौलौं न लहे ॥ ३ ॥

वे आश्रमको देखकर भी भूल गये, क्योंकि वहाँके वृक्ष न फूले हैं, न फले हैं। भौंरे, पक्षी और मृग तो मानो वहाँ कभी थे ही नहीं; इसके सिवा न वहाँ मुनि थे और न मुनिपत्नियाँ ही। पर्णकुटी भी उजड़ी पड़ी थी। भगवान् पञ्चवटीको पहचानकर खड़े ही रह गये ॥१॥ वे कहने लगे—'आज प्राणप्रिया प्रसन्नचित्तसे जल लेकर नहीं उठी और न उसने कोई प्रिय वचन ही कहे [और दिनकी तरह] आज पत्तोंके झरोखोंमेंसे देखकर उसने आवाज़ भी नहीं दी।' इस प्रकार विरह-व्यथासे थकित देखकर उन्हें लक्ष्मणजीने पकड़ लिया ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, रघुनाथजी-की ऐसी दशा देखकर देवता लोग बड़े व्याकुल हो गये और वन अग्निके बिना ही दग्ध-से हो गये। तब भाई लक्ष्मणने भरोसा दिया कि जबतक प्रभुको सीताजीका समाचार नहीं मिलता तभीतक यह शोक खड़ा-सा रहेगा ॥ ३ ॥

राग सोरठ

[११]

जबहि सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई।
भए सुनि सजग, बिरहसरि पैरत थके थाह-सी पाई ॥ १ ॥
कसि तूनीर-तीर धनु-धर-धुर धीर बीर दोउ भाई।
पंचबटी-गोदहि प्रनाम करि, कुटी दाहिनी लाई ॥ २ ॥
चले बूझत बन-बेलि-बिटप, खग-मृग, अलि-अवलि सुहाई।
प्रभुकी दसा सो समौ कहिबेको कबि उर आह न आई ॥ ३ ॥
रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई, सुमिरि सनेह-सगाई ॥ ४ ॥

जिस समय देवताओंने सीताकी सारी सुधि कही उस समय भगवान् उसे सुनकर सचेत हो गये। वे विरहरूप नदीमें तैर रहे थे, सो तैरते-तैरते इस समय उन्हें कुछ सहारा-सा मिल गया ॥ १ ॥ तब धनुर्धरोंमें धुरन्धर दोनों धीर-वीर भाई तीर और तरकस कस, पञ्चवटी और गोदावरीको प्रणामकर कुटीकी प्रदक्षिणाकर वनके लता, वृक्ष, पक्षी, मृग और सुन्दर भ्रमरनिकरसे पूछते हुए आगे चले। उस समयकी प्रभुकी दशा वर्णन करनेके लिये कविके हृदयसे 'आह' भी नहीं निकली [अर्थात् वे भी शोकके कारण अवाक् रह गये] ॥२-३॥ इतनेमें ही राम-नामकी रटन सुन गृध्रराजको पहचानकर करुणामय प्रभु लौटे। तुलसीदास कहते हैं, उस समय जटायुका प्रेम-सम्बन्ध याद आनेसे भगवान् रामको प्रियाका भी स्मरण नहीं रहा ॥ ४ ॥

जटायुसे भेंट

[१२]

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन, ज्यों कलपलता दव दागी ॥ १ ॥
दसरथसों न प्रेम प्रतिपाल्यौ, हुतो जो सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचर पतिसों हठि न जानकी राखी ॥ २ ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए ॥ ३ ॥
बारबार कर मींजि, सीस धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई ॥ ४ ॥

राम-जटायु

[गृध्रराज मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहे हैं] 'हाय! मेरे हाथ एक भी बात नहीं लगी। जिस प्रकार वनमें कल्पलता—किसीके काम न आकर—दावानलसे दग्ध हो जाय, उसी प्रकार मेरा शरीर भी यों ही समाप्त हो गया ॥ १ ॥ दशरथजीसे हमारा प्रेम था—इसको सारा जगत् जानता है; किन्तु मैं उसे भी नहीं निभा सका, क्योंकि जिस समय राक्षसराज सीताको हरे लिये जाता था उस समय मैं उसे बलात्कारसे रोक न सका ॥ २ ॥ मरनेके समय भी मैं मुनिवेषधारी रामको न देख सका; अब प्रभुको सीताजीकी सुधि सुनाये बिना ही ये पामर प्राण प्रयाण करना चाहते हैं' ॥ ३ ॥ इस प्रकार गृध्रराज बारंबार हाथ मल सीस धुन-धुनकर पछताते हैं। इसी समय तुलसीदासके प्रभु दोनों कृपालु भाई वहाँ आ गये ॥ ४ ॥

[१३]

राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों ॥१॥
सुनहु, लषन! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता, बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥२॥
बहु बिधि राम कह्यौ तनु राखन, परम धीर नहि डोल्यौ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदनबिधु, बचन मनोहर बोल्यौ ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं? ॥ ४ ॥

रघुनाथजीने गृध्रको गोदमें उठा लिया और अपने नयनकमल-द्वारा स्नेहरूप पवित्र जलसे मानो अर्घ्यदान किया ॥ १ ॥ फिर कहने

लगे—'लक्ष्मण ! सुनो, वनमें पक्षिराजसे मिल लेनेपर मुझे पिताका मरना याद ही नहीं आया। परन्तु कुटिल विधाता मेरे इस सुखको सहन नहीं कर सका; इसीसे आज उसने यह बड़ा प्रबल पक्ष नष्ट कर दिया' ॥ २ ॥ फिर रघुनाथजीने जटायुसे शरीर रखनेके लिये बहुत प्रकार कहा; परन्तु वह परमधीर अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और अपने प्रेमको रोक, प्रभुका मुखचन्द्र देखकर ये मनोहर वचन बोला—॥ ३ ॥ 'हे प्रभो ! इस समय झूठे जीवनके लिये मैं धोखा नहीं खाऊँगा। भला जिनका नाम मरते समय मुनियोंको भी दुर्लभ है उन आपको मैं फिर कहाँ पाऊँगा' ॥ ४ ॥

[१४]

नीके कै जानत राम हियो हौं ।
प्रनतपाल, सेवक-कृपालु-चित, पितु-पटतरहि दियो हौं ॥ १ ॥
त्रिजगजोनि-गत गीध, जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं ।
महाराज सुकृती-समाज सब-ऊपर आजु कियो हौं ॥ २ ॥
श्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं ।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं ॥ ३ ॥

'हे राम ! मैं आपके हृदयको अच्छी तरह जानता हूँ। आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले और सेवकोंपर कृपालु हैं। इसीलिये मुझे पिताकी तुलना दी है ॥ १ ॥ मैं तिर्यक् योनिके अन्तर्गत गीध जातिमें उत्पन्न हुआ और बहुत-से नीच जन्तुओंको खाकर जगत्में जीवित रहा; उसे महाराज ! आज आपने पुण्यात्माओंके समाजमें सबसे ऊपर कर दिया ! ॥ २ ॥ अहा ! मैं कानोंसे आपके वचन सुन रहा हूँ, मुखसे

नाम ले रहा हूँ, नेत्रोंसे रूप निहार रहा हूँ और मुझे आपने स्वयं अपनी गोदमें ले रक्खा है। फिर बतलाइये, दूसरा ऐसा कौन है जो अपनेको मेरे समान बड़भागी बतला सके?' ॥ ३ ॥

[१५]

मेरे जान तात! कछू दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन-सेवासुख, मोहि पितुको सुख दीजै ॥ १ ॥
दिब्य-देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ माँगि लीजै।
हरि-हर-सुजस सुनाइ, दरस दै, लोग कृतारथ कीजै ॥ २ ॥
देखि बदन, सुनि बचन-अमिय, तन रामनयन-जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर! बलि, कहौं सुभाय, पतीजै ॥ ३ ॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल, होंहि तौ, क्यों न कहीजै?
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन हीं, परी मानो प्रेम सहीजै ॥ ४ ॥

[भगवान् राम कहते हैं-] 'हे तात! मेरे विचारसे तो आप कुछ दिन और जीवित रहिये। आप अपने इस पुत्रकी सेवाका सुख देखिये और मुझे पिताका आनन्द दीजिये ॥ १ ॥ अब विधाता आपपर प्रसन्न हैं; अतः आप दिव्यदेह और संसारमें इच्छाजीवन माँग लीजिये तथा भगवान् विष्णु और शंकरका सुयश सुनाकर अपना दर्शन देते हुए लोगोंको कृतार्थ कीजिये' ॥ २ ॥ तब पक्षिराज भगवान्के मुखकी ओर देखकर उनके अमृतमय वचन सुन तथा शरीरको रामके नयनजलसे भीगा जान हँसकर बोले—'रघुनाथजी! मैं बलिहारी जाऊँ। आप विश्वास कीजिये, मैं स्वभावसे ही कहता हूँ ॥ ३ ॥ मेरे मरनेके समान तो चारों फल भी नहीं हैं और यदि हों तो बतलाइये।' तुलसीदासजी

कहते हैं, इसका उत्तर भगवान्‌ने मौन ही दिया; इससे मानो गृध्रराजके प्रेमपर सही पड़ गयी ॥ ४ ॥

[१६]

मेरो सुनियो, तात ! सँदेसो ।
सीय-हरन जनि कहेहु पितासों, ह्वैहै अधिक अँदेसो ॥ १ ॥
रावरे पुन्यप्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं ।
कुलसमेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं ॥ २ ॥
सुनि प्रभु-बचन, राखि उर मूरति, चरनकमल सिर नाई ।
चल्यो नभ सुनत राम-कल-कीरति, अरु निज भाग बड़ाई ॥ ३ ॥
पितु-ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो ।
ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ ! तू चाहत सुख पायो ॥ ४ ॥

[रघुनाथजी बोले—] 'हे तात ! मेरा सन्देश सुनिये । पिताजीसे सीताजीके हरणकी बात मत कहना; क्योंकि इससे उनकी चिन्ता अधिक हो जायगी ॥ १ ॥ आपके पुण्यबलसे थोड़े ही दिनोंमें सब शत्रु अग्निमें दग्ध हो जायँगे; उस समय ये सब समाचार स्वयं रावण अपने कुटुम्बसहित देवसभामें जाकर सुना देगा' ॥ २ ॥ प्रभुके ये वचन सुन गृध्रराज उनकी मधुरमूर्ति हृदयमें धारणकर उनके चरणकमलोंमें सिर नवा रामकी पवित्र कीर्ति तथा अपने भाग्यकी बड़ाई सुनता आकाशमार्गसे चला गया ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीने गृध्रका पिताके समान संस्कार कर उसे निजधाम भेज दिया । तुलसीदास कहते हैं, रे शठ ! तू ऐसे प्रभुको भूलकर भी सुख पाना चाहता है ! ॥ ४ ॥

शबरीसे भेंट

राग सूहो

[१७]

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन-बाहु ।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु ॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली ।
तृन-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली ॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र-बरबानी भली ।
ज्यों कलप-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख-फली ॥ १ ॥

आज शबरी सोकर उठी है तो उसके बायें नेत्र और भुजा फड़क रहे हैं। ये सुहावने शकुन मुनियोंके भी मनको अगम उत्साहकी सूचना दे रहे हैं। उसके हृदयमें मुनियोंके लिये भी दुर्लभ आनन्द है, नेत्रोंमें जल भरा हुआ है और शरीर पुलकित हो रहा है। वह फूसकी पर्णकुटी बना, कलशमें जल भर अपने शकुनका फल देखनेके लिये चली। वह मंगलमय मनोरथ करती है और बारंबार मुनिवर मतङ्गकी शुभ वाणीका [कि तुझे श्रीरामजीका दर्शन होगा] स्मरण करती है, मानो सुन्दर फूलोंसे फूली हुई कल्पलता सम्पूर्ण सुकृतोंको एकत्रित कर आज सुखरूप फलसे युक्त हुई है ॥ १ ॥

प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम-लषन मेरे आजु ।
जानत जन-जियकी मृदु चित राम गरीबनिवाजु ॥
मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजिहैं गृह आइकै ।
ब्रह्मादि संकर-गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै ॥

लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै।
दुहु ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै ॥ २ ॥

[वह सोचती है—] अहा ! आज मेरे प्राणप्यारे पाहुने राम और लक्ष्मण आवेंगे ! दीनवत्सल मृदुलचित्त भगवान् राम भक्तोंके अन्तःकरणकी बात जानते हैं। वे मृदुलचित्त गरीबनिवाज आज मेरे घर आकर विराजेंगे। अब मैं ब्रह्मा, शंकर और पार्वती आदि देवेश्वरोंसे पूजित भगवान् रामको जाकर पूजूँगी ! रघुनाथजीका पतितपावन बाना पाकर अब मैं उन्हें अपने प्रभुरूपसे देखकर लोक-परलोक दोनों ओरका लाभ अघाकर लूटूँगी; और उनका गुण गाकर तीसरे तुलसीदास भी लाभान्वित होंगे ॥ २ ॥

दोना रुचिर रचे पूरन कंद-मूल, फल-फूल।
अनुपम अमियहुतें, अंबक अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सब आनिकै।
सुंदर सनेहसुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पंथ भूपर पानिकै।
दोउ भाइ आये सबरिकाके प्रेम-पन पहिचानिकै ॥ ३ ॥

फिर शबरीने कन्द, मूल, फल और फूलोंसे भरे हुए सुन्दर दोने बनाये, जो बड़े ही अनुपम, अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट और नेत्रोंसे देखनेमें सुहावने थे। माता जिस प्रकार अपने बालकके लिये अच्छी-अच्छी चीज़ें रख छोड़ती है उसी प्रकार उसने वे प्रिय और दर्शनीय फलादि भगवान्के लिये लाकर उन्हें मानो अमृतसे भी हजारों गुने अधिक स्नेहरसमें डुबोकर रक्खा। वह क्षणमें घरके भीतर चली जाती

और क्षणभरमें ही बाहर आकर भृकुटिपर हाथ रखकर मार्गकी ओर ताकने लगती। इसी समय शबरीका ऐसा प्रेम और व्रत जानकर दोनों भाई उसके यहाँ आये ॥ ३ ॥

स्रवन सुनत चली, आवत देखि लषन-रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि, कैधों सति भाउ' ॥
सति भाउ कै सपनो ? निहारि कुमार कोसलरायके।
गहे चरन, जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-कायके ॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ-सुख चित चाय कै।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भायकै ॥ ४ ॥

प्रभुका आगमन कानोंसे सुनकर वह आगे बढ़ी और फिर राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको देख स्नेहसे शिथिल होकर कहने लगी–'अरे विधाता! यह कोई स्वप्न है या सच्ची घटना है?' कोसलराज महाराज दशरथके पुत्रोंको देखकर उसने 'यह स्वप्न है या सच्ची घटना?' ऐसे कहते हुए उनके चरण पकड़े जो विनीत भक्तोंके मन, वचन और शरीरके पापोंको दूर करनेवाले हैं। शबरीके हृदयमें, यह सोचकर कि 'मैं तो छोटे ही सौभाग्यकी पात्री हूँ' इस परम लाभ और सुखको पाकर आनन्दका समुद्र उमड़ आया। भगवान् तो केवल भावके ही भूखे हैं अतः उन्होंने तो भाई लक्ष्मणके सहित उसका माताके समान आदर किया ॥ ४ ॥

प्रेम-पट पाँवड़े देत, सुअरघ बिलोचन-बारि।
आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥

पद-पंकजात पखारि पूजे, पंथ-श्रम-बिरहित भये।
फल-फूल अंकुर-मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि, परचारि-फल सबरी दये॥५॥

शबरी प्रेमरूप वस्त्रके पाँवड़े बिछाती और नेत्रजलसे अर्घ्य देती भगवान्‌को अपने आश्रमपर ले आयी और उनके चरणकमल धोकर उन्हें आसन दिये। भगवान्‌के चरणकमलोंको धोकर उसने उनका पूजन किया। इससे उनका मार्गका श्रम जाता रहा। फिर उसने फल, फूल, अङ्कुर और मूल आदि नये-नये दोनोंमें सजाकर भगवान्‌के आगे रक्खे और प्रभु उनका स्वाद सराह-सराहकर पुलकित-शरीर हो खाने लगे, मानो वे आदर उत्पन्न करते थे। भगवान् रामने [अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष–इन] चारों फलोंको शबरीके [कन्द, मूल, फूल और फल–इन] चार फलोंसे जला (तिरस्कृत) कर उसे आग्रहपूर्वक [उसकी उपासनाके] फल दिये॥५॥

सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥
प्रभु खात माँगत, देति सबरी, राम भोगी जागके।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध-सिव-सनकादि भाजन भागके॥
बालक सुमित्रा कौसिलाके पाहुने फल-सागके।
सुनि समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुरागके॥६॥

इस समय देवतालोग पुष्प बरसाकर प्रसन्न हो रहे हैं और मुनिजन प्रसन्नचित्तसे प्रशंसा करते हुए आनन्दित होते हैं कि 'आज कैसी रुचि और कैसी क्षुधासे लक्ष्मणजीके सहित भगवान् राम माँग-माँगकर फल खा रहे हैं ! प्रभु राम तो सम्पूर्ण यज्ञोंके भोक्ता हैं, सो फल खाते हैं और माँग रहे हैं तथा शबरी भी बराबर दे रही है'—इस प्रकार बड़े भाग्यशाली शिव और सनकादि सिद्धगण पुलकित होकर शबरीकी प्रशंसा करते हैं। अहा! माता कौसल्या और सुमित्राके पुत्र [जो तरह-तरहके व्यञ्जनोंका भोग लगानेवाले हैं] आज फल और शाककी महमानी मार रहे हैं ! तुलसीदास कहते हैं, यह सुन और समझकर तू यह निश्चय जान कि भगवान् राम एकमात्र निर्मल प्रेमके अधीन हैं ॥ ६ ॥

रघुबर अँचइ उठे, सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई, पुरई मंजु मनोरथ मोरि ॥
पुरई मनोरथ, स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ-अवगुनन्हिकी कोठरी करि कृपा मुद-मंगल भरी ॥
तापस-किरातिनि-कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ, आयसु पाइ गवने, परमनिधि पाले परी ॥ ७ ॥

[इस प्रकार भोजन करनेके अनन्तर] प्रभु आचमन करके उठे। तब शबरीने प्रणामकर हाथ जोड़कर कहा—'मैं बलि-बलि जाती हूँ, आज आपने मेरी प्रिय कामना पूरी कर दी। आपने मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया और स्वार्थ तथा परमार्थ भी पूरा कर दिया। मैं पाप और

अवगुणोंकी कोठरी थी, जिसे आपने कृपा करके आनन्द और मङ्गलसे भर दिया।' उस समय तपस्वी, किरातिनी और कोल आदि वनवासियोंने प्रभुकी मृदुल और मनोहर मूर्ति हृदयमें धारण की तथा प्रभुको सिर नवा, उनकी आज्ञा पा, भक्तिरूप परमधन प्राप्तकर अपने-अपने धामोंको गये ॥ ७ ॥

सिय-सुधि सब कही नख-सिख निरखि निरखि दोउ भाइ ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम, न प्रेम अघाइ ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहि सो गई ।
तेहि मातु-ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई ॥
तुलसी-भनित, सबरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई ।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई ॥ ८ ॥

शबरीने दोनों भाइयोंको नखसे शिखातक देख-देखकर उन्हें सीताजीका सारा समाचार सुना दिया। चलते समय उसने भगवान्की बारंबार प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम किया; उस समय उसका हृदय प्रेमसे अघाता नहीं था। इस प्रकार अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हृदयमें भगवान् रामको धारणकर वह भगवान्के धामको चली गयी। तब रघुनाथजीने उसे माताके समान अपने हाथोंसे जलाञ्जलि दी। तुलसीदासकी कविता, शबरीकी विनय और रघुनाथजीका करुणामय स्वभाव गाने, सुनने और समझनेसे हृदयमें प्रभुके चरणोंकी नित्य नयी भक्ति होती है ॥ ८ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

किष्किन्धाकाण्ड

ऋष्यमूकपर राम

राग केदारा

[१]

भूषन-बसन बिलोकत सियके।
प्रेम-बिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरजनयन नीर भरे पियके ॥ १ ॥
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील-सनेह-सुगुनगन तियके।
स्वामि-दसा लखि लषन-सखा-कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घियके।२।
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकियके।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक बीररस बियके ॥ ३ ॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल-उपाय उघटत निज हियके।
तुलसिदास यह समउ कहेतें कबि लागत निपट निठुर जड़ जियके ॥४॥

[ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचनेपर भगवान् रामकी सुग्रीवके साथ मित्रता हुई। उन्होंने भगवान्को सीताजीके वस्त्राभूषण, जिन्हें वे रावणके साथ आकाशमार्गसे जाते समय ऋष्यमूक पर्वतपर वानरोंको देखकर डाल गयी थीं, दिखलाये । उस समय] सीताजीके वस्त्र और आभूषणोंको देखते ही भगवान्का मन प्रेमसे अधीर हो गया, शरीरमें कम्प और पुलकावली छा गयी तथा नेत्रकमलोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ सीताजीके शील, स्नेह और शुभगुणोंको कहनेमें तो प्रभु सकुचाते हैं, परन्तु उनकी याद आनेसे हृदय उमड़ रहा है । स्वामीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी, सखा सुग्रीव तथा अन्य वानरगण इस प्रकार द्रवीभूत हो गये जैसे अग्निका संयोग पाकर घीके मटके चूने लगते हैं ॥ २ ॥ सीताजीके गुणोंको मन-ही-मन सोचकर, उनके वियोगसे बड़ी हानि मान वे शोक करते हैं, मानो उनके समस्त पुण्यफल समाप्त हो गये। उस समय जाम्बवान्ने कुछ विवेक और वीररससे सने हुए वचन कहे ॥ ३ ॥ उन्हें सुन और समझकर उन धीर-वीरोंने आपसमें अपने बल और हृदयमें सोचे हुए उपाय प्रकट किये। तुलसीदास कहते हैं, उस समयका वर्णन करनेसे कवि भी अपने हृदयके सर्वथा निठुर और जड़ जान पड़ते हैं ॥ ४ ॥

सीताजीकी खोजका आदेश

[२]

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है ।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहि सिय-सोधु लह्यो है ॥ १ ॥

जा कारन तजि लोकलाज, तनु राखि बियोग सह्यो है।
ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है ॥ २ ॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमित-मुख, उतरु न देन चह्यो है।
आइ गए हरि-जूथ, देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है ॥ ३ ॥
पठये बदि बदि अवधि दसहु दिसि, चले बलु सबनि गह्यो है।
तुलसी सिय लगि भव-दधिनिधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है ॥४॥

प्रभुने वानरराज सुग्रीवको बुलाकर कहा–'भाई! वर्षा ऋतु बीत गयी और शरद् ऋतु भी आ गयी, किन्तु अभीतक तुमने सीताकी कोई खोज नहीं की ॥ १ ॥ जिसके लिये मैंने लोकलज्जाको त्यागकर, शरीरको जीवित रख यह वियोग सहन किया है, हे कपिराज! उसका आजतक तुमने कोई भी काम पूरा नहीं किया' ॥ २ ॥ यह सुन सुग्रीवने भयभीत हो अपना मुख नीचा कर लिया और उसे कुछ भी उत्तर देनेका साहस न हुआ। इतनेहीमें किष्किन्धा नगरमें वानरोंके बहुत-से यूथ आ गये, जिन्हें देखकर सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ३ ॥ उन सबको लौटनेकी अवधि निश्चित कर दसों दिशाओंमें भेजा गया और उन सबने भी इस कार्यके लिये हृदयमें बल धारण किया। तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान् सीताजीके लिये एक बार फिर संसार-समुद्रको मथना चाहते हैं ॥ ४ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

सुन्दरकाण्ड

अशोकवनमें हनुमान्

राग केदारा

[१]

रजायसु रामको जब पायो ।
गाल मेलि मुद्रिका, मुदित मन पवनपूत सिर नायो ॥ १ ॥
भालुनाथ-नल-नील साथ चले, बली बालिको जायो ।
फरकि सुअँग भए सगुन, कहत मानो मग मुद-मंगल छायो ॥ २ ॥
देखि बिवर, सुधि पाइ गीधसों, सबनि अपनो बलु मायो ।
सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि, लंक लूक-सो आयो ॥ ३ ॥
खोजत घर घर जनु दरिद्र मनि फिरत लागि धन धायो ।
तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु, भूरिभाग भयो भायो ॥ ४ ॥

जिस समय भगवान् रामकी आज्ञा मिली उस समय पवनपुत्र हनुमान्‌जीने [भगवान्‌की दी हुई] मुद्रिका (अँगूठी) को मुखमें डाल उन्हें प्रसन्नचित्तसे सिर नवाया ॥ १ ॥ उनके साथ जाम्बवान्, नल, नील और बालिसुवन वीरवर अङ्गद चले। चलते समय उनके शुभ अङ्ग फड़ककर शकुन हुए, जो मानो मार्गके आनन्दपूर्ण और मङ्गलमय होनेकी सूचना देते थे ॥ २ ॥ मार्गमें उन्होंने एक गुहाका निरीक्षण किया और फिर गृध्रराज सम्पातीसे सीताजीका पता पा सबने अपने-अपने बलका अनुमान किया । [अन्तमें जाम्बवान्‌के उत्तेजित करनेपर] हनुमान्‌जी भगवान् रामका स्मरण कर, समुद्रकी ओर ताक-कर और उसे लाँघकर आकाशमें चलती हुई उल्काकी तरह लङ्कापुरीमें आये ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, जिस प्रकार धनके लिये भटकता हुआ दरिद्री मणि खोजता फिरता है उसी प्रकार घर-घरमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अन्तमें सीताजीका दर्शन होनेपर उनका शरीर पुलकित हो गया। इस प्रकार अभीष्ट सिद्ध होनेपर उन्होंने अपनेको बड़भागी समझा ॥ ४ ॥

[२]

देखी जानकी जब जाइ ।
परम धीर समीरसुतके प्रेम उर न समाइ ॥ १ ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि ।
मनहु मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि ॥ २ ॥
रटति निसिबासर निरंतर राम राजिवनैन ।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन ॥ ३ ॥

नाथके गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि ।
कथा सुनि उठि लई कर बर, रुचिर नाम निहारि ॥ ४ ॥
हृदय हरष-बिषाद अति पति-मुद्रिका पहिचानि ।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि ?॥ ५ ॥

जिस समय परमधीर हनुमान्‌जीने लङ्कामें पहुँचकर सीताजीको देखा उस समय उनके हृदयमें प्रेम नहीं समाता था ॥ १ ॥ उनका कृश शरीर स्वभावसे ही शोभायमान था, उसपर उड़-उड़कर धूल जम गयी थी, सो ऐसा जान पड़ता था, मानो कामदेव भूलसे अपनी मोहिनीमणिको भूल गया हो ॥ २ ॥ वे रात-दिन निरन्तर कमलनयन भगवान् रामका नाम ही रट रही थीं; उनके उन शोकसन्तप्त वचनोंको सुनकर विरहिणी स्त्रियोंका शत्रु [शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन] उनके पास नहीं जाता था [क्योंकि उसे स्वयं उस विरहाग्निमें दग्ध हो जानेका भय था] ॥ ३ ॥ यह देख हनुमान्‌जीने प्रभु रामकी गुणगाथा कहते हुए वह मुद्रिका डाल दी । सीताजीने वह कथा सुनकर और उसपर भगवान्‌का मनोहर नाम देखकर वह मुद्रिका अपने सुन्दर हाथमें उठा ली ॥ ४ ॥ पतिकी मुद्रिकाको पहचानकर उनके हृदयमें बड़ा ही हर्ष और विषाद हुआ * । उस दशाका तुलसीदास किस प्रकार वर्णन कर सकता है ॥ ५ ॥

---

* प्रियतमकी वस्तु मिली—इससे तो हर्ष हुआ; परन्तु यह सोचकर कि यह यहाँ कैसे आयी, कोई अनिष्ट तो नहीं हो गया—दुःख हुआ ।

राग सोरठ

[३]

बोलि, बलि, मूँदरी ! सानुज कुसल कोसलपालु ।
अमिय-बचन सुनाइ मेटहि बिरह-ज्वाला-जालु ॥ १ ॥
कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु ।
रोष छमि सुधि करत कबहू ललित लछिमन लालु ? ॥ २ ॥
परसपर पति-देवरहि का होति चरचा चालु ।
देवि ! कहु केहि हेत बोले बिपुल बानर-भालु ॥ ३ ॥
सीलनिधि समरथ सुसाहिब दीनबंधु दयालु ।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु ॥ ४ ॥

[वे कहने लगीं-] 'अरी मुद्रिके ! मैं बलिहारी जाऊँ, बता तो क्या भाईसहित कृपालु कोसलनाथ कुशलसे हैं ? तू अमृतमय वचन सुनाकर मेरी विरहजनित ज्वालामालाओंको शान्त कर दे ॥ १ ॥ हाय ! हित करते हुए भी मैंने लक्ष्मणजीका तिरस्कार किया—मेरे हृदयमें अभीतक उसका खेद बना हुआ है ! सो ललित लषणलाल अपने रोषको शान्त कर क्या कभी मेरी सुधि करते हैं? ॥ २ ॥ पतिदेव और देवरजीमें आजकल किस विषयकी चर्चा चला करती है ? हे देवि ! बता तो, उन्होंने बहुत-से रीछ-वानर किसलिये बुलाये हैं ? ॥३॥ अरी मुद्रिके ! प्रभु तो शीलके भण्डार, सब प्रकार समर्थ, सच्चे स्वामी, दीनबन्धु और परम दयालु हैं । मालूम होता है अभी प्रभुको किसीने मेरा समाचार नहीं सुनाया [इसीलिये उनके आनेमें इतना विलम्ब हुआ है]' ॥ ४ ॥

[४]

सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कौसल-राउ !
सील-सदन सनेह-सागर सहज सरल सुभाउ ॥ १ ॥
नींद-भूख न देवरहि, परिहरेको पछिताउ ।
धीरधुर रघुबीरको नहि सपनेहू चित चाउ ॥ २ ॥
सोधु बिनु, अनुरोध रितुके, बोध बिहित उपाउ ।
करत हैं सोइ समय साधन, फलति बनत बनाउ ॥ ३ ॥
पठए कपि दिसि दसहु, जे प्रभुकाज कुटिल न काउ ।
बोलि लियो हनुमान करि सनमान, जानि समाउ ॥ ४ ॥
दई हौं संकेत कहि, कुसलात सियहि सुनाउ ।
देखि दुर्ग, बिसेषि जानकि, जानि रिपु-गति आउ ॥ ५ ॥
कियो सीय प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहि लखाउ ।
पाइ अवसर, नाइ सिर तुलसीस-गुनगन गाउ ॥ ६ ॥

[यह सुनकर मुद्रिका कहने लगी-] कृपामय कोसलनाथ अपने दल-बल और लक्ष्मणजीके सहित कुशलपूर्वक हैं। वे तो स्वभावसे ही शीलके मन्दिर, स्नेहसमुद्र और सरल स्वभाव हैं ॥ १ ॥ तुम्हारे देवरको भी न नींद है और न भूख; उन्हें तुम्हें छोड़कर चले जानेका बड़ा ही पश्चात्ताप है तथा धीरधुरन्धर रघुनाथजीके चित्तमें तो स्वप्नमें भी प्रसन्नता नहीं है ॥ २ ॥ ऋतुके अनुरोधसे [अर्थात् वर्षा ऋतुके कारण] तुम्हारी कोई शोध (खोज) न हो सकनेके कारण [वे कुछ भी नहीं कर सके]। अब तुम्हारा पता पाते ही वे उपाय करेंगे। इस समय उसीका साधन किया गया है। इसका

फल [अर्थात् तुम्हारी सुधि] मिलते ही सब बनाव बन जायगा ॥३॥ उन्होंने दसों दिशाओंमें बहुत-से वानर भेजे हैं, जिनमेंसे कोई भी प्रभुका कार्य करनेमें कुण्ठित होनेवाला नहीं है । फिर भी इस कार्यमें समर्थ समझकर उन्होंने आदरपूर्वक हनुमान्‌को अपने पास बुलाया ॥ ४ ॥ और मुझे देकर उनसे एकान्तमें कहा कि 'सीताको हमारा कुशल-समाचार सुनाना और शत्रुके दुर्गको देख, उसकी गति (शक्ति) जान तथा विशेषतः जानकीसे मिलकर आ जाना' ॥ ५ ॥ इस प्रकार मुद्रिकाने सीताजीको समझाया और उन्हें हनुमान्‌जी दिखला दिये । तब हनुमान्‌जी अवसर जान सीताजीको सिर नवा तुलसीदासके प्रभुके गुणगण गाने लगे ॥ ६ ॥

[५]

सुवन समीरको धीरधुरीन, बीर बड़ोइ ।
देखि गति सिय-मुद्रिकाकी बाल ज्यों दियो रोइ ॥ १ ॥
अकनि कटु बानी कुटिलकी क्रोध-बिंध्य बढ़ोइ ।
सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ ॥ २ ॥
बुद्धि-बल, साहस-पराक्रम अछत राखे गोइ ।
सकल साज-समाज साधक समउ, कहै सब कोइ ॥ ३ ॥
उतरि तरुतें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ ।
चुके अवसर मनहु सुजनहि सुजन सनमुख होइ ॥ ४ ॥
कहे बचन बिनीत प्रीति-प्रतीति-नीति निचोइ ।
सीय सुनि हनुमान जान्यौ भली भाँति भलोइ ॥ ५ ॥

देवि ! बिनु करतूति कहिबो जानिहैं लघु लोइ ।
कहौंगो मुखकी समरसरि कालि कारिख धोइ ॥ ६ ॥
करत कछू न बनत, हरिहिय हरष-सोक समोइ ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ ॥ ७ ॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी बड़े ही वीर और धीरधुरीण थे; किन्तु सीताजी और मुद्रिकाकी दशा देखकर वे बालकके समान रो पड़े ॥ १ ॥ कुटिल रावणका कटु भाषण सुनकर हनुमान्‌जीका क्रोधरूप विन्ध्याचल बढ़ने लगा था; परन्तु हृदयमें भगवान्‌की आज्ञारूप अगस्त्यजीको देखकर वह संकोचवश सम अवस्थामें ही रह गया * ॥ २ ॥ उन्होंने बुद्धि, बल, साहस और पराक्रम आदि सब गुणोंको होते हुए भी दबा लिया, क्योंकि 'सब साज-समाज समयपर ही सिद्धि देनेवाला होता है' ऐसा सब कोई कहते हैं ॥ ३ ॥ हनुमान्‌जीने वृक्षसे उतर सीताजीके चरणोंमें नमस्कार किया और सकुचाकर इस प्रकार सोचने लगे जैसे कोई सत्पुरुष किसी सज्जनका काम पड़नेपर उसमें चूककर फिर उसके सामने आवे ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने प्रीति, प्रतीति और नीतिसे भरे हुए

---

* एक बार विन्ध्याचलने सूर्यसे मेरुप्रदक्षिणाके समान अपनी परिक्रमा करनेको कहा । सूर्यने इसपर कुछ ध्यान न दिया, तब वह सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ने लगा । इससे अनिष्टकी आशङ्का कर देवताओंने उसके गुरु अगस्त्यजीसे उसकी प्रगति रोकनेकी प्रार्थना की । अगस्त्यजी उसके पास गये । उन्हें देखकर विन्ध्यने साष्टाङ्ग प्रणाम किया । तब अगस्त्यजी—यह कहकर कि जबतक मैं न आऊँ उठना मत—चले गये । वे अभीतक वहाँ लौटकर नहीं आये, और विन्ध्याचल भी ज्यों-का-त्यों लम्बा पड़ा हुआ है । —महाभारत

अति विनीत वचन कहे। उन्हें सुनकर सीताजीने हनुमान्‌जीको भली प्रकार सत्पुरुष ही समझा ॥ ५ ॥ वे बोले–'हे देवि! कोई कर्तव्य किये बिना केवल मुखसे ही कहनेसे लोग मुझे तुच्छ समझेंगे। अब तो मैं कल युद्धरूप सरितामें अपने मुखकी कालिमा धोकर ही आपसे कहूँगा' ॥ ६ ॥ हृदयमें हर्ष और शोकका उद्वेग होनेसे हनुमान्‌जी कोई कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाते थे, अन्तमें तुलसीके प्रभु पवन-नन्दनने अपने मनमें कहा कि 'लङ्काको अंग्निसमूह कर दूँगा अर्थात् भस्म कर डालूँगा' (इस प्रकार उनकी आजकी दबी हुई क्रोधाग्निका कल लङ्कामें प्रकट प्रमाण मिला भी है) ॥ ७ ॥

राग केदारा

[६]

हौं रघुबंसमनि को दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि! जानि मारुतपूत ॥ १ ॥
मैं सुनी बातैं असैली, जे कही निसिचर नीच।
क्यों न मारै गाल, बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥ २ ॥
निदरि अरि, रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज।
डरौं आयसु-भंगतें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥ ३ ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु, दिन चारिमें दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि! उर धरु धीर ॥ ४ ॥

---

१ घमोइका अर्थ अग्नि ही सङ्गत है (गीतावली सुन्दरकाण्ड पद नं० २३ 'पावक न होइ जातुधान-बेनु-बनमैं')।

चित्रकूट-कथा, कुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद-सेवक नाथको लखि दई अचल असीस ॥ ५ ॥
भये सीतल स्रवन-तन-मन सुने बचन-पियूष।
दास तुलसी रही नयननि दरसहीकी भूख ॥ ६ ॥

'माता जानकि! विश्वास करो, मैं रघुवंशमणि भगवान् रामका दूत हूँ; मुझे साक्षात् पवनपुत्र समझो ॥ १ ॥ नीच निशाचर रावणने जो अश्लील बातें कही हैं वे मैंने सब सुन ली हैं। वह कालकी डाढ़ोंके बीचमें पड़ा हुआ है, फिर बैठा-बैठा इस प्रकार गाल क्यों न बजावेगा? ॥ २ ॥ मैं रघुनाथजीकी कृपासे आज ही शत्रुका तिरस्कार कर हठपूर्वक तुम्हें ले जा सकता हूँ; किन्तु स्वामीकी आज्ञा भङ्ग करनेसे डरता हूँ और इससे देवताओंका काम भी बिगड़ता है ॥ ३ ॥ मातः! तुम हृदयमें धैर्य धारण करो; दोनों भाई चार दिन पीछे ही समुद्रका पुल बाँध, शत्रुको परास्त कर रीछ और वानरोंकी सेनाके सहित तुमसे मिलेंगे' ॥ ४ ॥ फिर हनुमान्‌जीने चित्रकूटकी कथा[1] और रघुनाथजीकी कुशल कह उन्हें सिर नवाया। इससे उन्हें स्वामीका प्रिय दास समझकर सीताजीने आशीर्वाद दिया ॥ ५ ॥ हनुमान्‌जीके वचनामृत सुनकर सीताजीके कान, शरीर और हृदय तो शीतल हो गये; अब नेत्रोंको केवल दर्शनोंकी ही भूख रह गयी ॥ ६ ॥

---

१ इन्द्रके पुत्र जयन्तकी कथा। इस कथाको सुनानेमें हनुमान्‌जीके दो अभिप्राय थे। एक तो यह कि जिस प्रकार तुमसे विरोध करनेके कारण जयन्तकी दुर्दशा हुई थी, उसी प्रकार अब रावण भी बच नहीं सकता। दूसरे इसे सुनाकर उन्होंने रघुनाथजीके प्रिय दूत होनेकी साक्षी दी, क्योंकि यह कथा बहुत गुप्त थी।

[७]

तात ! तोहूसों कहत होति हिये गलानि ।
मनको प्रथम पन समुझि अछत तनु,
लखि नइ गति भइ मति मलानि ॥ १ ॥
पियको बचन परिहर्‍यो जियके भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम-बिरह तौ सनेह सरबसु, सुत !
औसरको चूकिबो सरिस न हानि ॥ २ ॥
आरज-सुवनके तो दया दुवनहुपर,
मोहि सोच, मोतें सब बिधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबहीको,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि ॥ ३ ॥
नेम तौ पपीहाहीके, प्रेम प्यारो मीनहीके,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्यों ही त्योंही
रही, प्रीति परी सही, बिधिसों न बसानि ॥ ४ ॥

'हे तात ! इस समय तुमसे बात करते हुए भी चित्तमें खेद होता है। मेरे चित्तका जो पहला प्रण था [कि पतिके बिना प्राण नहीं रक्खूँगी] उसे यादकर और शरीरको विद्यमान जान, इस नयी गतिको देखकर मेरी बुद्धि मलिन हो रही है ॥ १ ॥ अपने चित्तका विश्वास करके ही मैंने पतिके वचनका उल्लङ्घन किया और बड़ा लाभ समझकर उनके साथ वनको चली आयी। हे पुत्र ! पतिका वियोग तो स्नेहका

सर्वस्व लुटना है [उस समय मुझे अवश्य प्राण त्याग देने चाहिये थे, परन्तु मुझसे ऐसा नहीं बना] सच है, अवसर चूक जानेके समान और कोई हानि नहीं है ॥ २ ॥ आर्यपुत्रकी तो शत्रुओंपर भी दया है; मुझे तो इसी बातका शोक है कि मुझसे सब प्रकार उलटा ही हुआ है। प्रभुने अपनी भलमनसाहतसे ही सबकी भलाई की है; मेरे उलटे दिन होनेके कारण ही इस समय उन्हें अपना स्वभाव विस्मृत हो गया है ॥ ३ ॥ भैया! नियम तो पपीहाका ही है और प्यारा प्रेम तो मछलीमें ही देखा जाता है।' तुलसीदास कहते हैं, सीताजीने ये बातें तो हृदयमें अच्छी तरह लाकर कहीं। परन्तु इतना कहा सो कहा, फिर वे ज्यों-की-त्यों रह गयीं। इससे उनकी प्रीतिपर तो सही पड़ गयी, परन्तु विधातासे कुछ नहीं बसाता ॥ ४ ॥

[८]

मातु ! काहेको कहति अति बचन दीन ?
तबकी तुही जानति, अबकी हौं ही कहत,
सबके जियकी जानत प्रभु प्रबीन ॥ १ ॥
ऐसे तो सोचहिं न्याय निठुर-नायक-रत
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन।
करुनानिधानको तो ज्यों ज्यों तनु छीन भयो,
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥ २ ॥
सियको सनेह, रघुबरकी दसा सुमिरि
पवनपूत देखि भयो प्रीति-लीन।
तुलसी जनको जननी प्रबोध कियो,
'समुझि तात ! जग बिधि-अधीन' ॥ ३ ॥

[हनुमान्‌जी कहने लगे—] 'माता ! तुम ऐसे अत्यन्त दीन वचन क्यों कहती हो ? पहले रघुनाथजीकी तुम्हारे प्रति कैसी प्रीति थी सो तो तुम्हींको मालूम है; किन्तु अबकी तो मैं भी कह सकता हूँ। प्रभु बड़े प्रवीण हैं, वे सबके हृदयकी बात जानते हैं ॥ १ ॥ ऐसा शोक तो निष्ठुर प्रियतममें प्रीति करनेवाले शलभ, पपीहा, मृग, कमल और मत्स्य आदि किया करते हैं, सो ठीक ही है; परन्तु करुणानिधान भगवान् रामका तो जैसे-जैसे शरीर दुर्बल होता है वैसे-वैसे ही उनका मन तुम्हारे प्रेमसे पुष्ट होता जाता है ॥ २ ॥ इस समय सीताका स्नेह और रघुनाथजीकी दशा स्मरणकर पवनपुत्र प्रेममें डूब गये।' तुलसीदासजी कहते हैं, तब जगज्जननी जानकीजीने अपने जन हनुमान्‌जीको 'हे तात ! इस संसारको विधाताके अधीन समझो'—ऐसा कहकर समझाया ॥ ३ ॥

राग जैतश्री

[९]

कहु, कपि ! कब रघुनाथ कृपा करि, हरिहैं निज बियोग-संभव दुख।
राजिवनयन, मयन-अनेक-छबि, रबिकुल-कुमुद-सुखद, मयंक-मुख ॥१॥
बिरह-अनल स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन, दिन अरु रैन रहत एकहि तक ॥२॥
सुदृढ़ ग्यान अवलंबि, सुनहु सुत ! राखति प्रान बिचारि दहन मत।
सगुन रूप, लीला-बिलास-सुख सुमिरति करति रहति अंतरगत ॥३॥
सुनु हनुमंत ! अनंत-बंधु करुनासुभाव सीतल कोमल अति।
तुलसिदास यहि त्रास जानि जिय, बरु दुख सहौं, प्रगट कहि न सकति ४

[फिर वे कहने लगीं—] 'हे कपि ! यह तो बताओ, जिनका मुखचन्द्र सूर्यवंशरूप कुमुदको सुख देनेवाला है, वे अनेकों कामदेवोंकी-सी कान्तिवाले कमलनयन भगवान् राम अपने वियोगसे प्राप्त हुए मेरे दुःखको कृपा करके कब दूर करेंगे ? ॥ १ ॥ अबतक विरहानलसे सन्तप्त हुए अपने प्राणवायुसे मेरे शरीरके दग्ध हो जानेमें कोई सन्देह नहीं था; परन्तु मेरे ये दोनों नेत्र रात-दिन एकतार होकर बड़े वेगसे जल बरसाते रहते हैं [इसीसे वह ज्वाला शान्त होती रहती है और शरीर भी अभीतक बचा हुआ है] ॥ २ ॥ हे पुत्र ! सुनो, मैं तो सुदृढ़ ज्ञानका आश्रय लेकर ही अपने प्राण बचाये हुए हूँ और इस शरीरको दग्ध नहीं होने देती । मैं हर समय अपने मन-ही-मन प्रभुके सगुण स्वरूप और दिव्य लीला-विलासका स्मरण करती हुई उन्हें हृदयमें धरती रहती हूँ ॥ ३ ॥ हे हनुमन् ! सुनो, लक्ष्मणजीके भाई बड़े ही करुण स्वभाववाले, शान्त और अत्यन्त कोमल हैं । अतः यह समझकर कि इन बातोंको सुनकर उन्हें बड़ा दुःख होगा, मैं यद्यपि बहुत कष्ट सह रही हूँ तो भी प्रकटमें नहीं कह सकती' ॥ ४ ॥

राग केदारा

[१०]

कबहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ?
मेरे नयनचकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥ १ ॥
मधुप, मराल, मोर, चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥ २ ॥

बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों, कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज बियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥३॥
लोकपाल, सुर, नाग, मनुज सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे ?
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥४॥
यह अभिलाष रैनदिन मेरे, राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम, भेदबुद्धि कब बिसरावहिंगे ? ॥५॥

'हे कपि ! क्या रघुनाथजी कभी आवेंगे ? मेरे प्रीतिविवश नयन-चकोरोंको क्या वे अपना मुखचन्द्र दिखलायेंगे ? ॥ १ ॥ मेरे नेत्र भ्रमर, हंस, मयूर और पपीहा होकर अनेक प्रकारसे दौड़ेंगे और उनके अङ्ग-अङ्गकी छबिमें भिन्न-भिन्न प्रकारका सुख देखकर जहाँ-तहाँ वहीं छा जायँगे* ॥ २ ॥ मैं लताके समान विरहरूप अग्निमें जल रही हूँ, सो क्या वे अपनी कृपादृष्टिरूप जलसे मुझे हरी-भरी करेंगे ? वे दयानिधान मुझे अपने वियोगका दुःख जानकर क्या मधुर वचनोंसे कह-सुनकर समझावेंगे ? ॥ ३ ॥ लोकपाल, देवगण, नाग और मनुष्य—ये सब बन्दी-गृहमें पड़े हुए हैं । इन्हें वे कब मुक्त करेंगे और नारदादि मुनिजन रावण-का वध और रघुनाथजीका विमल सुयश कब गान करेंगे ? ॥ ४ ॥ मुझे रात-दिन यही अभिलाषा रहती है कि न जाने विभीषण कब राज्य प्राप्त करेंगे ? और मोहवश मुझे जो [मारीचमें कनकमृगका]

---

* अर्थात् भ्रमररूपसे उनके मुख, नेत्र, कर और चरणरूप कमलोंमें निवास करेंगे, हंस होकर नाभिसरोवरमें विहार करेंगे तथा प्रभुका मेघश्याम विग्रह और तडिद्वर्ण पीताम्बर देखकर मयूररूपसे नाचेंगे, अथवा चातकरूपसे उनकी ओर दौड़ेंगे ।

भ्रम हुआ और [लक्ष्मणजीमें] भेदबुद्धि हुई उसे भगवान् कब भूल जायँगे ?' ॥ ५ ॥

[११]

सत्य बचन सुनु मातु जानकी !
जनके दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधानकी ॥१॥
तुव बियोग-संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबानकी ।
नतु कहु, कहँ रघुपति-सायक-रबि, तम-अनीक कहँ जातुधानकी ॥२॥
कहँ हम पसु साखामृग चंचल, बात कहौं मैं बिद्यमानकी !
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ग्यानघन, नहि बिसरति वह लगनि कानकी॥३॥
तुव दरसन-सँदेस सुनि हरिको बहुत भई अवलंब प्रानकी ।
तुलसिदास गुन सुमिरि रामके प्रेम-मगन, नहि सुधि अपानकी ॥४॥

[हनुमान्‌जी बोले—] 'माता जानकि ! तुम मेरा सत्य वचन सुनो । भगवान् राम अपने सेवकके दुःखसे अत्यन्त दुःखित रहते हैं—यह उन करुणानिधिकी स्वाभाविक प्रकृति है ॥ १ ॥ उन्हें तुम्हारे वियोगजनित दुःखके कारण ही अपने वाणोंकी महिमा विस्मृत हो गयी है; नहीं तो बताओ कहाँ तो रघुनाथजीके वाणरूप सूर्य और कहाँ निशाचरोंका दलरूप अन्धकार ? ॥ २ ॥ मैं इसी समयकी बात कहता हूँ—कहाँ तो हम अत्यन्त चपल पशु वानर और कहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव-के भी वन्दनीय ज्ञानघन भगवान् राम ? किन्तु [हमसे गुह्य परामर्श करनेके लिये] उनका वह हमारे कानोंसे लगना मुझे अभीतक नहीं भूलता ॥ ३ ॥ उन्हें तो सुग्रीवके मुखसे तुम्हारे दर्शन होनेका समाचार सुनकर ही प्राणोंका बड़ा भारी अवलम्ब मिला था ।' तुलसीदासजी

कहते हैं, इस प्रकार भगवान् रामके गुणोंका स्मरण कर हनुमान्जी प्रेममें डूब गये और उन्हें अपनी सुधि न रही ॥ ४ ॥

हनुमान् और रावणकी भेंट

राग कान्हरा

[१२]

रावन ! जु पै राम रन रोषे ।
को सहि सकै सुरासुर समरथ, बिसिष काल-दसननितें चोषे ॥१॥
तपबल, भुजबल, कै सनेह-बल सिव-बिरंचि नीकी बिधि तोषे ।
सो फल राजसमाज-सुवन-जन आपु न नास आपने पोषे ॥२॥
तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोषे ।
परसुराम-से सूर-सिरोमनि पलमें भए खेतके धोषे ॥३॥
कालिकी बात बालिकी सुधि करि समुझि हिताहित खोलि झरोखे ।
कह्यो कुमंत्रिनको न मानिए, बड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोषे ॥४॥
जासु प्रसाद जनमि जग पुरषनि सागर सृजे, खने अरु सोखे ।
तुलसिदास सो स्वामि न सूझ्यो, नयन बीस मंदिरके-से मोखे ॥५॥

[अब रावणकी सभामें पहुँचनेपर हनुमान्जी उससे कहते हैं-] 'हे रावण! यदि भगवान् राम युद्धमें कुपित हो गये तो ऐसा सामर्थ्यवान् कौन देवता या असुर है जो उनके कालके दाँतोंसे भी पैने बाणोंको सहन कर सके ?॥ १ ॥ तुमने अपने तपोबल, बाहुबल और स्नेहबलसे शिव और ब्रह्माजीको भी अच्छी तरह सन्तुष्ट किया है। अब उसके फलस्वरूप तथा स्वयं ही पोषित किये राजसमाज, पुत्र-पौत्रादि तथा सेवकोंको स्वयं ही

नष्ट न करो ? ॥ २ ॥ राजा जनकरूप साहुने तीनों लोकोंके शूरवीरोंको एकत्रित कर उनके बलोंको पिनाकरूप तराजूसे अच्छी तरह तौल लिया था; किन्तु वहाँ भगवान् रामके सामने परशुराम-जैसे शूरशिरोमणि भी एक क्षणमें खेतके धोखे बन गये; [अर्थात् केवल देखनेमात्रके रह गये] ॥३॥ कलहीकी बात है, तनिक बालिकी गतिका ही विचार कर लो और अपने झरोखे (अभिमानके परदे) को खोलकर हिताहितका विचार कर लो। देखो, अपने कुमन्त्रियोंकी बात मत मानना, इसमें बड़ी हानि होगी, इन्हें तो अपने चित्तमें त्रिदोषग्रस्त समझो ॥ ४ ॥ अहो ! जिनकी कृपासे पूर्व-पुरुषोंने जगत्में जन्म लेकर समुद्रोंको रचा, खोदा और शोषण भी किया यदि उन प्रभुको तुमने न पहचाना तो तुम्हारे बीस नेत्र घरके झरोखोंके समान ही हैं' ॥ ५ ॥

राग मारू

[१३]

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो ।
तौ यहि रिस तोहि सहित दसानन ! जातुधान-दल दलतो ॥ १ ॥
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो ।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो ॥ २ ॥
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो ।
लंकनाथ ! रघुनाथ-बैरु-तरु आजु फैलि फूलि फलतो ॥ ३ ॥
काल-करम, दिगपाल, सकल जग-जाल जासु करतल तो ।
ता रिपुसों पर भूमि रारि रन जीवन-मरन सुथल तो ॥ ४ ॥

देखी मैं दसकंठ ! सभा सब, मोंतें कोउ न सबल तो ।
तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो ॥ ५ ॥

'हे रावण ! यदि मैं प्रभुकी आज्ञा लेकर आता तो इसी रिसमें तुम्हारे सहित सम्पूर्ण राक्षससेनाका संहार कर डालता ॥ १ ॥ मैं रावणरूप पारेको अन्य शूरवीररूप रसोंके सहित फूँककर लंकारूप खरलमें घोटता। इस प्रकार देवराज इन्द्रके लिये पुटपाकविधिसे औषध तैयार करनेके लिये बड़े-बड़े घरोंको नष्ट कर देता ॥ २ ॥ आज इस बड़े समाजमें मैं व्यर्थ ही लज्जाका पात्र हुआ; इस बड़े कार्यको मैं निःसन्देह कर सकता था । हे लंकेश्वर ! रघुनाथजीका वैररूप वृक्ष आज खूब फैल-फूलकर फलित होता ॥ ३ ॥ काल, कर्म और दिक्पालादि सम्पूर्ण प्रपञ्च जिस प्रभुके करतलगत है उसके शत्रुसे उसीके देशमें यदि मेरा युद्ध छिड़ जाता तो मेरा जीवन और मरण दोनों ही सफल हो जाते ॥ ४ ॥ हे रावण ! मैंने तुम्हारी सारी सभा देख ली है। इसमें मुझसे अधिक बलवान् कोई नहीं है । यदि मुझे स्वामीकी आज्ञा होती तो मैं शत्रुकी शक्तिका अनुमान करके इतनी ग्लानि सहन न करता' ॥ ५ ॥

सीताजीसे विदाई

[१४]

तौलौं, मातु ! आपु नीके रहिबो ।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहि, दिन दस और दुसह दुख सहिबो ॥१॥
सोखिकै, खेत कै, बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि, न बोहित चहिबो ।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आधमें, जीवत दुरित दसानन गहिबो ॥२॥

बैरिबृंद-बिधवा-बनितनिको देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो।
सानुज सेनसमेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥३॥
लंक-दाह उर आनि मानिबो साँचु राम-सेवकको कहिबो।
तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु-दव दहिबो ॥४॥

[हनुमान्‌जी विदा होते समय सीताजीसे कहते हैं—] 'हे मातः! जबतक मैं रघुनाथजीको यहाँ लाऊँ, तबतक तुम अच्छी तरह रहना। इस दुःसह दुःखको दस दिन और सहन करना ॥ १ ॥ हमें समुद्रको सोखकर, पाटकर अथवा पुल बाँधकर उतरना होगा; जहाज आदिकी हमें आवश्यकता नहीं होगी। फिर हमारा प्रबल कटक आधे पलमें ही शत्रुकी सेनाका संहार कर पापी रावणको जीता ही पकड़ लेगा ॥ २ ॥ तुम शत्रुसमूहकी विधवा नारियोंका अश्रुजल बहना देखोगी और भाई लक्ष्मण तथा सेनाके सहित प्रभुके चरणकमल देखकर परम आनन्द और मङ्गल लाभ करोगी ॥ ३ ॥ मेरेद्वारा लंकाके दहनको देखकर ही तुम इस रामदूतके कथनको सत्य मानना।' तुलसीदासजी कहते हैं, अब शीघ्र ही देवता लोग प्रभुका सुयश गान करेंगे और सबका शोकाग्निमें जलना नष्ट हो जायगा ॥ ४ ॥

[१५]

कपिके चलत सियको मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ॥ १ ॥
कहन चह्यो सँदेस, नहि कह्यो, पियके जियकी जानि हृदय दुसह दुखरायो
देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषमके पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥२॥

मीचतें नीच लगी अमरता, छलको न बलको निरखि थल परुष प्रेम पायो
कै प्रबोध मातु प्रीतिसों असीस दीन्हीं ह्वैहै तिहारोई मन भायो ॥३॥
करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन, मौनही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ, तुलसी रसना रूखी, ताहीतें परत गायो ॥४॥

हनुमान्‌जीके चलते ही सीताजीका हृदय भर आया। उनका शरीर रोमाञ्चित और शिथिल हो गया तथा नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ वे सन्देश कहना चाहती थीं; परन्तु पतिके चित्तकी अवस्थाको विचारकर नहीं कहा, अपने दुःसह दुःखको हृदयमें ही छिपा लिया। उनकी वह दशा देखकर कपिपति हनुमान्‌जी व्याकुल हो गये, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यके तापसे तपी हुई भूमिपर चलनेवाला पथिक बिलबिला उठता है ॥ २ ॥ उन्हें अपनी अमरता मृत्युसे भी बुरी लगी। वहाँ छल या बल किसीका अवसर न देखकर उन्हें अपना प्रेम कठोर जान पड़ने लगा। तब जानकीजीने उन्हें मातृ-प्रेमसे समझाकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारे ही मनकी इच्छा पूर्ण होगी' ॥ ३ ॥ फिर हनुमान्‌जीने करुणा, कोप, लज्जा और भयसे भरे हुए ही वहाँसे प्रस्थान किया, और चुपचाप सीताजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया। तुलसीदास-की रसना रूखी है, इसीसे वह उस स्नेहसर्वस्व समयका वर्णन कर सकी है [अन्यथा सरसहृदय तो उसका वर्णन ही नहीं कर सकते] ॥४॥

हनुमान्‌जीका भगवान् रामके पास पहुँचना

राग बसन्त

[१६]

रघुपति ! देखो आयो हनूमंत। लंकेस-नगर खेल्यो बसंत ॥१॥
श्रीराम-काजहित सुदिन सोधि। साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥२॥

सिय-पाँय पूजि, आसिषा पाइ। फल अमियसरिस खायो अघाइ ॥३॥
कानन दलि, होरी रचि बनाइ। हठि तेल-बसन बालधि बँधाइ ॥४॥
लिए ढोल चले सँग लोग लागि। बरजोर दई चहुँ ओर आगि ॥५॥
आखत आहुति किये जातुधान। लखि लपट भभरि भागे बिमान ॥६॥
नभतल कौतुक, लंका बिलाप। परिनाम पचहिं पातकी-पाप ॥७॥
हनुमान-हाँक सुनि बरषि फूल। सुर बार बार बरनहिं लँगूर ॥८॥
भरि भुवन सकल कल्यान-धूम। पुर जारि बारिनिधि बोरि लूम ॥९॥
जानकी तोषि पोषेउ प्रताप। जय पवनसुवन दलि दुअन-दाप ॥१०॥
नाचहिं, कूदहिं कपि करि बिनोद। पीवत मधु मधुबन मगन मोद ॥११॥
यों कहत लषन गहे पाँय आइ। मनि सहित मुदित भेंट्यो उठाइ ॥१२॥
लगे सजन सेन, भयो हिय हुलास। जयजयजस गावत तुलसिदास ॥१३॥

[इस समय लक्ष्मणजी किष्किन्धापुरीमें गये हुए थे, वहाँ हनुमान्‌जीके लौटनेका समाचार पाकर भगवान् रामके पास आकर कहने लगे—] 'रघुनाथजी ! देखिये, हनुमान्‌जी आ गये हैं; इन्होंने रावणके नगरमें खूब फाग खेला है ॥ १ ॥ ये रामकार्यके लिये शुभ दिन निश्चितकर अपने साथियोंको समझाकर समुद्र लाँघ गये थे ॥ २ ॥ वहाँ इन्होंने सीताजीकी चरणवन्दना कर उनसे आशीर्वाद पाया और अशोकवनके अमृतसदृश फलोंको खूब पेट भरकर खाया ॥ ३ ॥ फिर उस वाटिकाको उजाड़कर इन्होंने होलीकी तैयारी की और आग्रहपूर्वक अपनी पूँछको तेल और वस्त्रसे बँधवाया ॥ ४ ॥ उस समय लोग ढोल बजाते इनके संग हो लिये। तब इन्होंने चारों ओर आग लगा दी ॥५॥ उस अग्निमें इन्होंने राक्षसरूप आखत (नवीन अन्न) हवन किये। उसकी

लपटें उठती देखकर देवताओंके विमान भी भड़भड़ाकर भाग गये ॥६॥ उस समय आकाशमें बड़ा कुतूहल और लङ्कामें घोर विलाप होने लगा। पापीके पाप अन्तमें फलोन्मुख होते ही हैं ॥ ७ ॥ देवतालोग हनुमान्‌जीकी गर्जना सुनकर बारंबार फूल बरसाते थे और उनकी पूँछकी प्रशंसा करते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंमें मंगलकी धूम मचा, नगरको भस्मकर समुद्रमें पूँछ बुझायी और जानकीजीको धैर्य बँधा आपके प्रतापको पुष्ट किया। अतः शत्रुओंके दर्पको दलित करनेवाले पवननन्दन हनुमान्‌जीकी जय हो ॥९-१०॥ इस समय इनके साथी वानर क्रीड़ा करते हुए नाच-कूद रहे हैं और आनन्दमग्न होकर मधुवनमें मधु पी रहे हैं' ॥ ११ ॥ जिस समय लक्ष्मणजी ये सब बातें कह रहे थे उसी समय हनुमान्‌जीने आकर प्रभुके चरण पकड़ लिये तथा रघुनाथजीने उन्हें चूडामणिके सहित उठाकर अति प्रसन्नतापूर्वक आलिङ्गन किया ॥ १२ ॥ हनुमान्‌जीके आनेपर सबके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ और सेना सजाने लगे। तुलसीदास भी जय-जयकार करते हुए उनका सुयश गाते हैं ॥ १३ ॥

राग जैतश्री

[१७]

सुनहु राम बिश्रामधाम हरि! जनकसुता अति बिपति जैसे सहति।
'हे सौमित्रि-बंधु करुनानिधि!' मन महँ रटति, प्रगट नहि कहति ॥ १ ॥
निजपद-जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहत न एक छन।
मनहु नील नीरज ससि-संभव रबि बियोग दोउ स्त्रवत सुधाकन ॥ २ ॥

बहु राच्छसी सहित तरुके तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहु दुष्ट इंद्रिय संकट महँ बुद्धि बिबेक-उदय मगु जोवति ॥ ३ ॥
सुनि कपि-बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एक मन।
तुलसिदास दुख-सुखातीत हरि सोच करत मानहु प्राकृत जन ॥ ४ ॥

[हनुमान्‌जी बोले—] 'हे शान्तिधाम भगवान् राम! जिस प्रकार जनकनन्दिनी अत्यन्त दुःख सहन करती हैं सो सुनिये। वे अपनी वियोग-व्यथाको प्रकट नहीं कहतीं, हर समय मन-ही-मन 'हे सौमित्रिबन्धो! हे करुणानिधे!' ऐसा रटती रहती हैं ॥ १ ॥ अपने चरणकमलोंकी ओर देखते हुए उनके शोकातुर नेत्रोंका जल एक क्षणके लिये भी बन्द नहीं होता, मानो चन्द्रमामें प्रकट हुए दो नीलकमल सूर्यका वियोग रहनेके कारण अमृतकी बूँदें टपकाते रहते हों [यहाँ सीताजीका मुख चन्द्रमा है, उनके नेत्र नीलकमल हैं, भगवान् राम सूर्य हैं और आँसू अमृतकी बूँदें हैं] ॥ २ ॥ वे आपके वियोगमें बहुत-सी राक्षसियोंके साथ एक वृक्षके नीचे बैठी हुई अपना जीवन काट रही हैं, मानो दुष्ट इन्द्रियोंके बीचमें पड़ी हुई बुद्धि विवेकके उदयका मार्ग देख रही हो' ॥ ३ ॥ हनुमान्‌जीके ये वचन सुन भगवान्‌ने हृदयमें विचार किया कि जानकीजीके मनमें सर्वदा एकमात्र मेरी अनपायिनी भक्ति ही है। तुलसीदासजी कहते हैं, यह सोचकर सुख-दुःखसे अतीत श्रीहरि इस प्रकार शोक करने लगे मानो कोई साधारण पुरुष हों ॥ ४ ॥

राग केदारा

[१८]

रघुकुलतिलक! बियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु बिरह-मूरति मन मारे ॥ १ ॥

चित्र-से नयन अरु गढ़े-से चरन-कर, मढ़े-से स्रवन, नहि सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निजपद-कमल निहारे॥२॥
दरसन-आस-लालसा मन महँ राखे प्रभु-ध्यान प्रान-रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन-गन-सुमन सँवारे॥३॥

'हे रघुकुलतिलक! जिस समय मैंने जाकर जानकीजीको आपके वियोगमें व्यथित देखा उस समय वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो वियोगकी मूर्ति ही उदासचित्तसे बैठी हो॥१॥ उनके नेत्र चित्रके समान निश्चल थे, हाथ-पाँव मानो गढ़े-से जान पड़ते थे तथा कर्ण मढ़े हुए-से हो रहे थे; अतः वे पुकारनेपर भी नहीं सुनती थीं। वे जिह्वासे आपका नाम रटती रहती हैं, हाथ अधिक देरतक मस्तकपर ही रक्खा रहता है तथा नेत्र सर्वदा अपने ही चरणकमलोंकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं॥२॥ उनके मनमें आपके दर्शनोंकी इच्छा है; अतः उन्होंने आपके ध्यानको ही अपने प्राणोंकी रखवालीपर रख छोड़ा है।' तुलसीदासजी कहते हैं, हाँ, त्रिजटा राक्षसी आपके गुणगणरूप पुष्पोंसे उन्हें अवश्य अच्छी तरह पूजती रहती है॥३॥

[१९]

अतिहि अधिक दरसनकी आरति।
राम-बियोग असोक-बिटपतर सीय निमेष कलप सम टारति॥१॥
बार बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहु बिरहके सद्य घाय हिये लखि तकि-तकि धरि धीरज तारति॥२॥
तुलसिदास जद्यपि निसिबासर छिन छिन प्रभुमूरतिहि निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तनुकी, यह बिचारि अंतरगति हारति॥३॥

'जानकीजीको आपके दर्शनोंकी बड़ी ही लालसा है। वे राम-वियोगमें उस अशोकवृक्षके नीचे एक-एक पलको कल्पके समान बिताती हैं ॥ १ ॥ वे अपने कमलरूप नेत्रोंमें गर्म जल भरकर बारंबार अपने हृदयपर डालती हैं, मानो हृदयमें विरहके नये-नये घाव देखकर वे धैर्यपूर्वक तक-तककर उन्हें गर्म जलसे धोती हैं' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, यद्यपि वे रात-दिन क्षण-क्षणमें प्रभुकी मूर्तिका दर्शन करती हैं तो भी उनके शरीरका दुःसह ताप दूर नहीं होता। अतः आपके बाह्य वियोगके सामने उनका ध्यानादिजनित आन्तरिक सुख हार मान जाता है ॥ ३ ॥

[२०]

तुम्हरे बिरह भई गति जौन ।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥ १ ॥
लोचन-नीर कृपिनके धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कोन ।
'हा' धुनि-खगी लाज-पिँजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥ २ ॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन ।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहि मग पगु न धर्‍यो तिहु पौन ॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीयकी मुख करि कहत होति अति गौन ।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥ ४ ॥

'हे करुणानिधान रघुनाथजी ! आपके विरहमें जानकीजीकी जो गति हुई है उसे ध्यान देकर सुनिये । मैं उसे कुछ जानता तो हूँ, पर कह नहीं सकता ॥ १ ॥ उनके नेत्रोंका जल कृपणके धनके समान सर्वदा नेत्रोंके कोनोंमें ही रह जाता है। मौनरूप भारी बधिकने हा-

ध्वनिरूप पक्षिणीको हठपूर्वक लज्जारूप पिंजड़ेमें बन्द कर हृदयमें ही रक्खा है। [अतः वह उनके हृदयमें ही रहती है, बाहर नहीं निकलने पाती] ॥२॥ जिस वाटिकामें वे रहती हैं वहाँके पशु-पक्षी [उनकी विरहाग्निसे सन्तप्त होकर] अपने पुराने निवासस्थानोंको छोड़कर चले गये हैं, और उनके श्वासवायुके साथ भूलसे भी भेंट हो जानेपर शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन फिर उस ओर पैर नहीं रखता ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! सीताजीकी दशाका इस मुखसे वर्णन करनेसे तो वह अत्यन्त गौण हुई जाती है। अतः अब आप उन्हें दर्शन दीजिये और उनका दुःख दूर कीजिये, क्योंकि आप तो दीनजनोंके दुःखका दमन करनेवाले हैं' ॥ ४ ॥

[२१]

कपिके सुनि कल कोमल बैन ।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भए, भरे सलिल सरसीरुह नैन ॥१॥
सिय-बियोग-सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित-चैन ।
लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन ॥२॥
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल ब्याकुल उर-ऐन ।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह-सर पैन ॥३॥
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन, सके उत्तरु दै न ।
तुलसिदास प्रभु सखा-अनुजसों सैनहिं कह्यौ, चलहु सजि सैन ॥४॥

हनुमान्जीके ये मधुर और कोमल वचन सुनकर रघुनाथजीके सब अङ्ग प्रेमसे पुलकित और शिथिल हो गये तथा उनके नेत्रकमलोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ सीताजीके वियोगरूप समुद्रमें रामजीका मनरूप चतुर तैराक अपने आनन्दके सहित डूबने लगा। इसी समय हनुमान्जी-

से [सीताजीकी] सुधि पाकर उन्हें प्रसन्नतारूप नौका मिल गयी; तहाँ कामदेवने जबरदस्ती उस नावकी रस्सीको पकड़ लिया कि पार न जा सकें ॥ २ ॥ [गला भर आनेके कारण] वे सीताजीकी कुशल भी नहीं पूछ सकते थे और बिना पूछे उनकी वाणी भी हृदयरूप गृहमें अत्यन्त व्याकुल हो रही थी, जिस प्रकार कोई कुलीन और पवित्र बुद्धिवाली वियोगिनी स्त्री सामने पड़कर विरहके तीखे तीर सहन करती है ॥ ३ ॥ वीरवर कोसलनाथने अनेक बार धैर्य धारणकर बोलनेका प्रयत्न किया, परन्तु वे शब्द न निकाल सके। तुलसीदास कहते हैं, तब अन्तमें प्रभुने सखा सुग्रीव और भाई लक्ष्मणसे संकेतमें कहा कि सेना सजाकर चलो ॥ ४ ॥

वानरसेनाकी लंकायात्रा

राग मारू

[२२]

जब रघुबीर पयानो कीन्हों ।
छुभित सिंधु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्हों ॥ १ ॥
सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौंके बिधि-त्रिपुरारि ।
जटापटलते चली सुरसरी सकत न संभु सँभारि ॥ २ ॥
भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दसचारि ।
खरभर लंक, ससंक दसानन, गरभ स्रवहिं अरि-नारि ॥ ३ ॥
कटकटात भट भालु, बिकट मरकट करि केहरि-नाद ।
कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी-उपरा बदि बाद ॥ ४ ॥

गिरि-तरुधर, नख मुख कराल, रद कालहु करत बिषाद।
चले दस दिसि रिस भरि 'धरु' धरु कहि, 'को बराक मनुजाद'?॥ ५ ॥
पवन पंगु, पावक-पतंग-ससि दुरि गए, थके बिमान।
जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान ॥ ६ ॥
गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान।
नभ निसान, हनुमान-हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान ॥ ७ ॥
दिग्गज-कमठ-कोल-सहसानन धरत धरनि धरि धीर।
बारहि बार अमरषत, करषत, करकैं परीं सरीर ॥ ८ ॥
चली चमू, चहु ओर सोर, कछु बनै न बरने भीर।
किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि-तीर ॥ ९ ॥
जातुधानपति जानि कालबस मिले बिभीषन आइ।
सरनागत-पालक कृपालु कियो तिलक, लियो अपनाइ ॥१०॥
कौतुकही बारिधि बँधाइ उतरे सुबेल-तट जाइ।
तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि, प्रभु-आगमन सुनाइ ॥११॥

जिस समय रघुनाथजीने प्रयाण किया उस समय समुद्र क्षुभित हो गया और पर्वत डगमगाने लगे। इसी समय भगवान्‌ने अपना धनुष चढ़ाकर हाथमें उठाया ॥१॥ उसकी अति कठोर और भयंकर टंकार सुनकर ब्रह्मा और महादेव आदि चौंक पड़े। गङ्गाजी भगवान् शंकरके ज़टाजूटसे खिसकने लगीं, वे उन्हें सँभाल न सके ॥ २ ॥ सारे दिक्पाल व्याकुल हो गये, चौदहों भुवन भयसे भर गये, लंकामें खलबली पड़ गयी, रावणके कान खड़े हो गये तथा शत्रुओंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे ॥ ३ ॥ रीछ और वानर वीर विकट सिंहनाद करते हुए दाँत पीसने

लगे और 'कौन ऊँचा जाय ?' इस प्रकार शर्त करते हुए रघुनाथजीकी शपथ खाकर कूदने लगे ॥ ४ ॥ वे पर्वत तथा वृक्षोंको उठाये हुए थे; उनके तीखे नख तथा मुखमें पैने दाँत देखकर साक्षात् काल भी भय मानता था। वे दसों दिशाओंमें क्रोधसे भरकर 'पकड़ लो, पकड़ लो, यह बेचारा राक्षस है ही क्या चीज !' इस प्रकार कहते हुए चल रहे थे ॥ ५ ॥ [इस वानरसेनाके चलते समय इतनी धूल उड़ी कि] पवन पंगु हो गया, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा छिप गये तथा विमान थकित हो गये, देवता लोग पलक मारनेके लिये प्रार्थना करने लगे * और इन्द्र नेत्रोंके भारसे व्याकुल हो गया ॥ ६ ॥ बहुत-से सरोवर धूलिसे भर गये और अत्यन्त भयसे [पर्वतोंके उखड़ जानेसे उनके स्थानमें जल भर जानेके कारण] अनेकों पहाड़ी प्रदेश समुद्रवत् हो गये। आकाशमें देवताओंके ढोल और हनुमान्‌जीकी गर्जनाका कोलाहल सुनकर कोई अपने कथनको भी नहीं समझ सकता था ॥ ७ ॥ दिग्गज, कूर्म, वाराह और शेषनाग जैसे-तैसे धीरज धरकर पृथिवीको धारण करते थे। उनके शरीरोंमें बोझके सहते-सहते हड्डियाँ कड़क उठी हैं इसलिये वे बारंबार झुँझलाकर उसे तानते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब वानरोंकी सेनाने कूच किया तो चारों ओर कोलाहल छा गया। उस भीड़का कुछ वर्णन करते नहीं बनता। वानरगण किलकिलाते थे और वे एक दूसरेसे ठसे हुए थे। इस प्रकार उस समय समुद्रतटपर बड़ा कोलाहल हो रहा था ॥ ९ ॥ इसी समय राक्षसराजको कालके अधीन देख विभीषणजी भगवान्‌से आकर मिले;

---

* क्योंकि देवताओंके पलक बन्द नहीं होते और इस समय धूलिके कारण उन्हें बहुत दुःख हो रहा था। इन्द्रके सहस्र नेत्रोंमें धूलि भरकर पूरा बोझा हो गया।

तब शरणागतवत्सल प्रभुने उनका वहीं अभिषेक करके अपना लिया ॥१०॥ फिर कौतुकसे ही समुद्रका पुल बाँधकर वे सुवेल पर्वतके पास जाकर ठहर गये। तुलसीदास कहते हैं, वहाँ पहुँचकर वानरगण लंकाका किला देखकर प्रभुके आगमनकी सूचना देकर लौट आये ॥ ११ ॥

रावणकी मन्त्रणा

राग आसावरी

[२३]

आए देखि दूत, सुनि सोच सठ-मनमैं ।
बाहर बजावै गाल, भालु-कपि कालबस
मोसे बीरसों चहत जीत्यो रारि रनमैं ॥ १ ॥
राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि
घालि को गनत ? रीछ जल ज्यौं न घनमैं ।
काजको न कपिराज, कायर कपिसमाज,
मेरे अनुमान हनुमान हरिगनमैं ॥ २ ॥
समय सयानी मृदु बानी रानी कहै पिय !
पावक न होइ जातुधान-बेनु-बनमैं ।
तुलसी जानकी दिए, स्वामीसों सनेह किये
कुसल, नतरु सब ह्वैहैं छार छनमैं ॥ ३ ॥

रावणके दूत भगवान्‌की सेनाको देख आये थे। दूतोंसे उनका समाचार सुन वह शठ मनमें सोच रखकर ऊपरसे गाल बजाने लगा कि 'अहो ! कालके वशीभूत होकर ये रीछ और वानर युद्धमें मुझ-

जैसे वीरसे लड़कर विजय प्राप्त करना चाहते हैं!' ॥ १ ॥ राम तो [सीताके वियोगमें] बहुत दुर्बल हैं; लक्ष्मण अभी लड़का ही है; बालिका पुत्र अपने ही कुलका घातक है, उसे तो गिनता ही कौन है? और जाम्बवान् जिस प्रकार मेघमें जल न हो, ऐसा है। सुग्रीव किसी भी अर्थका नहीं है, और सारा ही वानरसमाज कायर है। हाँ, मेरे अनुमानसे इन वानरोंमें एक हनुमान् अवश्य शूरवीर है ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इसी समय परम चतुर महारानी मन्दोदरीने मधुरस्वरसे कहा—'हे प्रियतम! आप राक्षसकुलरूप बाँसोंके वनमें अग्नि न बनें, इस समय जानकीको देने और प्रभुसे प्रेम करनेमें ही कुशल है; नहीं तो एक क्षणमें ही सब नष्ट हो जायगा' ॥ ३ ॥

[२४]

आपनी आपनी भाँति सब काहू कही है।

मंदोदरी, महोदर, मालवान महामति,
राजनीति-पहुँच जहाँलौं जाकी रही है ॥ १ ॥

महामद-अंध दसकंध न करत कान,
मीचु-बस नीच हठि कुगहनि गही है।

हँसि कहै, सचिव सयाने मोसों यों कहत,
चहै मेरु उड़न, बड़ी बयारि बही है ॥ २ ॥

भालु, नर, बानर अहार निसचरनिको,
सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है।

देखो कालकौतुक, पिपीलिकनि पंख लागो,
भाग मेरे लोगनिके भई चित-चही है ॥ ३ ॥

'तोसो न तिलोक आजु साहस, समाज-साजु,
महाराज-आयसु भो जोई, सोई सही है।'
तुलसी प्रनामकै बिभीषन बिनती करै
'ख्याल बेधे ताल, कपि केलि लंका दही है' ॥ ४ ॥

इसी प्रकार मन्दोदरी, महोदर और महामति माल्यवान् आदि सभीने जिसकी जहाँतक राजनीतिमें पहुँच थी, अपनी-अपनी विधिसे रावणको बहुत कुछ कहा ॥ १ ॥ किन्तु महान् मदसे अन्धा रहनेके कारण उसने कुछ भी नहीं सुना। उस नीचने मृत्युके वशीभूत होकर आग्रहपूर्वक कुमार्गको ही ग्रहण किया। वह हँसकर कहने लगा—'अहा! हमारे चतुर मन्त्री मानो ऐसी बात कहते हैं कि भाई बड़ी तेज हवा चल रही है, इसलिये सुमेरु पर्वत उड़ना चाहता है! ॥ २ ॥ अरे! रीछ, वानर और मनुष्य तो स्वभावसे ही राक्षसोंके आहार हैं; तिसपर भी इन बालकोंने तो अपने साथ माँगी हुई सेना ली है! कालका खेल तो देखो, आज चींटियोंके पर लगने लगे; मेरे भाग्यसे ही लोगोंकी चित-चाही हुई है [इसीसे उन्हें अनायास भरपेट आहार मिला है]' ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, तब विभीषणने प्रणाम करके कहा 'महाराज! आपकी जैसी आज्ञा है वही होगा, सचमुच आज त्रिलोकीमें साहस और सैन्यबलमें आपके समान कोई नहीं है; [परन्तु उधरका भी बल देख लीजिये] भगवान् रामने [बालिवधके समय] संकल्पमात्रसे ही सात तालवृक्षोंको बेध दिया था और वानर हनुमान्ने खेलहीमें लङ्काको भस्म कर दिया था!' ॥ ४ ॥

[२५]

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।
बेदऊ पुरान, कबि-कोबिद बिरद-रत,
जाको जस सुनत, गावत गुन-ग्रामै ॥ १ ॥
माया-जीव, जग-जाल, सुभाउ, करम-काल,
सबको सासकु, सबमैं; सब जामैं।
बिधि-से करनिहार, हरि-से पालनिहार,
हर-से हरनिहार जपैं जाके नामैं ॥ २ ॥
सोइ नरबेष जानि, जनकी बिनती मानि,
मतो नाथ सोई, जातें भलो परिनामैं।
सुभट-सिरोमनि कुठारपानि सारिखेहू
लखी औ लखाई, इहाँ किए सुभ सामैं ॥ ३ ॥
बचन-बिभूषन बिभीषन-बचन सुनि
लागे दुख दूषन-से दाहिनेउ बामैं।
तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात, 'भले तात',
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं ॥ ४ ॥

'रामके समान कोई और स्वामी दिखलायी नहीं देता, जिनके विरदके बखानमें वेद, पुराण, कवि और विद्वज्जन रत रहते हैं तथा जिनके सुयशका श्रवण और गुणसमूहका गान करते रहते हैं ॥ १ ॥ जो माया, जीव, जगज्जाल, स्वभाव, कर्म और काल—सबका शासक है, जो सबमें व्याप्त है और जिसमें सब स्थित हैं, तथा जिनके नामको ब्रह्मा-जैसे रचयिता, विष्णु-जैसे पालक और शंकर-जैसे संहारक जपते रहते

हैं ॥ २ ॥ वे ही अपने भक्तोंकी प्रार्थना स्वीकारकर मनुष्यरूपसे प्रकट हुए हैं—ऐसा जानो । हे तात ! सुमति तो वही है जिससे परिणाममें हित हो । देखो, कुठारधारी परशुराम-जैसे शूरशिरोमणिने भी अपना बल दिखाकर प्रभुका बल देखा था, और फिर अपनी भलाई समझकर सन्धि कर ली थी' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये वाणीको विभूषित करनेवाले वचन सुनकर रावणको अनुकूल होनेपर भी ये अत्यन्त प्रतिकूल तथा दुःखमय और दूषित जान पड़े । अतः उसने हुमककर उनकी छातीमें लात मारी । तब विभीषण 'भैया ! अच्छा !!' ऐसा कह [रावणरूप] घोर घामको त्यागकर [रामरूप] कल्पवृक्षकी ओर चल दिये ॥ ४ ॥

विभीषण-शरणागति

[२६]

जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है ।
समाधान करति बिभीषनको बार बार,
'कहा भयो तात ! लात मारे, बड़ो भाई है' ॥ १ ॥
साहिब, पितु समान, जातुधानको तिलक,
ताके अपमान तेरी बाढ़िए बड़ाई है ।
मरत गलानि जानि, सनमानि सिख देति,
रोष किए दोष, सहें समुझें भलाई है ॥ २ ॥
इहाँतें बिमुख भये, रामकी सरन गए
भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है ।
मातु-पग सीस नाइ, तुलसी असीस पाइ
चले भले सगुन, कहत मन भाई है ॥ ३ ॥

विभीषणने अपनी माताके पास जाकर उसके चरणोंमें गिर वह सब वृत्तान्त सुना दिया। माता बारंबार उन्हें समझाने लगी—'भैया! यदि लात मार ही दी तो ऐसी क्या बात है, आखिर तो तेरा बड़ा भाई है ॥ १ ॥ वह प्रथम तो तेरा स्वामी, दूसरे पिताके समान ज्येष्ठ भ्राता और तिसपर भी राक्षसकुलका तिलक है। उसके तो अपमान करनेमें भी तेरा बड़ा सम्मान ही है।' विभीषणको अत्यन्त खिन्न देख वह इसी प्रकार बहुत सत्कारपूर्वक समझाने लगी और बोली—'भैया! इस समय क्रोध करनेमें तो बड़ा भारी दोष है और सहने-समझ लेनेमें सब प्रकार भलाई है ॥ २ ॥ हाँ, यहाँसे विमुख होकर रामकी शरण चले जानेमें थोड़ेसे लोकापवादको छोड़कर और तो सब तरह भलाई ही है।' तुलसीदासजी कहते हैं, तब विभीषण माताके चरणोंमें सिर नवा उसका आशीर्वाद पा वहाँसे चल दिये। मार्गमें अच्छे-अच्छे शकुन होते देखकर कहने लगे—'मेरा तो मनचाहा हो गया' ॥ ३ ॥

[२७]

'भाई को सो करौं, डरौं कठिन कुफेरै।
सुकृत-संकट परचो, जात गलानिन्ह गरचो,
कृपानिधिको मिलौं पै मिलिकै कुबेरै' ॥१॥
जाइ गह पाँय, धाइ धनद उठाइ भेट्यो,
समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरै।
तहँई मिले महेस, दियो हित-उपदेस,
रामकी सरन जाहि, सुदिनु न हेरै ॥ २ ॥

जाको नाम कुंभज कलेस-सिंधु सोखिबेको,
मेरो कह्यो मानि, तात ! बाँधै जिनि बेरै ।
तुलसी मुदित चले, पाए हैं सगुन भले,
रंक लूटिबेको मानो मनिगन-ढेरै ॥ ३ ॥

विभीषणजी धर्मसंकटमें पड़कर अत्यन्त ग्लानिग्रस्त हो इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'मुझे भाईका-सा व्यवहार करना चाहिये, परन्तु बड़े कुफेरमें पड़कर डर रहा हूँ । अच्छा, पहले भाई कुबेरसे मिलकर फिर कृपानिधान भगवान् रामसे मिलूँगा' ॥१॥ ऐसा सोचकर उन्होंने कुबेरके पास जा उनके चरण पकड़ लिये । कुबेरजीने दौड़कर उन्हें उठाकर गले लगाया । फिर विभीषणसे कुसमाचार सुन वे सुमेरु पर्वतपर खड़े-खड़े सोच-विचार करने लगे । उसी स्थानपर उन्हें श्रीमहादेवजी मिले; उन्होंने यह हितकर उपदेश दिया–'विभीषण ! तुम भगवान् रामकी शरण जाओ; इसमें कोई शुभ दिन देखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २ ॥ हे तात ! जिनका नाम क्लेशरूप समुद्रको सोखनेके लिये अगस्त्यके समान है उनके पास पहुँचनेके लिये, मेरा उपदेश मानकर तुम किसी प्रकारका बेड़ा मत बाँधो [अर्थात् किसी प्रकारकी तैयारी मत करो] ।' तुलसीदासजी कहते हैं, यह सुनकर विभीषणजी प्रसन्न होकर चल दिये, राहमें उन्हें अनेकों शुभ शकुन हुए; मानो कोई कंगाल मणियोंकी ढेरी लूटनेके लिये जाता हो ॥ ३ ॥

राग केदारा

[२८]

संकर-सिख-आसिष पाइकै ।
चले मनहि मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै ॥ १ ॥

गए सोच, भए सगुन, सुमंगल दस दिसि देत देखाइकै ।
सजल नयन, सानंद हृदय, तनु प्रेम-पुलक अधिकाइकै ॥ २ ॥
अंतहु भाव भलो भाईको, कियो अनभलो मनाइकै ।
भइ कूबरकी लात, बिधाता राखी बात बनाइकै ॥ ३ ॥
नाहित क्यों कुबेर घर मिलि हर हितु कहते चित लाइकै ।
जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइकै ॥ ४ ॥
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै ।
कृपासिंधु सनमानि, जानि जन दीन लियो अपनाइकै ॥ ५ ॥
स्वारथ-परमारथ करतलगत, श्रमपथ गयो सिराइकै ।
सपने कै सौ, तुक सुख-सस सुर सींचत देत निराइकै ॥ ६ ॥
गुरु गौरीस, साँइ सीतापति, हित हनुमानहि जाइकै ।
मिलिहौं, मोहि कहा कीबे अब, अभिमत-अवधि अघाइकै ॥ ७ ॥
मरतो कहाँ जाइ, को जानै, लटि लालची ललाइकै ।
तुलसीदास भजिहौं रघुबीरहि अभय-निसान बजाइकै ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजीका उपदेश और आशीर्वाद पा विभीषणजी उन्हें सिर नवा मन-ही-मन यह कहते हुए चले ॥ १ ॥ 'दसों दिशाओंमें मंगलमय शकुन होते दिखायी दे रहे हैं', इससे उनका शोक दूर हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया, हृदय आनन्दपूर्ण हो गया और शरीर प्रेमवश अत्यन्त पुलकित हो गया ॥ २ ॥ [वे कहने लगे—] 'आखिर, भाईका भाव तो मेरे लिये अच्छा ही हुआ, यद्यपि उसने यह कार्य तो मेरा अहित चाहकर ही किया था। विधाताने मेरी बात बना दी, अतः रावणकी लात मेरे लिये तो कूबरकी लात हो गयी [अर्थात् जैसे

कूबरमें लात लगनेसे वह सीधा हो जाता है, उसी प्रकार रावणकी लात लगनेसे मुझे भगवान् रामकी मंगलमयी शरण मिलनेकी सम्भावना हो गयी] ॥ ३ ॥ यदि ऐसा न होता तो श्रीमहादेवजी कुबेरके घर मिलकर हृदयमें मेरा हित विचारकर ऐसी बात क्यों कहते ? जिसे सुनकर मैंने अपनी कुटिलता छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरण ताकी है ॥ ४ ॥ उन कृपासागर त्रिशूलधरने अनायास ही अनुकूल होकर मुझे आनन्दजनक मार्ग दिखलाया और अपना दीनजन जानकर इस दासको आदरपूर्वक अपना लिया ॥ ५ ॥ उनकी कृपासे मुझे स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही करतलगत हो गये और श्रमका मार्ग स्वप्नश्रमके समान निवृत्त हो गया, और ऐसा सुख हो गया जैसे भूसी बोनेसे अन्न उत्पन्न हो जाय और देवता लोग उसे निराकर सींच दें ॥ ६ ॥ अब मैं अपने गुरु भगवान् शंकर, स्वामी सीतापति श्रीराम और हितकारी हनुमान्‌जीसे जाकर मिलूँगा । अब मुझे करना ही क्या है ? मुझे तो अब अघाकर अभीष्ट फलकी सीमा मिल गयी ॥ ७ ॥ कौन जाने मैं महान् विषय-लोलुप विषयोंकी लालसासे भटकता हुआ कहाँ जाकर मरता ।' तुलसीदासजी कहते हैं, किन्तु अब तो अभय दुन्दुभी बजाकर मैं रघुनाथजीका ही भजन करूँगा ॥ ८ ॥

[२९]

पदपदुम गरीबनिवाजके ।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन-फल हित सुर-साधु-समाजके ॥ १ ॥
गई बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साजके ।
सबरी-सुखद, गीध-गतिदायक, समन सोक कपिराजके ॥ २ ॥

नाहिन मोहि और कतहूँ कछु, जैसे काग जहाजके।
आयो सरन सुखद पदपंकज चौंथे रावन बाजके ॥ ३ ॥
आरतिहरन सरन, समरथ सब दिन अपनेकी लाजके।
तुलसी 'पाहि' कहत नत-पालक मोहुसे निपट निकाजके ॥ ४ ॥

'अहो! अब मैं गरीबनिवाज भगवान् रामके उन चरणकमलोंको जाकर देखूँगा और नयनोंका फल पाऊँगा जो देवता और साधुसमाजके लिये अत्यन्त हितकर हैं ॥१॥ भगवान् राम बीते सुखको वापिस लानेवाले, अन्ततक रक्षा करनेवाले और बिगड़ी बातको बना देनेवाले हैं। वे शबरीको सुख देनेवाले, गृध्रकी मुक्ति करनेवाले और कपिराज सुग्रीवके शोकको शान्त करनेवाले हैं ॥ २ ॥ जहाजके कागके समान मुझे और कहीं कोई आश्रय नहीं है। अतः अब मैं रावणरूप बाजसे पीड़ित होकर उन्हींके सुखदायक चरणकमलोंकी शरण आया हूँ ॥ ३ ॥ वे सदा ही अपने भक्तोंकी लज्जा रखनेमें समर्थ और शरणागतोंके दुःखको दूर करनेवाले हैं।' तुलसीदासजी कहते हैं कि 'रक्षा करो' ऐसा कहनेपर तो वे मुझ-जैसे अत्यन्त निकम्मे पुरुषोंके भी शरणागत-पालक हैं ॥ ४ ॥

[३०]

महाराज राम पहँ जाउँगो।
सुख-स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ, ज्यों साहिबहि सुहाउँगो ॥ १ ॥
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहि सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं ठाकुर-ठाउँ-गो ॥ २ ॥
धरिहैं नाथ हाथ माथे, एहितें केहि लाभ अघाउँगो ?
सपनो-सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो ॥ ३ ॥

कहिहौं, बलि, रोटिहा रावरो, बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो ॥ ४ ॥

'अब मैं महाराज रामके पास जाऊँगा और सब प्रकारका सुख तथा स्वार्थ त्यागकर वही उपाय करूँगा जिससे स्वामीको प्रिय लगूँ ॥ १ ॥ मुझे शरणमें आया सुनकर स्वामी शीघ्र ही बुला लेंगे; किन्तु मैं अत्यन्त सकुचाऊँगा। तब गरीबनिवाज प्रभु राम मुझे बिना स्वामी और ठौर-ठिकानेका जानकर मेरी रक्षा करेंगे ॥ २ ॥ अहा! प्रभु मेरे इस माथेपर अपने हाथ रक्खेंगे! उससे बढ़कर और कौन लाभ होगा जिसमें मैं अघाऊँगा? यह संसार स्वप्नवत् है; इसकी किसी वस्तुको अपनी न समझकर मैं तुच्छ लालचोंमें नहीं लुभाऊँगा ॥ ३ ॥ मैं कहूँगा—'प्रभो! बलिहारी जाऊँ, मैं तो आपके टुकड़े खाकर रहूँगा और बिना मोल ही आपके हाथ बिक जाऊँगा, फिर मैं प्रभुके उतरे हुए वस्त्र पहनूँगा तथा बची हुई जूठन खाऊँगा' ॥ ४ ॥

[३१]

आइ सचिव बिभीषनके कही।
कृपासिंधु! दसकंधबंधु लघु चरन-सरन आयो सही ॥ १ ॥
बिषम बिषाद-बारिनिधि बूड़त थाह कपीस-कथा लही।
गये दुख-दोष देखि पदपंकज, अब न साध एकौ रही ॥ २ ॥
सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई निरबही।
तुलसी मुदित दूत भयो, मानहु अमिय-लाहु माँगत मही ॥ ३ ॥

[वानरसेनाके समीप पहुँचनेपर] विभीषणके मन्त्रीने रघुनाथजी-से आकर कहा—'हे कृपासिन्धो! रावणका छोटा भाई निष्कपट भावसे

आपके चरणोंकी शरणमें आया है ॥ १ ॥ वह अत्यन्त विषादरूप समुद्रमें डूब रहा था कि उसी समय उसे सुग्रीवकी कथारूप थाह मिली। अब आपके चरणकमलोंका दर्शन करके तो उसके सारे दुःख और दोष निवृत्त हो गये हैं और उसे किसी प्रकारकी कामना नहीं रही है ॥ २ ॥ प्रभुके अंग-अंगमें सुन्दरता अच्छी तरह छायी हुई थी। उसे देखकर वह मन्त्री स्नेहसे शिथिल होकर सराहने लगा। तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय वह दूत ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसे मट्ठा माँगते हुए अमृत प्राप्त हो गया हो ॥ ३ ॥

[३२]

बिनती सुनि प्रभु प्रमुदित भए।
रीछराज, कपिराज, नील-नल बोलि बालिनंदन लए ॥ १ ॥
बूझिये कहा ? रजाइ पाइ नय-धरम सहित ऊतर दए।
बली बंधु ताको जेहि बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए ॥ २ ॥
बाँह-पगार ! द्वार तेरे तैं सभय न कबहू फिरि गए।
तुलसी असरन-सरन स्वामिके बिरद बिराजत नित नए ॥ ३ ॥

दूतकी विनय सुनकर प्रभु परम प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋक्षराज जाम्बवान्, कपिपति सुग्रीव, नील, नल और बालिकुमार अंगदको बुलाया ॥ १ ॥ [तथा उनसे पूछा—] 'आप लोग इस सम्बन्धमें क्या समझते हैं ?' प्रभुकी आज्ञा पा उन्होंने धर्म और नीतिके अनुकूल उत्तर दिये। वे बोले—'प्रभो ! यह महाबलवान् और उसका भाई है जिसने मोहवश बलात्कारसे आपके प्रति शत्रुताके बीज बोये हैं [इसलिये तो इससे सावधान रहना ही ठीक है] ॥ २ ॥ परन्तु हे बाँह-पगार

(अपनी भुजारूप दीवारसे रक्षा करनेवाले)! आपके द्वारपर आकर कोई भी भयभीत कभी उलटा नहीं लौटा!' तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके 'अशरण-शरण' ऐसे विरद तो नित्य नये विराजमान हैं ॥ ३ ॥

[३३]

हिय बिहसि कहत हनुमानसों ।
सुमति साधु सुचि सुहृद बिभीषन बूझि परत अनुमानसों ॥१॥
'हौं बलि जाउँ, और को जानै ?' कही कपि कृपानिधानसों ।
छली न होइ स्वामि सनमुख, ज्यों तिमिर सातहय-जानसों ॥२॥
खोटो खरो सभीत पालिये सो सनेह सनमानसों ।
तुलसी प्रभु कीबो जो भलो, सोइ बूझि सरासन बानसों ॥३॥

तब रघुनाथजी हृदयमें हँसकर हनुमान्‌जीसे कहने लगे—'अनुमानसे तो मुझे विभीषण सुमति, साधु, शुद्धचित्त और सुहृद् ही जान पड़ता है' ॥ १ ॥ तब हनुमान्‌जीने कृपानिधान भगवान् रामसे कहा—'मैं बलिहारी जाऊँ, आपसे बढ़कर इस विषयमें और कौन जान सकता है? जिस प्रकार अन्धकार सूर्यके सम्मुख नहीं ठहर सकता उसी प्रकार छली पुरुष तो प्रभुके सामने भी नहीं आ सकता ॥ २ ॥ यह भयभीत है; अतः यह अच्छा हो या बुरा, अब इसका स्नेह और आदरपूर्वक पालन कीजिये अथवा जैसा करना उचित हो वह अपने धनुष-बाणसे ही पूछ लीजिये [क्योंकि यह स्वभावसे ही दुष्टोंके घातक और साधुजनोंके प्रतिपालक हैं]' ॥ ३ ॥

[३४]

साचेहु बिभीषन आइहै ?
बूझत बिहसि कृपालु, लषन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ है ॥१॥

ऐहै कहा, नाथ ? आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है।
रावन-रिपुहि राखि रघुबर बिनु को त्रिभुवनपति पाइहै ॥२॥
प्रभु प्रसन्न, सब सभा सराहति, दूत-बचन मन भाइहै।
तुलसी, 'बोलिये बेगि', लषनसों भइ महराज रजाइ है ॥३॥

कृपामय श्रीरामचन्द्र हँसकर पूछते हैं—'क्या सचमुच विभीषण यहाँ आवेगा ?' यह सुनकर लक्ष्मणजीने सिर नवाकर सकुचाते हुए कहा—॥ १ ॥ 'प्रभो ! आवेगा क्या, वह तो यहाँ आ गया। आपके सामने ऐसी बात बनाकर कैसे कही जा सकती है ? भला, रावणके शत्रुको, एक रघुनाथजीको छोड़कर, और ऐसा कौन त्रिभुवनपति मिलेगा जो रख सके ?' ॥ २ ॥ लक्ष्मणजीके ये वचन सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए, सब सभा प्रशंसा करने लगी और दूतको भी ये वचन मनमें प्रिय लगे। तुलसीदासजी कहते हैं, उस समय लक्ष्मणजीको महाराजकी आज्ञा हुई कि उसे शीघ्र ही बुला लो ॥ ३ ॥

[३५]

चले लेन लषन-हनुमान हैं।
मिले मुदित बूझि कुसल परसपर, सकुचत करि सनमान हैं ॥१॥
भयो रजायसु, पाँउ धारिए, बोलत कृपानिधान हैं।
दूरितें दीनबंधु देखे, जनु देत अभय-बरदान हैं ॥२॥
सील सहस हिमभानु, तेज सतकोटि भानुहूके भानु हैं।
भगतनिको हित कोटि मातुपितु, अरिन्हको कोटि कृसानु हैं ॥३॥
जनगुन रज गिरि गनि, सकुचत निज गुन गिरि रज-परमानु हैं।
बाँह-पगारु, बोलको अबिचल, बेद करत गुनगान हैं ॥४॥

चारु चाप-तूनीर तामरस-करनि सुधारत बान हैं।
चरचा चलति बिभीषनकी, सोइ सुनत सुचित दै कान हैं ॥५॥
हरषत सुर, बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं।
तुलसी ते कृतकृत्य, जे सुमिरत समय सुहावनो ध्यान हैं ॥६॥

तब विभीषणको लेनेके लिये लक्ष्मणजी और हनुमान्जी चले। वे प्रसन्नतापूर्वक मिले और कुशल पूछकर परस्पर सम्मान करते हुए सकुचाने लगे ॥ १ ॥ वे बोले—'पधारिये, भगवान्की आज्ञा हो गयी है, कृपानिधान रघुनाथजी आपको बुला रहे हैं।' तब विभीषणने दूरहीसे प्रभुको देखा, मानो वे अभयताका वर दे रहे हैं ॥ २ ॥ तथा शान्तिमें सहस्रों चन्द्रमाओंके समान, तेजमें अरबों सूर्योंके भी सूर्य, भक्तोंके लिये करोड़ों माता-पिताओंके समान हितकारी और शत्रुओंके लिये करोड़ों अग्नियोंके समान हैं ॥ ३ ॥ वे अपने भक्तके रजतुल्य गुणों-को पर्वत-समान समझकर सकुचाते हैं और अपने पर्वततुल्य गुणोंको रजवत् समझते हैं। प्रभु अपनी भुजाओंसे शरणागतोंकी रक्षा करने-वाले और प्रतिज्ञाके पक्के हैं, ऐसा वेद भी उनका गुण गाते हैं ॥ ४ ॥ वे अपने करकमलोंसे सुन्दर धनुष, तरकस और बाणको सुधार रहे हैं; और उस समय जो विभीषणकी चर्चा चल रही है उसे एकाग्र-चित्तसे कान लगाकर सुन रहे हैं ॥ ५ ॥ देवता लोग प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। ये शुभ शकुन भावी कल्याणकी सूचना देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, जो लोग उस सुहावने समयका ध्यान और स्मरण करते हैं वे कृतकृत्य हैं ॥ ६ ॥

[३६]

रामहि करत प्रनाम निहारिकै ।
उठे उमँगि आनंद-प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारिकै ॥ १ ॥
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै ।
भली भाँति भावते भरत-ज्यों भेंट्यौ भुजा पसारिकै ॥ २ ॥
सादर सबहि मिलाइ समाजहि निपट निकट बैठारिकै ।
बूझत छेम-कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारिकै ॥ ३ ॥
नाथ ! कुसल-कल्यान-सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै ।
देत-लेत जे नाम रावरो, बिनय करत मुख चारि कै ॥ ४ ॥
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि-महेस मन मारिकै ।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै ॥ ५ ॥

भगवान् रामको देखकर विभीषणने प्रणाम किया । तब प्रभु अपना विरद [शरणागतपालकत्व] स्मरणकर आनन्द और प्रेमसे परिपूर्ण हो उमँगकर उठे ॥ १ ॥ इस समय उधर तो विभीषण विदेह हो गये [उन्हें शरीरकी कुछ भी सुध न रही] और इधर प्रभु अपनेको भूलकर प्रिय भाई भरतकी तरह भुजा फैलाकर खूब अच्छी तरह मिले ॥ २ ॥ फिर आदरपूर्वक सारे समाजसे भेंट करा अपने अत्यन्त समीप बिठा लिया, और उसे सप्रेम अपनाकर, खूब भरोसा दे कुशल-क्षेम पूछने लगे ॥ ३ ॥ तब विभीषणने कहा—'हे नाथ ! जो लोग आपका नाम जपते हैं उन्हें भी ब्रह्माजी अच्छी तरह कुशल, कल्याण, मंगल और सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं और अपने चारों मुखोंसे उसकी विनती करते हैं [फिर मैं तो साक्षात् आपहीके समीप बैठा हुआ हूँ, मेरे कुशल-

क्षेमका क्या कहना है ?] ॥ ४ ॥ जिस मूर्तिको बड़े-बड़े मुनि और लोकेश्वरगण भी मनको जीतकर स्वप्नमें भी नहीं देख पाते उसीने मुझे गोदमें भर लिया ! [फिर मेरे सौभाग्यका क्या कहना है ?] मैं इसमें कोई बात बनाकर नहीं कहता' ॥ ५ ॥

[३७]

करुनाकरकी करुना भई ।
मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ, काहूसों न खुनिस-खई ॥ १ ॥
दसमुख तज्यो दूध-माखी ज्यों, आपु काढ़ि साढ़ी लई ।
भव-भूषन सोइ कियो बिभीषन मुद-मंगल-महिमामई ॥ २ ॥
बिधि-हरि-हर, मुनि-सिद्ध सराहत, मुदित देव दुंदुभी दई ।
बारहि बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई ॥ ३
कौसिक-सिला-जनक-संकट हरि भृगुपतिकी टारी टई ।
खग-मृग, सबर-निसाचर, सबकी पूँजी बिनु बाढ़ी सई ॥ ४ ॥
जुग जुग कोटि-कोटि करतब, करनी न कछु बरनी नई ।
राम-भजन-महिमा हुलसी हिय, तुलसीहूकी बनि गई ॥ ५ ॥

इस प्रकार जब करुणाकरकी करुणा हुई तो विभीषणका मरणभय दूर हो गया, लंकाका राज्य पाकर रावणकी शंका जाती रही तथा किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रहा ॥ १ ॥ जिस विभीषणको रावणने दूधकी मक्खीके समान निकालकर स्वयं मलाई [साररूप लंकाकी विभूति] ले ली थी, उसीको भगवान्‌ने संसारका भूषण तथा मुद-मङ्गलमयी महिमासे सम्पन्न बना दिया ॥ २ ॥ उस समय ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, मुनि और सिद्धगण उसके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे तथा देवताओंने

प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाना और हृदयमें प्रसन्न होकर जय-जयकार करते हुए बारंबार पुष्प बरसाना आरम्भ कर दिया ॥ ३ ॥ भगवान्ने विश्वामित्रजी, जनकजी और पाषाणरूपा अहल्याका संकट दूरकर परशुरामजीके आतंकको नष्ट किया। तथा पक्षी (जटायु), मृग (मारीच), शबरी और निशाचर (विभीषण) इन सबकी बिना पूँजीके ही उन्नति की ॥ ४ ॥ इस प्रकार युग-युगमें प्रभुके करोड़ों दिव्य कर्म हैं—यह उनके कुछ नये कार्य नहीं बतलाये गये। हृदयमें राम-भजनकी महिमाका उल्लास होनेसे इस समय तुलसीकी भी बात बन गयी है ॥ ५ ॥

[३८]

मंजुल मूरति मंगलमई।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीषन, नेह देह-सुधि-सींव गई ॥ १ ॥
उठि दाहिनी ओरतें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई।
नखसिख निरखि-निरखि सुख पावत, भावत कछु, कछु और भई ॥ २ ॥
बार कोटि सिर काटि, साटि लटि रावन संकरपै लई।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन-ज्यों दई ॥ ३ ॥
प्रीति-प्रतीति-रीति-सोभा-सरि, थाहत जहँ, जहँ तहँ घई।
बाहु-बली, बानैत बोलको, बीर बिस्वबिजई जई ॥ ४ ॥
को दयालु दूसरो दुनी, जेहि जरनि दीन-हियकी हई ?।
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥ ५ ॥

प्रभुकी अति मनोहर और मङ्गलमयी मूर्ति देखकर विभीषण शोकहीन हो गये और उसके प्रेममें वे देहानुसन्धानकी सीमाका अतिक्रमण कर गये ॥ १ ॥ फिर उन्होंने दाहिनी ओरसे उठकर प्रभुके सामनेकी सुखप्रद

बैठक माँग ली। वहाँ प्रभुको नखसे सिखतक देख-देखकर आनन्दित होने लगे। देखिये, वे चाहते कुछ थे और हो कुछ और ही गया! ॥२॥ जिस लंकाको रावणने करोड़ों बार अपने सिर काट-काटकर अत्यन्त क्लेश उठानेके अनन्तर श्रीमहादेवजीसे प्राप्त किया था वही भगवान्ने विभीषणको अपना अनवसरका अतिथि समझकर संकोचवश तृणके आसनके समान दी! ॥ ३ ॥ प्रभु प्रीति, प्रतीति, रीति और शोभाकी नदीके समान हैं। उनकी जहाँ-जहाँ (जिस-जिस गुणकी) थाह ली जाती है, वहीं वे अथाह दिखायी देते हैं। वे भुजाओंके बड़े पराक्रमी, प्रतिज्ञाके पक्के और परशुराम आदि विश्वविजयी वीरोंको जीतनेवाले हैं ॥ ४ ॥ संसारमें ऐसा दयालु और कौन है जिसने दीनजनोंके हृदयोंकी जलन दूर की हो? तुलसीदासजी कहते हैं, संसारमें रामके सिवा और किसका नाम जपनेसे पृथिवी बिना बोये ही जमती है [अर्थात् सुकृत किये बिना ही पुण्यफल प्राप्त होता है] ? ॥ ५ ॥

[३९]

सब भाँति बिभीषनकी बनी।
कियो कृपालु अभय कालहुतें, गइ संसृति-साँसति घनी ॥ १ ॥
सखा लषन-हनुमान, संभु गुर, धनी राम कोसलधनी।
हिय ही और, और कीन्हीं बिधि, रामकृपा औरै ठनी ॥ २ ॥
कलुष-कलंक-कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी।
सोइ पद पाय बिभीषन भो भव-भूषन दलि दूषन-अनी ॥ ३ ॥
बाँह-पगार, उदार-सिरोमनि, नत-पालक, पावन पनी।
सुमन बरषि रघुबर-गुन बरनत, हरषि देव दुंदुभी हनी ॥ ४ ॥

रंक-निवाज रंक राजा किए, गए गरब गरि गरि गनी।
राम-प्रनाम महामहिमा खनि, सकल सुमंगलमनि जनी॥ ५॥
होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी।
भुजा उठाइ, साखि संकर करि, कसम खाइ तुलसी भनी॥ ६॥

विभीषणकी बात सब प्रकार बन गयी। कृपालु रघुनाथजीने उसे कालसे भी निर्भय कर दिया और उसे संसारका घोर त्रास भी नहीं रहा॥ १॥ उसे लक्ष्मण और हनुमान्-जैसे सखा, शंकर-जैसे गुरु और कोसलेश्वर राम-जैसे स्वामी मिले। उसके हृदयमें तो कुछ और था, किन्तु विधाताने कर कुछ और ही दिया, तथा अब रामकृपासे कुछ और ही बानक बन गया॥ २॥ रणवीर रावण जिस [लंकेश्वर] पदको पाकर पाप, कलंक और क्लेशोंका कोष बना हुआ था विभीषण उसी पदको पाकर सम्पूर्ण दोषोंके दलका दलनकर संसारका भूषण बन गया॥ ३॥ जिनकी भुजाएँ दीनोंकी रक्षा करनेके लिये दीवाररूप हैं, तथा जो उदारशिरोमणि, प्रणतपालक और पवित्र प्रण करनेवाले हैं उन रघुनाथजीके गुणोंका देवता लोग प्रसन्न होकर पुष्प बरसाते तथा दुन्दुभी बजाते गान करने लगे॥ ४॥ गरीबनिवाज रघुनाथजीने गरीब विभीषणको राजा बना दिया। इससे बड़े-बड़े धनियों (अपनेको गिने-चुने भक्तशिरोमणि समझनेवाले नारदादि) का मानमर्दन हो गया। भगवान् रामको किया हुआ प्रणाम एक महामहिम खान है; उससे सब प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त मणियोंका प्रादुर्भाव होता है॥ ५॥ आज भी अभिमान छोड़कर भगवान् रामकी शरण जानेसे इसी प्रकार

भला हो सकता है। यह बात तुलसीदासने शंकरको साक्षी कर, भुजा उठा, सौगन्ध खाकर कही है ॥ ६ ॥

[४०]

कहो, क्यों न बिभीषनकी बनै ?
गयो छाड़ि छल सरन रामकी, जो फल चारि चारयौं जनै ॥ १ ॥
मंगलमूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगलके खनै।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ? ॥ २ ॥
नाम-प्रताप पतितपावन किए, जे न अघाने अघ अनै।
कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस-तनै ॥ ३ ॥
हुतो ललात कृसगात खात खरि, मोद पाइ कोदो-कनै।
सो तुलसी चातक भयो जाचत राम स्यामसुंदर घनै ॥ ४ ॥

कहो विभीषणकी बात क्यों न बने, जो छल त्यागकर भगवान् रामकी शरण गये थे ? जो चार प्रकारके भक्तोंके लिये चारों प्रकारके फल उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ जिनको किया हुआ मङ्गलमूल प्रणाम संसारमें अमंगलकी जड़को उखाड़ डालता है उन्हीं रघुनाथजीने जिनके सिरपर अपना हाथ रक्खा उन विभीषणजीकी महिमा कौन कह सकता है ? ॥ २ ॥ जो पाप और अनीति करते कभी नहीं अघाये थे उन पतितोंको भी प्रभुने अपने नामके प्रतापसे ही पवित्र कर दिया। कोई उलटा और कोई सीधा नाम जपकर ही काकवत् आचरणवाले भी राजहंसवत् शुद्ध हो गये ॥ ३ ॥ जो [विषयतृष्णाके कारण] दुर्बल-शरीर होनेसे खली खाता हुआ [तुच्छ विषयभोगरूप] एक-एक टुकड़ेके लिये लालायित रहता था और [स्वर्गसुखरूप] कोदोके कण पाकर

भी बड़ा आनन्द मानता था वही तुलसी अब पपीहा होकर रामरूप श्यामसुन्दर मेघकी याचना करता है ॥ ४ ॥

[४१]

अति भाग बिभीषनके भले ।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भए, दुरित-दोष-दारिद दले ॥ १ ॥
रावन-कुंभकरन बर माँगत सिव-बिरंचि बाचा छले ।
राम-दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले ॥ २ ॥
मिलनि बिलोकि स्वामि-सेवककी उकठे तरु फूले-फले ।
तुलसी सुनि सनमान बंधुको दसकंधर हँसि हिये जले ॥ ३ ॥

विभीषणजीके भाग्य बड़े ही अच्छे हैं, जिनके एक प्रणामसे ही भगवान् राम प्रसन्न हो गये और उनके सारे पाप, दोष तथा दरिद्रता दूर कर दिये ॥ १ ॥ जिस समय रावण और कुम्भकर्णने वर माँगा था उस समय शिव और ब्रह्माने उन्हें सरस्वतीकी सहायतासे छल लिया [अतः वे माँगना कुछ चाहते थे और माँग कुछ और ही बैठे] किन्तु विभीषणने तो रामके दर्शनमात्रसे ही अविचल पद प्राप्त कर लिया [उन्हें माँगनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ी] वास्तवमें वे अच्छे दिन अच्छे शकुनके समय चले थे ॥ २ ॥ वह स्वामी और सेवकका सम्मिलन देखकर सूखे वृक्ष भी फूलने-फलने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं, भाईका सम्मान हुआ सुनकर रावण मुखसे तो हँसने लगा, किन्तु हृदयमें ईर्ष्यानलसे जल उठा ॥ ३ ॥

[४२]

गये राम सरन सबकौ भलो ।
गनी-गरीब, बड़ो-छोटो, बुध-मूढ़, हीनबल-अतिबलो ॥ १ ॥

पंगु-अंध, निरगुनी-निसंबल, जो न लहै जाचे जलो।
सो निबह्यो नीके, जो जनमि जग राम-राजमारग चलो ॥२॥
नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुतहित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल-सो खलो ॥३॥
प्रभुपद प्रेम प्रनाम-कामतरु सद्य बिभीषनको फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनिको मंगलमय नभ-जल-थलो ॥४॥

रामकी शरण जानेपर सभीका भला होता है; चाहे वह धनी हो या निर्धन, बड़ा हो या छोटा, बुद्धिमान् हो या मूर्ख अथवा दुर्बल हो या अति बलवान् ॥१॥ जो पंगु, अन्धे, गुणहीन और अकिञ्चन हैं, जिन्हें माँगनेपर जल भी नहीं मिलता, उन्होंने भी यदि संसारमें जन्म लेकर रामके राजमार्ग (भक्तियोग) का अवलम्बन किया है तो प्रभुने उनको खूब निभाया है ॥२॥ रामनामके प्रतापरूप सूर्यकी प्रखर किरणोंमें कलिकल्मष भी तुषारके समान पिघल जाता है। देखो, पुत्रके मिससे ही उनका नाम लेनेके कारण अजामिल-जैसा दुष्ट भी भवसागरसे पार हो गया था ॥ ३ ॥ प्रभुके चरणोंमें प्रेमपूर्वक किया हुआ विभीषणका प्रणामरूप कल्पवृक्ष तत्काल ही फलित हो गया। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी प्रकार प्रभुका नाम स्मरण करते ही सबके लिये आकाश, जल और स्थल सभी मङ्गलमय हो जाते हैं ॥ ४ ॥

[४३]

सुजस सुनि श्रवन हौं नाथ! आयो सरन।
उपल-केवट-गीध-सबरी-संसृति-समन,
सोक-श्रम-सीव सुग्रीव आरतिहरन ॥ १ ॥

राम राजीव-लोचन बिमोचन बिपति,
स्याम नव-तामरस-दाम बारिद-बरन ।
लसत जटाजूट सिर, चारु मुनिचीर कटि,
धीर रघुबीर तूनीर-सर-धनु-धरन ॥ २ ॥
जातुधानेस-भ्राता बिभीषन नाम
बंधु-अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन ।
पतितपावन ! प्रनतपाल ! करुनासिंधु !
राखिए मोहि सौमित्रि-सेवित-चरन ॥ ३ ॥
दीनता-प्रीति-संकलित मृदुबचन सुनि
पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन ।
बोलि, 'लंकेस' कहि, अंक भरि भेंटि प्रभु,
तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद-दरन ॥ ४ ॥
रातिचर-जाति, आराति, सब भाँति गत,
कियो सो कल्यान-भाजन सुमंगलकरन ।
दास तुलसी सदयहृदय रघुबंसमनि
'पाहि' कहे काहि कीन्हों न तारनतरन ? ॥ ५ ॥

[विभीषण कहते हैं–] 'हे नाथ ! मैं अपने कानोंसे आपका सुयश सुनकर शरणमें आया हूँ। आप पाषाणरूपिणी अहल्या, केवट, गृध्र और शबरीके आवागमनरूप संसृतिचक्रको शान्त करनेवाले तथा शोक और श्रमके सीमारूप सुग्रीवका दुःख दूर करनेवाले हैं ॥ १ ॥ हे राम ! आप कमलके समान नेत्रोंवाले, सब प्रकारकी विपत्तियोंके नाशक, नवीन नीलकमलकी-सी श्यामल कान्तिवाले तथा मेघवर्ण हैं,

आपके सिरपर जटाजूट शोभायमान हैं, कमरमें मनोहर मुनिवस्त्र है, तथा आप धनुष-बाण और तरकस धारण करनेवाले परम धीर रघुवंशी वीर हैं ॥ २ ॥ मैं राक्षसराज रावणका भाई हूँ, मेरा नाम विभीषण है, मैं भाईके तिरस्कारसे उत्पन्न हुई महान् ग्लानिसे गला जा रहा हूँ। हे पतितपावन! हे प्रणतपाल! हे करुणासिन्धो! आप मुझे अपने लक्ष्मणजीद्वारा सेवित चरणोंमें आश्रय दीजिये' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये दीनता और प्रीतिसे सने हुए मधुर वचन सुनकर प्रभुका शरीर प्रेमसे पुलकित हो गया और नेत्रोंमें जल भरने लगा। तब दीनोंके दुःख, दोष और दरिद्रता दूर करनेवाले प्रभुने उन्हें 'लंकेश' कहकर बुलाया और भुजाओंमें भर आलिंगनकर उनका राजतिलक कर दिया ॥ ४ ॥ विभीषण जातिका राक्षस और अपना शत्रु होनेसे सब प्रकार त्याज्य था, तब भी मङ्गलकर्ता श्रीहरिने उसे सब प्रकार कल्याणका पात्र कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, रघुवंशमणि भगवान् राम बड़े ही दयालुचित्त हैं; उन्होंने 'रक्षा करो' ऐसा कहते ही किसे दूसरोंको तारनेवाला नहीं बना दिया? ॥ ५ ॥

[४४]

दीन-हित बिरद पुराननि गायो।
आरत-बंधु, कृपालु, मृदुल-चित जानि सरन हौं आयो ॥ १ ॥
तुम्हरे रिपुको अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन-सील-सुभाउ नाथको मैं चरननि चितु लायो ॥ २ ॥
जानत प्रभु दुख-सुख दासनिको, तातें कहि न सुनायो।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु, तब जानौं अपनायो ॥ ३ ॥

बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो।
भेंट्यो हरि भरि अंक भरत-ज्यौं, लंकापति मन भायो ॥ ४ ॥
करपंकज सिर परसि अभय कियो, जनपर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो ? ॥ ५ ॥

'प्रभो ! पुराणोंने आपका 'दीनहितकारी' ऐसा सुयश गाया है। मैं भी आपको दीनबन्धु, कृपालु और मृदुलचित्त जानकर ही शरणमें आया हूँ ॥ १ ॥ मैं राक्षसवंशमें उत्पन्न हुआ आपके शत्रु रावणका छोटा भाई विभीषण हूँ। प्रभुका गुण, शील और स्वभाव सुनकर मैंने आपके ही चरणोंमें चित्त लगाया है ॥ २ ॥ प्रभु अपने दासोंका सुख-दुःख जानते ही हैं, इसलिये मैंने उसका कथन नहीं किया। अब तो जब आप मुझे करुणा करके नेत्र भरकर निहारेंगे तभी मैं जानूँगा कि आपने मुझे अपनाया है' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये विनीत वचन सुनकर रघुनाथजीने उसे हँसकर अपने पास बुलाया, फिर भगवान्‌ने उसे भरतजीके समान भुजाओंमें भरकर आलिंगन किया और उसे मन-ही-मन लंकापति माना ॥ ४ ॥ फिर अपने करकमलसे उसका सिर स्पर्शकर उसे अभय किया और इस प्रकार प्रभुने अपने भक्तपर प्रेम प्रकट किया। तुलसीदासजी कहते हैं, रघुनाथजीका भजन करके भला किसने परमपद प्राप्त नहीं किया ? ॥ ५ ॥

राग धनाश्री

[४५]

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति, लंकापति, तुम्हसन कौन दुराउ ॥ १ ॥

सबबिधि हीन-दीन, अति जड़मति, जाको कतहु न ठाउँ।
आयो सरन भजौं, न तजौं तिहि, यह जानत रिषिराउ ॥ २ ॥
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित, नाहिन और उपाउ।
तिन्हहिं लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ ॥ ३ ॥
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहतहौं, सकल सभा पतिआउ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम, कपट-प्रीति बहि जाउ ॥ ४ ॥
सुनि रघुपतिके बचन बिभीषन प्रेम-मगन, मन चाउ।
तुलसिदास तजि आस-त्रास सब ऐसे प्रभुकहँ गाउ ॥ ५ ॥

[भगवान् रामने कहा–] 'हे मित्रवर सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनिये, आपलोगोंसे क्या छिपाना है? जो मेरा प्राकृतिक स्वभाव है वह सच-सच बतलाता हूँ ॥ १ ॥ जो सब प्रकार पतित, दीन, और अत्यन्त जड़बुद्धि हैं और जिनका कहीं भी ठिकाना नहीं है वह यदि शरण आता है तो मैं उसकी सब प्रकार सेवा करता हूँ और उसे कभी नहीं त्यागता—यह बात वाल्मीकि आदि ऋषीश्वर जानते हैं ॥ २ ॥ जिनके चित्तमें एकमात्र मैं ही परम हितकारी हूँ तथा जिन्हें और कोई भी उपाय नहीं सूझता उन्हींके लिये मैं देह धारणकर सारे कार्य करता हूँ और 'मेरा सुयश नष्ट हो जायगा' इस बातसे नहीं डरता ॥ ३ ॥ मैं बारंबार भुजा उठाकर कहता हूँ, सम्पूर्ण सभा मेरा विश्वास करे, मुझे अपने दासके समान कोई प्रिय नहीं है, हाँ निष्कपट प्रीति करनेवाला दास होना चाहिये (क्योंकि 'मोहि कपट-छल-छिद्र न भावा') ॥ ४ ॥ रघुनाथजीके ये वचन सुनकर विभीषण प्रेममें मग्न हो गये और उनके मनमें बड़ा चाव बढ़ा। तुलसीदासजी

कहते हैं, सब प्रकारकी आशा और भय छोड़कर ऐसे प्रभुका ही गुणगान करो' ॥५॥

[४६]

नाहिन भजिबे जोग बियो।
श्रीरघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो ॥ १ ॥
कहहु, कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो ?
कौने गीध अधमको पितु-ज्यों निज कर पिंड दियो ? ॥ २ ॥
कौन देव सबरीके फल करि भोजन सलिल पियो ?
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ? ॥ ३ ॥
भजन प्रभाउ बिभीषन भाष्यौ, सुनि कपि-कटक जियो।
तुलसिदासको प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो ॥ ४ ॥

'रघुनाथजीके सिवा और कोई भजनेयोग्य नहीं है। भला उनके समान और किसका हृदय कृपासे पूर्ण है ? ॥ १ ॥ बतलाओ, और किस देवताने शिलाका उद्धार करके केवटको मित्र बनाया है ? और किसने महापतित गृध्रको पिताके समान अपने हाथोंसे पिण्ड दिया है ? ॥ २ ॥ ऐसा कौन देवता है जिसने शबरीके फल खाकर जल पिया हो ? और बालिके भयरूप समुद्रमें डूबते हुए सुग्रीवको भी किसने बाँह पकड़कर निकाला है ?' ॥ ३ ॥ इस प्रकार जब विभीषणने भगवान्के भजनका प्रभाव कहा तो सारी वानरसेना सुनकर सजीव हो गयी। वास्तवमें तुलसीदासके प्रभु कोसलपति श्रीराम ही सब प्रकार उत्कृष्ट हैं ॥ ४ ॥

जानकी-त्रिजटा-संवाद

राग जैतश्री

[४७]

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल, कृपाअयन,
मयननि बहु छबि अंगनि दूरति ॥ १ ॥
सिरसि जटा-कलाप, पानि सायक-
चाप, उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीरकी सोभा सुमिरि,
भई है मगन नहि तनकी सूरति ॥ २ ॥

[जानकीजी कहती हैं—] 'मैं इन नयनोंसे वह मधुर मूर्ति कब देखूँगी ? जिसके कमलदलके समान नेत्र हैं, जो अत्यन्त सुकुमार और कृपाकी खान है तथा अपने अंगोंसे अनेकों कामदेवोंको महती छबिका भी निरादर करती है ॥ १ ॥ जिसके सिरपर जटाजूट है, हाथमें धनुष-बाण है और वक्षःस्थलमें मनोहर वनमाला लटकी हुई है ।' तुलसीदासजी कहते हैं, इस प्रकार रघुनाथजीकी शोभाका स्मरण कर सीताजी प्रेममें मग्न हो रही हैं; उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं है ॥ २ ॥

राग केदारा

[४८]

कहु, कबहु देखिहौं आली ! आरज-सुवन ।
सानुज सुभग-तनु, जबतें बिछुरे बन,
तबतें दव-सी लगी तीनिहू भुवन ॥ १ ॥

मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये,

मनके करन चाहैं चरन छुवन।

चित्त चढ़िगो बियोग-दसा न कहिबे जोग,

पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥ २ ॥

तुलसी त्रिजटा जानी, सिय अति अकुलानी

मृदुबानी कह्यौ ऐहैं दवन-दुवन।

तमीचर-तम-हारी सुरकंज-सुखकारी

रबिकुल-रबि अब चाहत उवन ॥ ३ ॥

'सखि त्रिजटे ! बता तो, क्या मैं कभी भाईके सहित मनोहरमूर्ति आर्यपुत्रका दर्शन कर सकूँगी ? जबसे वनमें उनका वियोग हुआ है तबसे मेरे लिये तो तीनों लोकोंमें दावानल-सी लगी हुई है ॥ १ ॥ उस मूर्तिकी याद करते ही प्रियतम मेरे हृदयमें प्रकट हो जाते हैं, मैं मनोमय हाथों-से उनके चरण स्पर्श करना चाहती हूँ, किन्तु जब चित्तपर उनका वियोग चढ़ता है [अर्थात् जब मुझे उनके वियोगका स्मरण होता है] तो मेरी दशा कहनेयोग्य नहीं रहती; शरीर पुलकित हो जाता है और नेत्रोंसे जल चूने लगता है' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं, ऐसा सुनकर जब त्रिजटाने सीताजीको अत्यन्त व्याकुल देखा तो मधुर वाणी-से कहा—'शत्रुओंका नाश करनेवाले प्रभु राम शीघ्र ही आवेंगे, निशाचररूप अन्धकारका नाश करनेवाले तथा देवतारूप कमलवनके प्रियकारी वे सूर्यकुल-सूर्य अब प्रकट होना ही चाहते हैं ॥ ३ ॥

[४९]

अबलौं मैं तोसों न कहे री।

सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥१॥

बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिजके रहँट नयन नित रहत नहे री॥२॥
सर-सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहे री॥३॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल-धीर सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री॥४॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय सँदेह परिहरु हिय, आइ गए दोउ बीर अहेरी॥५॥

'अरी त्रिजटे! सुन, मैंने तुझसे अभीतक नहीं कहा। परम प्रिय प्राणनाथके बिना मैंने रात-दिन बड़े दुःसह दुःख सहे हैं॥ १॥ मेरे हृदयमें विरहरूप विषम विषकी वेलि बढ़ी हुई है। उसने स्वभावसे ही सारे सुखोंको दग्ध कर दिया है, और उसे सींचनेके लिये ही मानो कामदेवके रहँटरूप हमारे नेत्र सर्वदा चढ़े रहते हैं॥ २॥ हमारा शरीररूप सरोवर सूख गया है; अतः उसमें रहनेवाले प्राणरूप जलचर अब जीवनकी आशा छोड़कर उससे कूच करना चाहते हैं। इस समय प्रभुके सुयशरूप अमृतसे सींचकर यद्यपि तूने उन्हें रोक लिया है तो भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई है॥ ३॥ वे तो शत्रुकी रिसरूप प्रबल नदीमें विवेक, बल और धैर्यके सहित बहे जाते थे। परन्तु पवित्रचित्त पवनपुत्रने मुद्रिकारूप आधार देकर उन्हें तैरकर पकड़ लिया॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं, अरी त्रिजटे! मेरे मनरूप वनमें तो सब प्रकार शोकरूप तुच्छ मृग भरे हुए हैं। [इसपर त्रिजटा कहती है-] सखि सीते! अब तू अपने हृदयका सन्देह छोड़ दे। देख, दोनों 'वीर अहेरी (शिकारी) आ गये हैं [वे इन सब मृगोंको मार डालेंगे]'॥ ५॥

राग बिलावल

[५०]

सो दिन सोनेको, कहु, कब ऐहै !
जा दिन बँध्यौ सिंधु त्रिजटा ! सुनि तू संभ्रम आनि मोहि सुनैहै ॥१॥
बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै ।
कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै ॥२॥
दिव्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहै ।
बरषिहैं कुसुम भानुकुल-मनिपर, तब मोको पवनपूत लै जैहै ॥३॥
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ, तनु-छबि कोटि मनोजहि तैहै ।
इन नयनन्हि यहि भाँति प्रानपति निरखि हृदय आनँद न समैहै ॥४॥
बहुरो सदल सनाथ सलछिमन कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै ।
गुर, पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै ॥५॥
मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहैं माँगने जो जेहि भैहै ।
बिजय राम राजाधिराजको, तुलसिदास पावन जस गैहै ॥६॥

[सीताजी कहती हैं—] त्रिजटे ! बता, वह सुवर्णदिवस कब आवेगा, जब समुद्रको बँधा सुनकर तू जल्दीसे मेरे पास आकर वह समाचार सुनावेगी ? ॥ १ ॥ संसारको दमन करनेवाला और देवता तथा साधुओं-को पीड़ित करनेवाला रावण अपने कियेका फल पावेगा, सुवर्णपुरी लङ्कामें विभीषण राजा हुआ है--यह देखनेके लिये देवता लोग दौड़े आवेंगे ? ॥ २ ॥ आकाशमें दिव्य दुन्दुभियोंका घोष होगा, मुनिगण प्रशंसा करेंगे, निर्मल आकाश विमानोंसे आच्छादित हो जायगा जिनसे सूर्यकुलशिरोमणि भगवान् रामपर पुष्पोंकी वर्षा होगी और उसी समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी मुझे प्रभुके पास ले जायँगे ॥ ३ ॥ तथा

जिस समय भगवान् राम भाई लक्ष्मणके सहित वानरोंमें विराजमान होंगे और अपने शरीरकी शोभासे करोड़ों कामदेवोंको लज्जावश सन्तप्त करेंगे उस समय प्राणपतिको इन नेत्रोंसे देखकर मेरा हृदय आनन्दमें फूला न समायेगा ॥ ४ ॥ क्या कुशल विधाता अपने समाज, स्वामी और लक्ष्मणके सहित अयोध्याको फिर भी सकुशल दिखावेगा ? उस समय गुरु, पुरजन, सास और दोनों देवरोंसे मिलकर मेरे हृदयकी दुःसह ज्वाला शान्त हो जायगी ॥ ५ ॥ उस समय घर-घरमें मंगलकलश सजाये जायँगे और बधाइयाँ बजेंगी; याचकोंमेंसे जिसे जो अच्छा लगेगा वही मिलेगा तथा तुलसीदास राजाधिराज महाराज रामकी विजयका पवित्र यश गान करेगा ॥ ६ ॥

[५१]

सिय ! धीरज धरिये, राघौ अब ऐहैं ।
पवनपूतपै पाइ तिहारी सुधि, सहज कृपालु, बिलंब न लैहैं ॥१॥
सेन साजि कपि-भालु काल सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं ।
घेरोइपै देखिबो लंकगढ़, बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥२॥
निसिचर-सलभ कृसानु राम-सर उड़ि उड़ि परत जरत जड़ जैहैं ।
रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥३॥
तिलक सारि, अपनाय बिभीषन, अभय-बाँह दै अमर बसैहैं ।
जय धुनि मुनि,बरषिहैं सुमन, सुर, ब्योम बिमान निसान बजैहैं ॥४॥
बंधु समेत प्रानबल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहैं ।
राम बाम दिसि देखि तुमहि सब नयनवंत लोचन-फल पैहैं ॥५॥
तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहि चितैहैं ।
यह सोभा, सुख-समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं ॥६॥

कपिकुल-लखन-सुजस-जय-जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं।
प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं ॥७॥

[त्रिजटा बोली—] सीते! धैर्य धारण करो, अब पवनपुत्रसे तुम्हारी सुधि पाकर रघुनाथजी जल्दी ही आवेंगे। वे स्वभावसे ही कृपालु हैं, इसलिये देरी नहीं करेंगे ॥ १ ॥ वे कालके समान वानर और भालुओंकी सेना सजाकर खेलसे ही समुद्रको बाँध लेंगे। अब तुम शीघ्र ही लंकाको घिरी हुई ही देखोगी, और राक्षसियाँ व्याकुल होकर पछतायेंगी ॥ २ ॥ राक्षसरूप जड़ पतंगे उड़-उड़कर भगवान् रामके बाणरूप अग्निमें गिरकर जलते जायँगे, तथा रावण अपने परिवारको आगे कर यमलोकको जाते हुए वहुत सकुचावेगा ॥ ३ ॥ भगवान् विभीषणको अपनाकर उसे राजतिलक कर देवताओंको अभय-बाहु दे देवलोकमें बसायेंगे। उस समय मुनिजन जयध्वनि करेंगे, देवता लोग फूल बरसायेंगे और आकाशमें विमानोंपर चढ़कर बाजे बजायेंगे ॥ ४ ॥ तथा भाइयोंसहित अपने प्राणप्रिय रघुनाथजीके चरण स्पर्शकर अपने सारे सन्तापोंको नष्ट कर देंगे, भगवान् रामके वाम भागमें तुम्हें विराजमान देखकर सब नेत्रधारी जीव अपने नेत्रोंका फल प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥ तुम अत्यन्त प्रेमसे प्रभुकी ओर देखोगी और प्रभु बार-बार तुम्हें निहारेंगे। यह शोभा और सुखमय समय देखकर किसीके भी नेत्रोंके पलक नहीं लगेंगे ॥ ६ ॥ फिर भगवान् राम वानरोंकी सेना, लक्ष्मणजी, सुयश, लङ्काकी विजय और सीताजीके सहित कुशलपूर्वक अपने नगरको जायेंगे और तुलसीदास प्रेमसे पुलकित हो, आनन्दसे प्रसन्नचित्त होकर प्रभुकी कमनीय कीर्तिका गान करेगा ॥ ७ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

लंकाकाण्ड

मन्दोदरी-प्रबोध

राग मारू

[१]

मानु अजहू सिष परिहरि क्रोधु ।
पिय पूरो आयो अब काहि, कहु, करि रघुबीर-बिरोधु ॥ १ ॥
जेहि ताड़ुका-सुबाहु मारि, मख राखि जनायो आपु ।
कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ बिसिष-प्रतापु ॥ २ ॥
सकल भूप बल गरब सहित तोर्‌यो कठोर सिवचापु ।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग, हर्‌यौ परसुधर-दापु ॥ ३ ॥
कपटकाक साँसति-प्रसाद करि बिनु श्रम बध्यो बिराधु ।
खर-दूषन-त्रिसिरा-कबंध हति कियो सुखी सुर-साधु ॥ ४ ॥

एकहि बान बालि मार्‍यो जेहिं, जो बल-उदधि अगाधु ।
कहु, धौं कंत कुसल बीती केहि किये राम-अपराधु ॥ ५ ॥
लाँघि न सके लोक-बिजयी तुम जासु अनुज-कृत-रेषु ।
उतरि सिंधु जार्‍यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेषु ॥ ६ ॥
कृपासिंधु, खलबन कृसानु सम, जस गावत श्रुति-सेषु ।
सोइ बिरुदैत बीर कोसलपति, नाथ ! समुझि जिय देषु ॥ ७ ॥
मुनि पुलस्त्यके जस-मयंक महँ कत कलंक हठि होहि ।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ, मैं देख्यो जग जोहि ॥ ८ ॥
चलु, मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि ।
तुलसिदास प्रभु सरन-सबद सुनि अभय करैंगे तोहि ॥ ९ ॥

[मन्दोदरी कहती है—] 'प्रियतम ! आप आज भी मेरी सीख मानिये और अपना क्रोध छोड़ दीजिये । भला आप ही बतलाइये रघुनाथजीसे विरोध करके कब किसका पूरा पड़ा है ? ॥ १ ॥ जिन्होंने बाल्यावस्थामें ही ताड़का और सुबाहुको मारकर, यज्ञकी रक्षा करके अपने प्रभावको प्रकट किया तथा खेलहीमें पापी मारीचके मिससे अपने बाणका प्रताप दिखलाया ॥ २ ॥ फिर समस्त राजाओंके बल-सम्बन्धी अभिमानके सहित शिवजीके कठोर धनुषको तोड़ा और इस प्रकार सम्पूर्ण संसारको जीतकर जानकीसे विवाह किया तथा परशुरामजीका दर्प दूर किया ॥ ३ ॥ जिन्होंने कपटकाक जयन्तको दण्ड दे फिर [शरण आनेपर] उसपर कृपा की, अनायास ही विराधका वध किया तथा खर, दूषण, त्रिशिरा और कबन्धको मारकर देवता और साधुओंको सुखी किया ॥ ४ ॥ फिर जो बलका अगाध समुद्र था उस

बालिका एक ही बाणमें वध किया, हे कान्त! कहो तो, उन रामका अपराध करनेपर किसकी कुशल हुई है? ॥ ५ ॥ जिनके छोटे भाईकी खींची हुई रेखाको तुम विश्वविजयी होकर भी नहीं लाँघ सके, जिनके एक दूतने समुद्रको पारकर सारे नगरको उलट-पलटकर खूब अच्छी तरह जला दिया ॥ ६ ॥ तथा श्रुति और शेषजी जिनका 'कृपासिन्धु और दुष्टोंके वनके लिये अग्निके समान' ऐसा कहकर सुयश गाते हैं, हे नाथ! अपने हृदयमें समझकर देख लो, ये यशस्वी वीर वे ही कोसलाधिपति भगवान् राम हैं ॥ ७ ॥ आप इस प्रकार आग्रह करके पुलस्त्य मुनिके यशरूप चन्द्रमामें कलंकरूप क्यों होते हैं? मैंने संसारको ढूँढ़कर अच्छी तरह देख लिया है, अब और किसी प्रकारसे आपका उद्धार नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ अतः अब मुझे आगे कर, सीताजीको आदरसहित साथ ले, शीघ्र ही चलकर रघुनाथजीसे मिलिये—इसीमें आपका कुशल है। आपके मुखसे 'शरण' शब्द सुनते ही प्रभु आपको निर्भय कर देंगे' ॥ ९ ॥

अंगदका दूतकर्म

राग कान्हरा

[२]

तू दसकंठ भले कुल जायो।
तामहँ सिव-सेवा, बिरंचि-बर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो ॥१॥
खर-दूषन-त्रिसिरा, कबंध रिपु-जेहि बाली जमलोक पठायो।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ संदेस कहन हौं आयो ॥२॥
श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस, जानत अनजानत हरि लायो।
तजि ब्यलीक भजु कारुनीक प्रभु, दै जानकिहि सुनहि समुझायो ॥३॥

जातें तव हित होइ, कुसल कुल, अचल राज चलिहै न चलायो।
नाहित रामप्रताप-अनल महँ ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ॥४॥
जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यौ, तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास सुनि वचन क्रोध अति, पावक जरत मनहु घृत नायो ॥५॥

[अंगदजी बोले—] 'हे रावण ! तुम अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हो। तिसपर भी श्रीमहादेवजीकी पूजा, ब्रह्माजीके वरदान और अपने विपुल बाहुबलसे तुमने जगत्में सुयश प्राप्त किया है ॥ १ ॥ जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध और बालि आदि शत्रुओंको यमलोक भेज दिया है, मैं उन्हींका दूत हूँ और तुम्हें पवित्रचरित्र श्रीहरिका सन्देश सुनानेके लिये आया हूँ ॥ २ ॥ तुम ऐश्वर्यके अभिमान, राजपद अथवा मोहके अधीन होकर जानकर या बिना जाने कैसे ही जानकीको हर लाये हो, अब उन्हें रघुनाथजीको लौटा दो और कपट त्यागकर उन करुणामय प्रभुका भजन करो—इतनी हमारी शिक्षा मान लो ॥ ३ ॥ जिससे तुम्हारा हित हो और तुम्हारा कुल सकुशल रहे तथा राज्य अविचल होकर किसीका टाला न टले। नहीं तो, हे मूढ़ ! तुम रामचन्द्रजीके प्रतापरूप अग्निमें पतंग होकर दौड़-दौड़कर गिरोगे' ॥ ४ ॥ इस प्रकार यद्यपि अंगदजीने यह परम हितकारी नीति कही, तथापि रावणको यह कुछ भी अच्छी न लगी। तुलसीदासजी कहते हैं, ये वचन सुनकर उसे बड़ा ही क्रोध हुआ, मानो अग्निमें जलते हुएपर घृत डाल दिया हो ॥ ५ ॥

[३]

तैं मेरो मरम कछू नहि पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर ! मोहि दास-ज्यों डाटन आयो ॥१॥

भ्राता कुंभकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो ।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों, कंदुक ज्यों कैलास उठायो ॥ २ ॥
सुर, नर, असुर, नाग, खग, किंनर, सकल करत मेरो मन भायो ।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तनु, ताको जस खल! मोहि सुनायो ॥ ३ ॥
कहा भयो, बानर सहाय मिलि, करि उपाय जो सिंधु बँधायो ।
जो तरिहै भुज बीस घोरनिधि, ऐसो को त्रिभुवनमें जायो ? ॥ ४ ॥
सुनि दससीस-बचन कपि-कुंजर बिहँसि ईसमायहि सिर नायो ।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो ॥ ५ ॥

[रावण बोला—] 'अरे कुटिल और ढीठ वानर ! तूने मेरा प्रभाव कुछ भी नहीं समझा । रे पामर पशु ! इसीलिये तू मुझे दासके समान डाँटनेके लिये आया है ॥ १ ॥ तू जानता नहीं—मेरा भाई शत्रुओंका नाश करनेवाला कुम्भकर्ण है और पुत्र साक्षात् देवराजको भी बन्दी बना लाया था । मैं अपने अतुलित बाहुबलका तो वर्णन ही क्या करूँ जिसने कैलासको गेंदके समान उठा लिया था ॥ २ ॥ देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग, पक्षी और किन्नर, ये सब मेरी इच्छाका अनुवर्तन करते हैं । अरे दुष्ट ! मनुष्योंका शरीर तो राक्षसोंका प्रिय भोजन है । तू मुझे उसका सुयश सुनाने चला है ! ॥ ३ ॥ यदि वानरोंकी सहायता लेकर वह यत्न करके समुद्रको पार भी कर आया तो कौन बड़ी बात हो गयी ? किन्तु जो मेरी बीस भुजारूप घोर समुद्रको पार कर सके ऐसा त्रिलोकीमें कौन उत्पन्न हुआ है ?' ॥ ४ ॥ रावणके ये वचन सुन कपि-केसरी अंगदने ईश्वरकी मायाको सिर नवाया । तुलसीदासजी कहते हैं, अंगदजीने रावणको करोड़ों उपाय करके समझाया, परन्तु कालके अधीन होनेके कारण उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥ ५ ॥

[४]

सुनु खल ! मैं तोहि बहुत बुझायो ।
एतो मान सठ ! भयो मोहबस, जानतहू चाहत बिष खायो ॥ १ ॥
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल जानत हौ, किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर, सरनागतपर प्रेम देखायो ॥ २ ॥
पावहुगे निज करम-जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर-भालु चपेट लपेटनि मारत, तब ह्वैहै पछितायो ॥ ३ ॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक, कहा करौं, जो न आयसु पायो ।
अब रघुबीर-बान-बिदलित-उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो ॥ ४ ॥
अबिचल राज बिभीषनको सब, जेहि रघुनाथ-चरन चित लायो ।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो ॥ ५ ॥

[अंगदजीने कहा—] 'अरे दुष्ट ! सुन, मैंने तुझे बहुतेरा समझाया, परन्तु तू मोहवश ऐसे घमण्डमें भर गया है कि जान-बूझकर विष खाना चाहता है ॥ १ ॥ जगत्प्रसिद्ध महान् वीर बालिका बल तो तू जानता है न, या अब भूल गया ? देख, उसे रघुनाथजीने अनायास एक बाणसे ही मार डाला और अपने शरणागत सुग्रीवपर प्रेम दिखलाया ॥ २ ॥ तुम भी अपने कर्मोंका फल भोगोगे, तुमने आग्रहपूर्वक अच्छी जगह वैर बढ़ाया है ! अब, जिस समय रीछ और वानर तुम्हें चपेटमें लेकर मारेंगे उस समय पश्चात्ताप होगा ॥ ३ ॥ तुम्हारे दाँत तोड़नेके लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ; परन्तु करूँ क्या, इसके लिये मैंने प्रभुकी आज्ञा प्राप्त नहीं की है । अब तुम शीघ्र ही रामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्नहृदय होकर सुन्दर युद्धस्थलमें
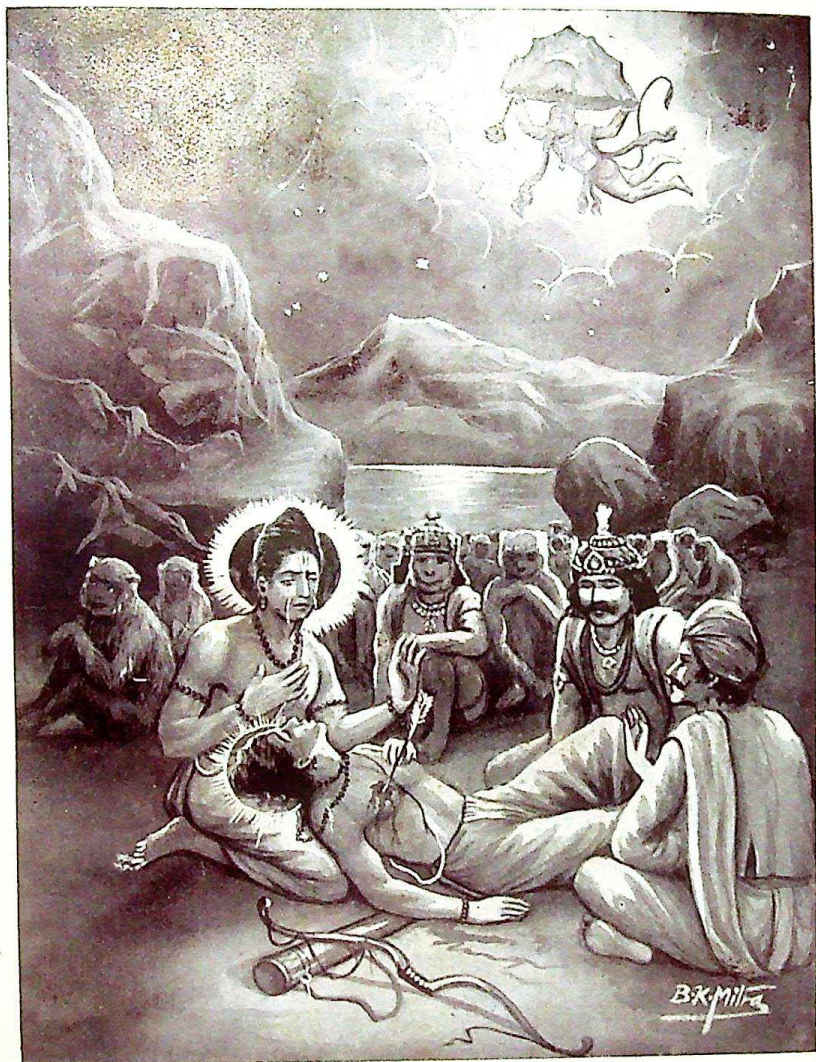
राम-विलाप

सोओगे ॥ ४ ॥ तुम्हारा यह अविचल राज्य तो सारा-का-सारा विभीषणको ही मिलेगा जिसने रघुनाथजीके चरणोंमें चित्त लगाया है।' तुलसीदासजी कहते हैं, रावणसे ऐसे वचन कह वानरराज वालिके पुत्र अंगदजी गर्जते हुए वहाँसे चल दिये ॥ ५ ॥

लक्ष्मण-मूर्च्छा

राग केदारा

[५]

राम लषन उर लाय लए हैं।
भरे नीर राजीव-नयन, सब अँग परिताप तए हैं ॥ १ ॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथए हैं।
सेवक-सखा भगति-भायप-गुन चाहत अब अथए हैं ॥ २ ॥
निज कीरति-करतूति, तात! तुम सुकृती सकल जए हैं।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लए हैं ॥ ३ ॥
मेरे पनकी लाज इहाँलौं हठि प्रिय प्रान दए हैं।
लागति साँगि बिभीषन ही पर, सीपर आपु भए हैं ॥ ४ ॥
सुनि प्रभु-बचन भालु, कपि-गन, सुर सोच सुखाइ गए हैं।
तुलसी आइ पवनसुत-बिधि मानो फिरि निरमये नए हैं ॥ ५ ॥

[जिस समय मेघनादकी शक्ति खाकर लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये और हनुमानजी उन्हें भगवान् रामके पास ले आये, उस समय] रघुनाथजीने लक्ष्मणजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया। उनके नेत्र-कमल जलसे भर आये और सब अंग परितापसे सन्तप्त हो गये ॥ १ ॥ वे भाईका मुख देखकर अत्यन्त शोकयुक्त हो ये प्रीतिग्रथित वचन कहने

लगे-'अब सेवक, सखा, भक्ति और भ्रातृत्वके सारे गुण अस्त होनेवाले हैं ॥ २ ॥ हे तात ! अपनी कीर्ति और कृतिसे तुमने समस्त सुकृतियोंको जीत लिया। अब तुम्हारे बिना इस शरीरको रखकर मैंने इस लोकमें अपकीर्ति ही कमायी है ॥ ३ ॥ अहो ! मेरी प्रतिज्ञाकी तुम्हें यहाँतक लाज है कि उसके लिये अपने प्रिय प्राणतक दे डाले हैं; इसीलिये यद्यपि शक्ति तो विभीषणके हृदयपर लगनेवाली थी, परन्तु उसकी रक्षा करनेके लिये तुम उसकी ढाल बन गये !' ॥ ४ ॥ प्रभुके ये वचन सुनकर रीछ, वानर और देवतागण शोकसे सूख गये। तुलसीदासजी कहते हैं, इसी समय ब्रह्मारूप हनुमान्‌जीने [ओषधिके सहित आकर] मानो उन्हें फिरसे नया बना दिया ॥ ५ ॥

राग सोरठ

[६]

मोपै तौ न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लखन-सो भाई ॥ १ ॥
पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ॥ २ ॥
जानत हौं या उर कठोरतें कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुतको दरकि दरार न जाई ॥ ३ ॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ ४ ॥

'हाय ! मुझसे तो कुछ भी नहीं बना ! आज लक्ष्मण-जैसा भाई भी भ्रातृत्वका अन्ततक अच्छी तरह निर्वाह करके चला गया ॥ १ ॥

जिसने नगर, पिता, माता और सब प्रकारके सुख त्यागकर मेरी वनकी विपत्तिको बँटाया था उसके साथ मैं अपने प्राणोंको भी शोक त्यागकर सुरलोक नहीं भेज सका ! ॥ २ ॥ मालूम होता है, वज्रने भी मेरे इस कठोर हृदयसे ही कठिनता प्राप्त की है, इसीसे सुमित्रानन्दनके स्नेहका स्मरण करके इसमें फटकर कोई दरार नहीं पड़ी ॥ ३ ॥ हाय ! मेरे कारण ही पिताजीकी मृत्यु हुई, स्त्रीका अपहरण हुआ, गृध्रराजके प्राण गये और अब मुझे यह दाहिनी भुजा भी गँवानी पड़ी । इस प्रकार मैंने सब तरह अपने कुलको कलंक ही लगाया है' ॥ ४ ॥

[७]

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥ १ ॥
सुनु, सुग्रीव ! साँचेहू मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन-सो भ्राता ॥ २ ॥
गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति, रही सोच भरि छाती ॥ ३ ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि सकल बिकल हिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे ॥ ४ ॥

'अब मेरा सारा पुरुषार्थ थक गया । अपनी विपत्तिको बँटानेवाले भाईरूप भुजाके बिना अब मैं किसका भरोसा करूँ ? ॥१॥ हे सुग्रीव ! सुनो, विधाताने सचमुच मेरी ओरसे मुँह फेर रक्खा है, जो ऐसे समय युद्धका संकट उपस्थित होनेपर मुझे लक्ष्मण-जैसे भाईने त्याग दिया ॥ २ ॥ वानर तो पर्वत और वनोंमें चले जायँगे और मैं भैया लक्ष्मणका साथ

पकड़ूँगा, परन्तु मेरे हृदयमें यही सोच भरा हुआ है कि विभीषणकी क्या गति होगी' ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके ये वचन सुनकर सब रीछ-वानर हृदयमें व्याकुल होकर थकित हो गये। तब जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीको बुलाकर उत्तेजित किया ॥ ४ ॥

राग मारू

[८]

जौं हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल-ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं ॥ १ ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥ २ ॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहिको पापु बहावौं ॥ ३ ॥
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ४ ॥

[तब हनुमान्‌जी कहने लगे—] 'प्रभो ! यदि इस समय मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्रमाको वस्त्रके समान निचोड़कर उससे अमृत लाकर ही आपको सिर नवाऊँ ॥ १ ॥ अथवा पातालमें [अमृतकी रक्षा करनेवाले] सर्पोंको मारकर अमृत-कुण्डको भूमिपर उठा लाऊँ। [यदि उससे भी काम न चले तो] भुवनकोशको फोड़कर सूर्यको बाहर निकाल दूँ और तुरन्त ही उस छिद्रपर राहुको रखकर उसे मूँद दूँ [जिससे फिर सूर्य न आ सके और प्रातःकाल न हो ॥ २ ॥ यही नहीं, यदि देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारोंको बलात्कारसे ले आऊँ

तो ही प्रभुका अनुचर कहलाऊँ। नीच मृत्युको मूषकके समान पटक दूँ और इस प्रकार सभीका पाप काट दूँ [फिर किसीको मरनेका ही भय न रहे] ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! आपकी कृपा और आपहीके प्रतापसे मैं इन कार्योंमें तनिक भी देरी नहीं करूँगा । अतः, हे तुलसीदासके स्वामी ! जिसके करनेसे मैं तुमको प्रिय लगूँ वही आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥

[९]

सुनि हनुमंत-बचन रघुबीर ।
सत्य, समीर-सुवन ! सब लायक, कह्यो राम धरि धीर ॥ १ ॥
चहिये बैद, ईस-आयसु धरि सीस कीस बलऐन ।
आन्यो सदनसहित सोवत ही, जौलौं पलक परै न ॥ २ ॥
जियै कुँवर, निसि मिलै मूलिका, कीन्हीं बिनय सुषेन ।
उठ्यो कपीस, सुमिरि सीतापति चल्यो सजीवनि लेन ॥ ३ ॥
कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यौ द्रोनाचल जिय जानि ।
देखी दिब्य ओषधी जहँ तहँ, जरी न परि पहिचानि ॥ ४ ॥
लियो उठाय कुधर कंदुक-ज्यों, बेग न जाइ बखानि ।
ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि ॥ ५ ॥
आनि पहार जोहारे प्रभु, कियो बैदराज उपचार ।
करुनासिंधु बंधु भेंट्यो, मिटि गयो सकल दुख-भार ॥ ६ ॥
मुदित भालु-कपि-कटक, लह्यो जनु समर-पयोनिधि पार ।
बहुरि ठौरही राखि महीधर आयो पवनकुमार ॥ ७ ॥
सेन सहित सेवकहि सराहत पुनि पुनि राम सुजान ।
बरषि सुमन, हिय हरषि प्रसंसत बिबुध बजाइ निसान ॥ ८ ॥

तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भए मनहु बिनु प्रान।
परी भोरही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान॥९॥

हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर रघुश्रेष्ठ भगवान् रामने धैर्य धारणकर कहा—'हे पवननन्दन! तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है, तुम वास्तवमें यह सभी कुछ करनेमें समर्थ हो॥१॥ इस समय एक वैद्यकी आवश्यकता है।' भगवान्‌की यह आज्ञा सिरपर रखकर बलशाली वानरराज, जितनी देरमें पलक भी न लगे इतने-हीमें एक वैद्यको उसके घरसहित सोते हुए ही उठा लाये॥२॥ उस सुषेण नामक वैद्यने विनयपूर्वक कहा—'यदि रात्रिके भीतर ही सञ्जीवनी बूटी मिल सके तो कुँवर जीवित हो सकते हैं।' यह सुनते ही वानरेश्वर हनुमान्‌जी सीतापति भगवान् रामका स्मरण करते हुए उठे और सञ्जीवनी बूटी लेनेके लिये चल दिये॥३॥ उन्होंने मार्गमें कालनेमिको मारकर शीघ्र ही द्रोणाचलको देखा और उसे अपने चित्तसे ही पहचान लिया। वहाँ उन्होंने जहाँ-तहाँ बहुत-सी दिव्य ओषधियाँ देखीं, परन्तु वे उस बूटीको न पहचान सके॥४॥ तब उन्होंने उस पर्वतको गेंदके समान उठा लिया। उस समयके उनके वेगका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा जान पड़ता था मानो गजराजका उद्धार करनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे चक्रपाणि भगवान् विष्णु दौड़े जा रहे हों॥५॥ इस प्रकार पहाड़को लाकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। और वैद्यराजने लक्ष्मणजीकी चिकित्सा की [इससे लक्ष्मणजी तत्काल सचेत हो गये]। तब करुणासागर भगवान् रामने भाईका आलिंगन किया और इससे उनके दुःखका सारा भार मिट गया॥६॥ रीछ और

वानरोंका दल भी ऐसा आनन्दित हुआ मानो उसे संग्रामरूप समुद्रका पार मिल गया हो। तत्पश्चात् हनुमान्‌जी उस पर्वतको जहाँ-का-तहाँ रख आये ॥ ७ ॥ उस समय सम्पूर्ण सेनाके सहित परम चतुर भगवान् राम बारम्बार अपने सेवककी प्रशंसा करने लगे तथा देवता लोग भी पुष्पोंकी वर्षाकर, हृदयमें आनन्दित हो, दुन्दुभी बजाते हुए उनकी बड़ाई करने लगे ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं, इस समाचारको पाकर राक्षसगण तो मानो प्राणहीन हो गये। प्रातःकाल होते ही जब हनुमान्‌जीने हाँक लगायी तो लंकापुरीमें हाहाकार मच गया ॥ ९ ॥

राग केदारा

[१०]

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि, सरिस न बेग बियो है ॥ १ ॥
देख्यो जात जानि निसिचर, बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि, पुर तेहि तेज पियो है ॥ २ ॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज, जीवन-दान दियो है।
दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है ॥ ३ ॥
आयसु इतहि, स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिदर्‌यो अकास, सो कैसेकै जात सियो है ॥ ४ ॥

[अब पर्वत लाते समय मार्गमें जो घटना हुई उसका वर्णन करते हैं—] हनुमान्‌जीने खेलसे ही पर्वतको उठा लिया और रघुनाथजीको सिर नवा आकाशमार्गसे चल दिये। उस समय उनके समान और किसीका वेग नहीं था ॥ १ ॥ उन्हें [अयोध्याके ऊपर होकर] जाते देख भरतजीने

राक्षस जानकर उनके हृदयमें बिना गाँसीका बाण मारा। तब वे 'राम' ऐसा कहते हुए गिर पड़े। पवनने [अयोध्याकी रक्षा करनेके लिये] पर्वतको रोक लिया, मानो नगरने उसका तेज पी लिया हो ॥ २ ॥ तब भरतजीने [उनके मुखसे रामनाम सुन] उनके समीप जा अपनी भुजाओंमें भरकर उनका आलिंगन किया और उन्हें जीवनदान दिया। लक्ष्मणजी मर्माहत हुए हैं—यह सुनकर तो उन्हें थोड़ा-सा दुःख हुआ, परन्तु हनुमान्‌जीको जीवित देखकर वे परम आनन्दित हुए ॥ ३ ॥ स्वामीकी आज्ञा इधर अयोध्यामें ही रहनेकी है और उधर उनपर युद्धका संकट पड़ा हुआ है—इसपर भरतजीने बहुत कुछ विचार किया; परन्तु उनसे कोई करते न बना। तुलसीदासजी कहते हैं, जैसे आकाश फट जाय तो उसे कैसे सिया जाय ? ॥ ४ ॥

[११]

भरत-सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम-लषन रन जीति अवध आए, कैधौं मोहि भ्रम,
कैधौं काहू कपट ठयो है ॥ १ ॥
प्रेम पुलकि, पहिचानिकै पदपदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहू भाइन
सनेहसों सो उर लाय लयो है ॥ २ ॥
समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठवौं, सुनि
हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है ॥ ३ ॥

तीरतें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है।
धनि भरत! धनि भरत! करत भयो,
मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है॥ ४॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर-बंधु-महिमाको सिंधु
तरि को कबि पार गयो है?॥ ५॥

हनुमान्‌जी भरत और शत्रुघ्नको देखकर बड़े विस्मित हुए। वे सोचने लगे—क्या राम और लक्ष्मण युद्धमें विजय प्राप्तकर अयोध्यामें आ गये हैं या मुझे भ्रम हो रहा है? अथवा यह किसीने कपट किया है?॥ १॥ फिर उन्हें पहचानकर उन्होंने प्रेमसे पुलकित हो उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया। उस समय उन्हें दोनों भाइयोंने जैसे प्रेमसे हृदयसे लगाया वह कहा नहीं जाता॥ २॥ फिर उन्हें सारे समाचार सुनाकर कहा—'मुझे विलम्ब हो रहा है।' वे सब बातें सुनकर भरतजी दुःखसे सन्तप्त हो गये और बोले—'तुम पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाओ, मैं तुरन्त ही तुम्हें रघुनाथजीके पास भेज दूँगा।' यह सुनकर हनुमान्‌जीके हृदयमें गुप्तरूपसे गर्वका आविर्भाव हुआ॥ ३॥ [वे उनके बाणपर चढ़े और जब देखा कि उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है] तो उससे उतरकर उनका सुयश कहना चाहा। भरतजीके गुणोंने उन्हें जीत लिया। उनका मन अनुरागमें डूब गया, तथा 'भरतजी धन्य हैं, भरतजी धन्य हैं' इस प्रकार कहते हुए प्रेममें मग्न होकर वे चुप रह गये॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस समुद्रको तो [सगर-पुत्रोंने] खोदा है, [देवता और दैत्योंने] मथा है, [हनुमान्‌जीने] लाँघा है,

[नल-नीलने] बाँधा है और [अगस्त्यजीने] पिया है; किन्तु रघुनाथजीके भाई भरतजीकी महिमाके समुद्रको तरकर भला कौन कवि पार गया है ? ॥ ५ ॥

[१२]

होतो नहि जौ जग जनम भरतको ।
तौ, कपि कहत, कृपान-धार मग चलि आचरत बरत को ? ॥ १ ॥
धीरज-धरम धरनिधर-धुरहूतें गुर धुर धरनि धरत को ?
सब सदगुन सनमानि आनि उर, अघ-औगुन निदरत को ? ॥ २ ॥
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को ?
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कहँ, अभिमत फरनि फरत को ? ॥ ३ ॥

हनुमान्‌जी कहने लगे—यदि संसारमें भरतजीका जन्म न हुआ होता तो खाँड़ेकी धाररूप इस दुर्गम मार्गमें चलकर प्रेमव्रतका कौन आचरण करता ? ॥ १ ॥ पृथिवीमें पर्वतोंके भारसे भी भारी धैर्य और धर्मका बोझा कौन उठाता ? सब सद्गुणोंको सम्मानपूर्वक हृदयमें धारणकर कौन पाप और अवगुणोंका निरादर करता ?॥ २ ॥ और जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम शिवजीको भी सुलभ नहीं है उसे कौन सत्पुरुषोंके लिये सुलभ करता, तथा अपने सुयशरूप कल्पवृक्षको रचकर कौन तुलसीदासके लिये अभिमत फल उत्पन्न करता ? ॥ ३ ॥

[१३]

सुनि रन घायल लषन परे हैं ।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं ॥ १ ॥
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं ।
छिन छिन गात सुखात, छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं ॥ २ ॥

कपिसों कहति सुभाय, अंबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, जद्यपि धनु दुसरे हैं ॥ ३ ॥
'तात ! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं ॥ ४ ॥
अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ॥ ५ ॥

जब सुमित्राने सुना कि लक्ष्मणजी युद्धस्थलमें घायल पड़े हैं और उन्होंने अपने स्वामीके लिये विपक्षी योद्धा मेघनादसे रणभूमिमें खूब ललकारकर लोहा भिड़ाया है ॥ १ ॥ तो उन्हें पुत्रकी दशासे तो शोक हुआ और इस बातसे सन्तोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजीकी भक्तिको स्वीकार किया। उनके अंग एक क्षणमें शोकसे सूख जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षणमें आनन्दसे हरे हो जाते हैं ॥ २ ॥ तब माता सुमित्राने नेत्रोंमें जल भरकर, स्वभावसे ही हनुमान्‌जीसे कहा—'रामजी कुअवसरमें भाईसे बिछुड़ गये, यद्यपि धनुष उनके साथ है [जिसके होते हुए उन्हें अन्य किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं है] ॥३॥ [हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर वे शत्रुघ्नजीसे बोलीं–] 'भैया ! तुम इस हनुमान्‌के साथ जाओ।' यह सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। और शरीरमें पुलकायमान होकर ऐसे प्रसन्न हुए मानो दैवयोगसे उनके पूरे-पूरे दाँव पड़ गये हों ॥ ४ ॥ माता और छोटे भाईकी यह दशा देखकर हनुमान् और भरतजी बड़े ही ग्लानिग्रस्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं, तब माताने उन सबको समझाकर सचेत किया ॥ ५ ॥

[१४]

बिनय सुनायबी परि पाय ।
कहौं कहा, कपीस ! तुम्ह सुचि, सुमति, सुहद सुभाय ॥ १ ॥
स्वामि-संकट-हेतु हौं जड़ जननि जनम्यो जाय ।
समौ पाइ, कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय ॥ २ ॥
कहत सिथिल सनेह भो, जनु धीर घायल घाय ।
भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय ॥ ३ ॥
भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन-मानस माय ।
'लाल ! लोने लषन-सहित सुललित लागत नाँय' ॥ ४ ॥
देखि बंधु-सनेह, अंब-सुभाउ, लषन-कुठाय ।
तपत तुलसी तरनि-त्रासकु एहि नये तिहु ताय ॥ ५ ॥

[भरतजी कहने लगे-] 'तुम भगवान् रामके पैरों पड़कर मेरी एक विनय सुनाना। हे कपीश्वर! तुमसे मैं अधिक क्या कहूँ ? तुम तो स्वभावसे ही शुद्धचित्त, सुमति और हमारे सुहृद् हो ॥ १ ॥ मुझ मूढ़को मेरी माताने प्रभुको कष्ट पहुँचानेके लिये व्यर्थ ही जन्म दिया है, क्योंकि मैं आपका सेवक कहलाकर भी समय उपस्थित होनेपर आपकी सहायता न कर सका' ॥ २ ॥ इस प्रकार कहते-कहते वे स्नेहसे शिथिल हो गये, जैसे कोई धीर पुरुष घावसे घायल हो जानेपर हो जाता है। भरतजीकी यह दशा देखकर सब माताएँ इस प्रकार रह गयीं जैसे वायुके बिना पतंग ॥ ३ ॥ [कौसल्याजी बोलीं-] भैया ! रामसे भेंट करके कहना कि तुम्हारी कठोरहृदया माताने कहा है—'हे लाल ! तुम्हारा नाम ललित लाल लक्ष्मणके सहित ही सुन्दर मालूम होता है [अतः तुम्हारी शोभा लक्ष्मण-

के साथ ही लौटनेमें है]' ॥४॥ तुलसीदासजी कहते हैं, इस प्रकार भाईका स्नेह, माताका स्वभाव और लक्ष्मणजीको मर्माहत देख सूर्यको भी त्रस्त करनेवाले हनुमान्‌जी इन तीनों नये तापोंसे तपने लगे ॥ ५ ॥

[१५]

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै ।
पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय शरीरै ॥ १ ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरथ-चरचा कीरै ।
सोभा-सुख, छति-लाहु भूपकहँ, केवल कांति-मोल हीरै ॥ २ ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
उपमा राम-लषनकी प्रीतिकी क्यों दीजै खीरै-नीरै ॥ ३ ॥

सञ्जीवनी बूटी खाकर सचेत होनेपर [जब पीड़ा आदिके विषयमें पूछा गया तो] लक्ष्मणजीने प्रेमसे पुलकित हो शरीरानुसन्धानको भूलकर कहा–'मेरे हृदयमें तो केवल घाव ही है उसकी पीड़ा तो रघुनाथजीको है ॥ १ ॥ जैसे तोतेसे कोई उसके पाठके अर्थकी चर्चा करे वैसे ही आपलोग बार-बार मुझसे क्या पूछते हैं ? जैसे हीरेके द्वारा शोभा, सुख तथा हानि या लाभ–वे सब तो राजाको ही होते हैं, हीरेकी तो केवल कान्ति तथा क़ीमत ही होती है' ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, लक्ष्मणजीके ये वचन सुनकर बड़े-बड़े धीर भी धैर्य धारण नहीं कर सकते । उन राम और लक्ष्मणके प्रेमकी उपमा दूध और पानीसे भी कैसे दी जाय ? ॥ ३ ॥

विजयी राम

राग कान्हरा

[१६]

राजत राम काम-सत-सुंदर ।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित, फेरत चाप-बिसिष बनरुह-कर ॥ १ ॥
स्याम सरीर रुचिर श्रमसीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर ।
जनु खद्योत-निकर, हरिहित-गन, भ्राजत मरकत-सैल-सिखरपर ॥ २ ॥
घायल बीर बिराजत चहु दिसि, हरषित सकल रिच्छ अरु बनचर ।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ, तरुन तमाल बिसाल बिटप बर ॥ ३ ॥
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि, किए अभय मुनि-नाग, बिबुध-नर ।
तुलसिदास यह रूप अनूपम हिय सरोज बसि दुसह बिपतिहर ॥ ४ ॥

अपने शत्रु रावणको युद्धस्थलमें जीतकर भगवान् राम भाईके साथ विराजमान हैं । इस समय वे सैकड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर जान पड़ते हैं और अपना करकमल धनुष और बाणपर फेर रहे हैं ॥ १ ॥ उनके श्याम शरीरपर पसीनेकी सुन्दर बूँदें और बीच-बीचमें मनोहर रुधिरकण शोभायमान हैं; मानो किसी मरकतमणिके पर्वतशिखरपर पटबीजनोंके समूहमें बीरबहूटियाँ शोभा पा रही हों ॥ २ ॥ उनके चारों ओर घायल वीर बैठे हुए हैं । वे सम्पूर्ण रीछ-वानर बड़े ही प्रसन्न हैं । उस समय प्रभु ऐसे जान पड़ते हैं मानो फूले हुए किंशुक वृक्षोंके बीचमें एक अति विशाल और तरुण तमालवृक्ष हो ॥ ३ ॥ उस समय कमलनयन भगवान् रामने कृपादृष्टिसे देखकर सब मुनि, नाग, देवता और मनुष्योंको निर्भय

कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, यह दुःसह विपत्तिको दूर करनेवाला अनुपम रूप हमारे हृदयकमलमें विराजमान रहे ॥ ४ ॥

अयोध्यामें प्रतीक्षा

राग आसावरी

[१७]

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वैहै।
चढ़ि धौरहर, बिलोकि दषिन दिसि, बूझ धौं पथिक कहाँते आये वै हैं ॥१॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकि गात लागे लोचन च्वै हैं।
निज बासरनि बरष पुरवैगो बिधि, मेरे तहाँ करम कठिन कृत क्वै हैं ॥ २॥
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुख स्वैहैं।
तुलसिदास मो-सी कठोर-चित कुलिस-साल-भंजनि को ह्वैहैं ॥ ३॥

[जब अवधिके दिन प्रायः बीत चुके तो माता कौसल्याको रामके मिलनेकी बड़ी ही लालसा हुई। उस समय वे कहती हैं-]'क्यों जी, अवधि आज ही पूरी होगी या उसका कोई और दिन आवेगा ?' फिर अपने महलपर चढ़कर दक्षिणकी ओर देखती हुई कहती हैं, 'देखो पूछो तो, वे पथिक कहाँसे आ रहे हैं ?' ॥ १ ॥ फिर अवधिमें विलम्ब जान, हृदयमें हार मानकर शोकग्रस्त हो जाती हैं, उनका शरीर पुलकित हो जाता है, नेत्रोंसे जल बहने लगता है [और वे मन-ही-मन कहने लगती हैं-] मालूम होता है, हमने जो कुटिल कर्म किये हैं उनके परिणाममें विधाता इन चौदह वर्षोंको अपने दिनोंके हिसाबसे पूरा करेगा ॥ २ ॥ 'हाय ! राम वनमें हैं और उनकी माता घरमें रहकर जी रही है।' अब ये निर्लज्ज

प्राण इस लोकापवादको सुन-सुनकर सुखकी नींद सोवेंगे ! भला, मुझ-जैसी कठोरचित्त वज्रकी शालको भी तोड़नेवाली कौन होगी ? तात्पर्य, मेरा चित्त ऐसा कठोर है जो वज्रकी सारको भी तोड़कर निदरता है ॥ ३ ॥

[१८]

आली, अब राम-लषन कित ह्वैहैं ।
चित्रकूट तज्यौ तबतें न लही सुधि, बधू-समेत कुसल सुत द्वै हैं ॥ १ ॥
बारि-बयारि, बिषम हिम-आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं ।
कंद-मूल, फल-फूल असन बन, भोजन समय मिलत कैसे वैहैं ॥ २ ॥
जिन्हहि बिलोकि सोचिहैं लता-द्रुम, खग-मृग-मुनि लोचन जल च्वैहैं ।
तुलसिदास तिन्हकी जननी हौं, मो-सी निठुर-चित औरो कहुँ ह्वैहैं ॥ ३ ॥

'अरी सखि ! इस समय राम और लक्ष्मण किधर होंगे ? जबसे उन्होंने चित्रकूटको छोड़ा है तबसे उनका कोई समाचार नहीं मिला। क्या वधू सीताके सहित मेरे दोनों बालक सकुशल होंगे ? ॥ १ ॥ वे वर्षा, वायु तथा भीषण शीत और घाम सहते हुए बिना वस्त्रके ही पृथिवीपर पड़ रहते होंगे। वनमें कन्द, मूल और फल-फूल आदि ही खानेको मिलते हैं; सो वह भोजन भी उन्हें समयपर खानेको कैसे मिलता होगा ? ॥ २ ॥ जिन्हें देखकर लता और वृक्षादिको भी शोक होगा तथा पक्षी, मृग और मुनियोंके नेत्रोंसे जल चूने लगेगा, मैं उन्हींकी माता हूँ ! भला मुझ-जैसी निष्ठुरहृदया भी कोई कहीं होगी ?' ॥ ३ ॥

राग सोरठ

[१९]

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ॥ १ ॥
दूध-भातकी दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥ २ ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ, पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥ ३ ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥ ४ ॥

माता बैठी-बैठी शकुन मनाती है—'अरे काक ! सच-सच बता, मेरे बालक कुशलपूर्वक कब घर आ जायँगे ? ॥ १ ॥ जिस समय मैं नेत्र भरकर सीताके सहित राम और लक्ष्मणको देखकर हृदयसे लगाऊँगी उस समय मैं तुझे दूध-भातका दोना दूँगी और तेरी चोंच सोनेसे मढ़वा दूँगी' ॥ २ ॥ फिर वनवासकी अवधिको समीप ही जान माता अत्यन्त आतुर होकर हृदयमें व्याकुल हो जाती है और किसी ज्योतिषीको बुला, उसके पैरों पड़, प्रेममें मग्न होकर मधुर वाणीसे पूछती है ॥ ३ ॥ इसी समय भरतजीके पाससे कोई रघुनाथजीके आनेका समाचार लेकर आया । तुलसीदासजी कहते हैं, उसके मुखसे भगवान्‌का आगमन सुनते ही [कौसल्याजीको ऐसी शान्ति मिली] मानो मरती हुई मछलीको जल मिल गया हो ॥ ४ ॥

राग गौरी

[२०]

छेमकरी ! बलि, बोलि सुबानी ।
कुसल छेम सिय-राम-लषन कब ऐहैं, अंब ! अवध रजधानी ॥ १ ॥
ससिमुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि सोचनि बेद बखानी ।
देवि ! दया करि देहि दरसफल, जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥ २ ॥
सुनि सनेहमय बचन, निकट ह्वै, मंजुल मंडल कै मड़रानी ।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि अकनि उर-जरनि जुड़ानी ॥ ३ ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि, मन प्रसंन, दुख-दसा सिरानी ।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु, मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥ ४ ॥
तेहि अवसर हनुमान भरतसों कही सकल कल्यान-कहानी ।
तुलसिदास सोइ चाह सजीवनि बिषम बियोगब्यथा बड़ि भानी ॥ ५ ॥

'अरी क्षेमकरी (सफेद चील) ! मैं बलिहारी जाती हूँ, अरी मैया ! तू अपनी सुन्दर वाणीसे सच-सच बता कि सीता, राम और लक्ष्मण कुशल-क्षेमपूर्वक कब अपनी राजधानी अयोध्याको लौट आवेंगे ? ॥ १ ॥ हे देवि ! तू चन्द्रमाके समान मुखवाली, कुङ्कुमवर्णा और सुनयना है; वेदोंने तुझे सब प्रकारके शोकोंसे छुड़ानेवाली कहा है । तू दया करके हमें अपने दर्शनोंका फल दे'—इस प्रकार सब रानियाँ हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हैं ॥ २ ॥ उनके ये स्नेहपूर्ण वचन सुनकर वह चील उनके पास होकर सुन्दर मण्डल बाँधकर मँडराने लगी । उस समय आकाशमें उसकी शुभ, आनन्द और मंगलमयी ध्वनि सुन-सुनकर उनके

हृदयकी तपन शान्त हो गयी ॥ ३ ॥ दिशा-विदिशाओंमें सबके शुभ अंग फड़कने लगे, मन प्रसन्न हो गये और दुःखमयी दशाका अन्त हो गया तथा कौसल्या आदि सुचतुर स्त्रियाँ तरह-तरहकी बलि और शकुन मनाती हुई प्रेमसे पुलकितशरीर हो अपने इष्टदेवोंको प्रणाम करने लगीं ॥ ४ ॥ इसी समय हनुमान्‌जीने भरतजीको सारा मंगल समाचार सुनाया । तुलसीदासजी कहते हैं, उस [मंगल समाचाररूप] अभीष्ट संजीवनी बूटीने उनकी अत्यन्त घोर वियोगव्यथाको नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥

अयोध्यामें आनन्द

राग धनाश्री

[२१]

सुनियत सागरसेतु बँधायो ।
कोसलपतिकी कुसल सकल सुधि कोउ इक दूत भरत पहँ ल्यायो ॥ १ ॥
बध्यो बिराध, त्रिसिर, खर-दूषन, सूर्पनखाको रूप नसायो ।
हति कबंध, बल-अंध बालि दलि, कृपासिंधु सुग्रीव बसायो ॥ २ ॥
सरनागत अपनाइ बिभीषन, रावन सकुल समूल बहायो ।
बिबुध-समाज निवाजि, बाँह दै, बंदिछोर बर बिरद कहायो ॥ ३ ॥
एक-एकसों समाचार सुनि नगरलोग जहँ तहँ सब धायो ।
घन-धुनि अकनि मुदित मयूर-ज्यों, बूड़त जलधि पार-सो पायो ॥ ४ ॥
'अवधि आजु', यों कहत परसपर, बेगि बिमान निकट पुर आयो ।
उतरि अनुज-अनुगनि समेत प्रभु गुर-द्विजगन सिर नायो ॥ ५ ॥
जो जेहि जोग राम तेहि बिधि मिलि, सबके मन अति मोद बढ़ायो ।
भेंटी मातु, भरत, भरतानुज, क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो ॥ ६ ॥

तेही दिन मुनिबृंद अनंदित तुरत तिलकको साज सजायो।
महाराज रघुबंस-नाथको सादर तुलसिदास गुन गायो ॥ ७ ॥

[भगवान्‌की वनमें की हुई लीलाओंको सुनकर नगरके लोग आपसमें कहने लगे-] क्यों जी, सुना जाता है रामचन्द्रजीने समुद्रका पुल बँधवाया था ! कोई एक दूत कोसलपति भगवान् रामका सारा कुशल-समाचार भरतजीके पास लाया था ॥ १ ॥ कहते हैं, कृपासागर रामने विराध, खर, दूषण और त्रिशिराका वध किया, शूर्पणखाको कुरूपा बना दिया तथा कबन्धको मारकर, बलसे अन्धे हुए बालिका दमन कर सुग्रीवका घर बसा दिया ॥ २ ॥ फिर शरणमें आये हुए विभीषणको अपनाकर रावणको सकुटुम्ब समूल नष्ट कर दिया। इस प्रकार अपनी भुजाओंका आश्रय दे देवसमाजकी रक्षा कर अपना 'बंदिछोर' यह श्रेष्ठ सुयश प्रसिद्ध किया ॥ ३ ॥ इसी तरह एक-एकसे समाचार पा सब नागरिक जहाँ-तहाँ दौड़ने लगे, जैसे मेघकी ध्वनि सुनकर मयूर प्रसन्न हो जायँ, अथवा समुद्रमें डूबते हुएको किनारा मिल जाय ॥ ४ ॥ 'वनवासकी अवधि आज ही है' इस प्रकार आपसमें कहते-कहते शीघ्र ही विमान नगरके निकट आ गया। उससे भाई लक्ष्मण और अपने अनुचरोंके सहित उतरकर प्रभुने गुरु तथा अन्य ब्राह्मणोंको सिर नवाया ॥५॥ जो जिस योग्य था उससे उसी प्रकार मिलकर रामचन्द्रजीने सबके हृदयमें खूब आनन्द बढ़ाया। फिर वे भरत, शत्रुघ्न तथा माताओं-से मिले। उस समय जो अपरिमित प्रेम उमड़ा उसका किस प्रकार वर्णन करूँ ? ॥ ६ ॥ मुनिमण्डलने उसी दिन तुरन्त अति आनन्दित हो राज्याभिषेककी तैयारी कर दी। तुलसीदासने भी आदरपूर्वक महाराज रघुनाथजीका गुणगान किया है ॥ ७ ॥

राज्याभिषेक

राग जैतश्री

[२२]

रन जीति राम राउ आए ।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु, अवध आनंद-बधाए ॥ १ ॥
अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बसाए ।
धरनि-धेनु, महिदेव-साधु, सबके सब सोच नसाये ॥ २ ॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन-पियूष पिआए ।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए ॥ ३ ॥
मिलि गुर, बंधु, मातु, जन, परिजन, भए सकल मन भाए ।
दरस-हरस दसचारि बरसके दुख पलमें बिसराए ॥ ४ ॥
बोलि सचिव सुचि, सोधि सुदिन, मुनि मंगल-साज सजाए ।
महाराज-अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए ॥ ५ ॥
लै लै भेंट नृप-अहिप-लोकपति अति सनेह सिर नाए ।
पूजि, प्रीति पहिचानि राम आदरे अधिक, अपनाए ॥ ६ ॥
दान मान सनमानि, जानि रुचि, जाचक जन पहिराए ।
गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए ॥ ७ ॥
प्रभु-प्रताप-रबि अहित-अमंगल-अघ-उलूक-तम ताए ।
किये बिसोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए ॥ ८ ॥
रामराज कुलकाज सुमंगल, सबनि सबै सुख पाए ।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित, प्रजा प्रमोद बढ़ाए ॥ ९ ॥

आस्रम-धरम-बिभाग बेदपथ पावन लोग चलाए।
धरम-निरत, सिय-राम-चरन-रत, मनहु राम-सिय-जाए ॥१०॥
कामधेनु महि, बिटप कामतरु, कोउ बिधि बाम न लाये।
ते तब, अब तुलसी तेउ जिन्ह हित सहित राम-गुन गाये ॥११॥

महाराज राम युद्ध जीतकर भाई, सेना और सीताजीके सहित सकुशल आ गये हैं। इसलिये आज अयोध्यामें आनन्दोत्सव हो रहा है ॥१॥ उन्होंने शत्रुके नगरको उजाड़ और जलाकर तथा शत्रुको मारकर देवताओंके घरोंको बसाया है। पृथिवी, गौ, ब्राह्मण और साधु, इन सबके सभी शोक नष्ट कर दिये हैं ॥ २ ॥ विभीषणको लंका देकर उन्हें स्थिरता-पूर्वक राज्याभिषिक्त कर वचनरूप अमृत पिलाया है और [युद्धमें मरे हुए] वानरोंको अमृतसे सींचकर जीवित कर अब अयोध्याके नर-नारियोंको कृपादृष्टिसे निहारकर जीवन-दान दिया है ॥ ३॥ गुरु, भाई, माता, सेवक और कुटुम्बी लोग प्रभुसे मिले, इससे उन सबकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं और प्रभुके दर्शनके आनन्दमें वे चौदह वर्षके दुःखोंको एक पलभरमें भूल गये ॥ ४ ॥ मुनिवर वसिष्ठजीने सुमन्त आदि पवित्रचित्त मन्त्रियोंको बुलाकर शुभ दिन शोधकर मंगल-सामग्रियाँ एकत्रित करायीं। भगवान् रामके राज्याभिषेकके समय देवताओंने फूल बरसाकर दुन्दुभी आदि बाजे बजाये ॥ ५ ॥ तथा भूपति, अहिपति और लोकपतियोंने तरह-तरहकी भेंटें ले भगवान्का पूजन कर उन्हें अत्यन्त प्रेमसे सिर नवाये। भगवान् रामने उनका प्रेम पहचानकर खूब आदर किया और उन्हें अच्छी तरह अपनाया ॥ ६ ॥ फिर याचकोंको, उनकी रुचि देख-देखकर दान और मानसे सन्तुष्ट किया तथा उन्हें

वस्त्रादि पहनाये। इससे उनके शोकरूप सरोवर सूख गये तथा आनन्दरूप नदी और समुद्र गम्भीर हो गये ॥ ७ ॥ प्रभुके प्रतापरूप सूर्यके सामने अहित, अमङ्गल और पापरूप उल्लू तथा अन्धकार लीन हो गये, सुहृद्रूप कोक (चकवा-चकवी) एवं कोकनद (कमल) शोकहीन हो गये तथा सम्पूर्ण लोकोंमें उनका सुयश छा गया ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीके राज्यमें सारे लौकिक कार्य मङ्गलमय रहे, सबको सब प्रकारके सुख प्राप्त हुए तथा ब्राह्मण लोग प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर प्रजाका आनन्द बढ़ाते रहे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीरामने आश्रमधर्मका विभाग कर लोगोंको पवित्र वेदमार्गपर प्रवर्तित किया। सब लोग धर्मपरायण तथा राम और सीताके चरणोंमें प्रीति करनेवाले थे, मानो साक्षात् राम और सीतासे ही उत्पन्न हुए हों ॥ १० ॥ पृथिवी कामधेनुरूप तथा वृक्ष कल्पतरुके समान हो गये; विधाता किसीके प्रति विपरीत नहीं रहा। तुलसीदासजी कहते हैं, यह तो उस समयके लोगोंकी बात है, किन्तु इस समय भी जिन्होंने प्रीतिपूर्वक रघुनाथजीके गुण गाये हैं उन्हें वही आनन्द प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

राग टोड़ी

[२३]

आजु अवध आनंद-बधावन, रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥ १ ॥
घर घर चारु चौक चंदन-मनि, मंगल-कलस सबनि साजे।
ध्वज-पताक, तोरन, बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥ २ ॥
राम-तिलक सुनि दीप दीपके नृप आए उपहार लिये।
सीयसहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिये ॥ ३ ॥

मंगलगान, वेदधुनि जयधुनि, मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे।
बरषि सुमन सुर-सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे ॥४॥
राम-राज भइ कामधेनु महि, सुख-संपदा लोक छाए।
जनम जनम जानकीनाथके गुनगन तुलसिदास गाए ॥५॥

महाराज राम शत्रुको युद्धमें जीतकर आये हैं; इसलिये आज अयोध्यामें आनन्दमय वधावा हो रहा है। देवता लोग अपने सुन्दर विमान सजाकर प्रसन्नतापूर्वक बाजे बजाते उन्हें देखनेके लिये दौड़े आ रहे हैं ॥ १ ॥ घर-घरमें चन्दन और मणियोंके सुन्दर चौक पूरे गये हैं, सबने मङ्गलकलश तथा ध्वजा, पताका, तोरण और अच्छे-अच्छे चँदोवे सजाये हैं तथा जगह-जगह तरह-तरहके बाजे बज रहे हैं ॥ २ ॥ रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर द्वीप-द्वीपान्तरोंके राजा लोग उपहार लिये आये हैं, और भगवान् रामको सीताजीके सहित सिंहासनपर बैठे देख हृदयमें हर्षित होकर जुहारते हैं ॥ ३ ॥ सारे भुवन मङ्गलगान, वेदध्वनि, जयघोष और मुनीश्वरोंके आशीर्वादात्मक शब्दोंसे भरे हुए हैं। देवता और सिद्ध लोग पुष्प बरसाकर भगवान्की प्रशंसा करते हैं तथा भगवान्ने भी सबके सभी दुःख दूर कर दिये हैं ॥ ४ ॥ भगवान् रामके राज्यमें पृथिवी कामधेनुरूपा हो गयी है और सम्पूर्ण लोक सुख एवं सम्पत्तिसे छा गये हैं। तुलसीदासने भी जन्म-जन्ममें श्रीसीतापतिके ही गुणगणका गान किया है ॥ ५ ॥

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

गीतावली

उत्तरकाण्ड

रामराज्य

राग सोरठ

[१]

बनतें आइकै राजा राम भए भुआल ।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल ॥ १ ॥
मिटे कलुष-कलेस-कुलषन, कपट-कुपथ-कुचाल ।
गए दारिद, दोष दारुन, दंभ-दुरित-दुकाल ॥ २ ॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल ।
नारि-नर तेहि समय सुकृती, भरे भाग सुभाल ॥ ३ ॥

बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल।
राम-सिय-सेवक-सनेही, साधु, सुमुख, रसाल॥ ४॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध-सुर-दिगपाल।
सुमिरि सों तुलसी अजहु हिय हरष होत बिसाल॥ ५॥

वनसे आकर महाराज राम भूपति हुए। उनके राज्यमें चौदहों भुवन आनन्दित हो गये और सब लोग सब समय सब प्रकारके सुखोंसे सुखी रहने लगे॥ १॥ सब प्रकारके पाप, क्लेश, कुलक्षण, कपट, कुमार्ग और कुचाल नष्ट हो गये तथा दरिद्रता, दारुण दोष, दम्भ, दुरित और दुष्काल आदिका नाम मिट गया॥ २॥ पृथिवी कामधेनुरूपा हो गयी, वृक्ष साक्षात् कल्पतरु हो गये और पत्थर मणि तथा लाल आदि हो गये। इस प्रकार उस समय सभी स्त्री-पुरुष पुण्यवान् एवं भाग्यशाली थे॥ ३॥ वे अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मोंमें तत्पर, मन, वचन और वेषसे हंसके समान स्वच्छ-पवित्र, राम और सीताके सेवक, प्रेमी, साधुचरित्र, प्रसन्नवदन एवं विनम्र थे॥४॥ भगवान् रामके राजसमाजका तो सिद्ध, देवता और दिक्पालगण भी वखान किया करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं, उसकी बातोंको याद करके हृदयमें आज भी अत्यन्त आनन्द होता है॥ ५॥

रामरूप-वर्णन

राग ललित

[२]

भोर जानकीजीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन, बेनु-बीना-धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे॥ १॥

स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे ।
उनींदे लोचन चारु, मुख-सुखमा-सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे ॥ २ ॥
सहज सुहाई छबि, उपमा न लहैं कबि, मुदित बिलोकन लागे ।
तुलसिदास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे ॥ ३ ॥

प्रातःकाल होते ही जानकीजीवन भगवान् राम जागे । उस समय सुचतुर सूत और मागधोंने विरदावली कहना आरम्भ कर दिया, द्वारपर बाँसुरी और वीणाकी ध्वनि होने लगी तथा गायकोंने सरस राग अलापना आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥ भगवान्का अति सुन्दर श्याम शरीर प्रियाके प्रेमरसमें पगकर आलस्यके कारण अँगड़ाने लगा । उनके कुछ उनींदे-से मनोहर नेत्र तथा मुखकी प्रतिभा और शृंगार देखकर अनेकों कामदेव भी हार मानकर भाग गये ॥ २ ॥ उनकी छबि स्वभावसे ही शोभामयी है, उसकी उपमा कोई भी कवि नहीं पा सकता; अतः वे प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते हैं । तुलसीदास कहते हैं, इस प्रकार वे अहर्निश प्रभुके अनूप रूपके प्रेममें मग्न रहते हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

[३]

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई ।
देखो सखि अतुलित छबि, संत-कंज-कानन रबि,
गावत कल कीरति कबि-कोबिद-समुदाई ॥ १ ॥
मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर,
सेवत पदकमल धीर निरमल चित लाई ।

ब्रह्ममंडली-मुनींद्रबृंद-मध्य इंदुबदन
राजत सुखसदन लोकलोचन-सुखदाई ॥ २ ॥
बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई ।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥ ३ ॥
ललित भ्रुकुटि, तिलक भाल, चिबुक-अधर-द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल, नासिका सुहाई ।
मधुकर जुग पंकज बिच, सुक बिलोकि नीरजपर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई ॥ ४ ॥
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित, बिबिध बिधि बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीरपाँति रुचिर,
हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ॥ ५ ॥
संकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि-चंचरीक,
निर्ब्यलीक-मानस-गृह संतत रहे छाई ।
अतिसय आनंदमूल तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥ ६ ॥

अरी माई ! कमलनयन महाराज रघुनाथजी करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर शरीरवाले, करुणारसके आगार और आनन्दस्वरूप हैं। सखि ! देखो, उनकी अतुलित छबि साधुसमाजरूप कमलवनके लिये

सूर्यस्वरूप है और उनकी पवित्र कीर्ति कवि तथा विद्वत्समुदाय गान करते हैं ॥ १ ॥ अहा ! रघुवंशवीर श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके अनन्तर सरयूतटपर खड़े हैं। उनके चरणकमलोंको मनस्वी भक्तगण अपना निर्मल चित्त लगाकर सेवन कर रहे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले आनन्दधाम चन्द्रवदन भगवान् राम ब्राह्मणसमाज तथा मुनीन्द्रमण्डलीके मध्यमें विराजमान हैं ॥ २ ॥ उनकी कुञ्चित अलकावली बिथुरी हुई है, जिनके बीच-बीचमें फूलोंके गुच्छे लगे हैं। वे ऐसे मालूम होते हैं मानो मणियोंके सहित बाल-सर्पोंका समुदाय चन्द्रमाके समीप आया हो और उसे देखकर चन्द्रमाने भयभीत होकर उनसे बचनेके लिये दो मनोहर मोरोंको फुसलाकर रख छोड़ा हो और उन [मोररूप] कुण्डलोंकी छवि देखकर वे [सर्परूप] चोर अत्यन्त सकुचाते हों। [यहाँ भगवान्का मुख चन्द्रमा है, केशकलाप सर्पबालक हैं, उनमें गुँथे हुए फूल उनकी मणियाँ हैं और कानोंके कुण्डल दो मोर हैं] ॥ ३ ॥ उनकी भ्रुकुटि अत्यन्त सुन्दर है, माथेपर तिलक शोभायमान है तथा चिबुक, अधर और दन्तावली बड़ी ही सरस हैं। उनकी हँसी बड़ी ही मनमोहिनी तथा कपोल और नासिका बड़े ही सुघड़ हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो [नेत्ररूप] कमलोंपर [भ्रुकुटिरूप] दो भौंरे बैठे हैं; तथा [मुखरूप] पङ्कजपर [अलका-वलीरूप] भ्रमरोंको लड़ते देख [नासिकारूप] शुकने उनका बीच-बिचाव किया हो ॥ ४ ॥ भगवान्के शरीरपर अति सुन्दर और विशद पीताम्बर तथा हृदयमें तुलसी एवं विविध प्रकारके पुष्पोंसे अनेक प्रकारसे बनायी हुई वनमाला शोभायमान है। जो ऐसी मालूम होती

है मानो [श्यामशरीररूप] तमालवृक्षके बीचमें [वनमालारूप] तिरंगे शुकपक्षियोंकी मनोहर पंक्ति हो और वह [पीताम्बररूप] सुवर्ण-पाशके भीतर पड़ जानेसे उड़ न सकती हो ॥ ५ ॥ जो रामरूप भ्रमर श्रीशंकरके हृदयकमलमें अहर्निश निवास करते हैं और जो छलहीन पुरुषोंके मनमन्दिरमें निरन्तर बसे रहते हैं वे सकल तापापहारी अवधविभूषण परमानन्दमूल श्रीरघुनाथजी तुलसीदासपर सर्वदा प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥

[४]

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर-
हरन सकल सरजुतीर निरखहु, सखि ! सोहैं ।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग-करन,
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ॥ १ ॥
सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नील
कुंचित कच, कुंडल कल, नासिका चित पोहैं ।
मनहु इंदुबिंब मध्य कंज-मीन-खंजन लखि
मधुप-मकर-कीर आए तकि तकि निज गोहैं ॥ २ ॥
ललित गंडमंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक-अंक, रुचिर बंक भौहैं ।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन-दमक दामिनि दुति,
हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवनि तिरछौहैं ॥ ३ ॥
कंबुकंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं ।

जनु कलिंद-नंदिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि
धँसति लसति हंससेनि-संकुल अधिकौहैं ॥ ४ ॥
दिब्यतर दुकूल भब्य, नब्य रुचिर चंपक चय,
चंचला-कलाप, कनक-निकर अलि ! किधौं हैं ।
सज्जन-चष-झष-निकेत, भूषन-मनिगन समेत,
रूप-जलधि-बपुष लेत मन-गयंद बोहैं ॥ ५ ॥
अकनि बचन-चातुरी, तुरीय पेखि प्रेम-मगन
पग न परत इत उत, सब चकित तेहि समौ हैं ।
तुलसिदास यह सुधि नहि कौनकी, कहाँतें आई,
कौन काज, काके ढिग, कौन ठाउँ को हैं ॥ ६ ॥

'अरी सखि ! देख, संसारके दुःखको दूर करनेवाले सर्व-तापापहारी धीर-वीर रघुनाथजी सरयूतटपर शोभायमान हैं। उनके साथ छोटे भाई और बहुत-से लोग-बाग हैं, वे स्वयं भी शत्रुओंकी सेनाको छिन्न-भिन्न करनेवाले हैं तथा उनके अङ्ग-अङ्गकी शोभा अगणित कामदेवोंका मन मोह रही है ॥ १ ॥ उनके सुखमा, शील और आनन्दके भण्डार मनोहर नेत्र देखो तथा नीली और घुँघराली अलकें निहारो। अहा ! इनके मनोहर कुण्डल और नासिका तो हमारे चित्तोंको अपनेमें लगाये लेते हैं; मानो चन्द्रबिम्बके मध्यमें कमल, मत्स्य और खञ्जन पक्षीको देखकर उन्हें अपने सजातीय जान भ्रमर, मकर और शुक पक्षी आये हों [यहाँ मुख चन्द्रमण्डल है, नेत्र कमल, मत्स्य और खञ्जन पक्षी हैं, अलकें भ्रमर हैं, कुण्डल मकर हैं तथा नासिका शुक है] ॥ २ ॥ भगवान्‌के बड़े ही मनोहर कपोल हैं, अत्यन्त विशाल भालपर

तिलक झलक रहा है तथा [मुखचन्द्रपर] चन्द्रमाके चिह्न [मेचकताई] के समान अत्यन्त मनोहर बाँकी भ्रुकुटियाँ हैं। प्रभुके अरुण अधर, सुमधुर बोल, विद्युच्छटाके समान दाँतोंकी दमक, मनोहर मुसकान तथा तिरछी चितवन चित्तको उल्लसित कर देती हैं ॥ ३ ॥ भगवान्‌का कण्ठ शंखके समान है, भुजाएँ लंबी-लंबी हैं, तथा हृदयमें मनोहर मुक्तावलीके सहित नवीन तुलसीकी माला शोभायमान है। उस छबिको योगिजन हृदयमें इस प्रकार देखते हैं मानो हंसोंकी पंक्तिके सहित कलिन्दनन्दिनी यमुनाजी इन्द्रनीलमणिके शिखरको स्पर्श करती हुई नीचेको गिरती हुई अत्यन्त शोभा पा रही हों [यहाँ मोतियोंकी माला हंसोंकी पंक्ति है, तुलसीकी माला कालिन्दी है और भगवान्‌का कंधा इन्द्रनीलमणिका शिखर है] ॥ ४ ॥ अरी आली! प्रभुका जो महामनोहर नवीन एवं दिव्य दुकूल (उपरना) है वह सुन्दर चम्पक पुष्पोंका समूह तो नहीं है? अथवा वह विद्युत्कलाप किंवा सुवर्णका समूह है? भगवान्‌का सौन्दर्यसमुद्र शरीर, जो सत्पुरुषोंके नेत्ररूप मकरोंका निवास-स्थान एवं भूषणरूप रत्नराशिसे सम्पन्न है, हमारे मनरूप मतंगको अपने अन्दर डुबाये लेता है ॥ ५ ॥ उस सखीकी यह वाक्चातुरी देखकर तथा तुरीयरूप भगवान् रामको निहारकर सब सखियाँ प्रेममें डूब गयीं। उनके पग न तो आगे पड़ते थे और न पीछे; उस समय सब-की-सब चकित हो रही थीं। तुलसीदासजी कहते हैं, उन्हें यह सुधि न रही कि कौन किसकी है? कहाँसे आयी है? उसका क्या काम है? किसके पास खड़ी है? और कौन किस जगह है? ॥ ६ ॥

[९]

देखु सखि ! आजु रघुनाथ-सोभा बनी ।
नील-नीरद-बरन बपुष भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन दुति-दामिनी ॥ १ ॥
सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिए,
हेतु जनपर हिये, कृपा कोमल घनी ।
सजनि ! आवत भवन मत्त-गजवर-गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी ॥ २ ॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिवरत चतुर, सरस सुषमा जनी ।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहु ससि सन समर
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥ ३ ॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक,
चारु भ्रू, नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुंदर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर,
बचन गंभीर, मृदुहास भव-भाननी ॥ ४ ॥
स्रवन कुंडल बिमल गंड मंडित चपल,
कलित कलकांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी ।
जुगल कंचन-मकर मनहु बिधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी ॥ ५ ॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहु पास बनि गजमनी ।

स्याम नव जलदपर निरखि दिनकर-कला
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥ ६ ॥

मंदिरनिपर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुंकुम-कनी ।

दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम-सतकोटि-मद हरत छबि आपनी ॥ ७ ॥

अरी सखि ! देख आज रघुनाथजीकी कैसी शोभा बनी है ! उनका शरीर नीलमेघके समान कान्तिमान् तथा सम्पूर्ण लोकोंका आभूषण है, वह बिजलीकी छटाको छीननेवाला सुन्दर पीताम्बर पहने हुए हैं ॥ १ ॥ अरी सजनी ! देख, कोसल राजकुँवर रघुनाथजी सरयूमें स्नान-कर साथमें बहुत-से साधुजनोंको लिये मत्त गजराजकी चालसे राज-महलको आ रहे हैं। उनके हृदयमें दीनोंके प्रति प्रेम, कृपा और अत्यन्त कोमलता है तथा उनकी कटि और ठवनि सिंहके समान है ॥ २ ॥ उनके मुखमण्डलपर घने, चिकने, टेढ़े और मुलायम बाल बिखरे हुए हैं; उन्हें परम चतुर रघुनाथजी हाथोंसे सँवारते हैं। उससे ऐसी सरस शोभा उत्पन्न होती है मानो मनोहर सर्पशिशुओंका समूह चन्द्रमा-से अमृतके लिये झगड़ रहा हो और उसे दो बड़े सर्प समझाते हों ॥ ३ ॥ प्रभुके मस्तकपर तिलक शोभायमान है, उनके नेत्र कमलके समान हैं, पलक तथा भ्रुकुटी बड़ी मनोहर हैं, सुन्दर नासिका साक्षात् तोतेकी चोंचके समान है, ठोड़ी बड़ी सुन्दर है, अधर अरुणवर्ण हैं, दाँतोंकी कान्ति बड़ी सुहावनी है, वाणी गम्भीर है तथा मृदुल मुसकान संसृति-संतापका शमन करनेवाली है ॥ ४ ॥ भगवान्के कानोंमें कुण्डल हैं,

उन्होंने निर्मल कपोलोंको विभूषित कर उनपर एक और ही प्रकारकी चंचल और मनोहर कान्ति फैला दी है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो दो सुनहरी मकर चन्द्रमाकी सुमधुर किरणोंका पान करते हों और उससे परिचय प्राप्तकर समुद्रकी कीर्ति गा रहे हों [क्योंकि समुद्र मकरोंका निवासस्थान है और चन्द्रमाका उत्पत्तिस्थान] ॥ ५ ॥ देखो, इनके वक्षःस्थलपर पदिक सुशोभित है, उसकी ज्योति खूब फैली हुई है। उसके चारों ओर गजमुक्ताओंकी सुविशाल माला विराजमान है, मानो नवीन श्याममेघपर सूर्यकी कला देखकर उसे कौतुकवश नक्षत्रमालाने घेर लिया हो [शरीर श्याममेघ है, पदिक सूर्यकला है, गजमुक्तामाल ही नक्षत्रगण हैं। मेघपर सूर्यकलाका दिखायी देना तथा सूर्यको नक्षत्रोंका घेरना अघटितघटनाका ही कौतुक है] ॥ ६ ॥ इस समय अपने-अपने घरोंपर खड़ी हुई पुरनारियाँ प्रभुको देखकर आनन्दपूर्ण हो उनपर बहुत-से फूल और केसरके परागकी वर्षा कर रही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, इस समय परम करुणाधाम भगवान् राम अपनी छबिसे अरबों कामदेवोंका मान मर्दन करते हैं ॥ ७ ॥

[६]

आजु रघुबीर-छबि जात नहि कछु कही।
सुभग सिंहासनासीन सीतारवन,
भुवन-अभिराम, बहु काम सोभा सही ॥ १ ॥
चारु चामर-ब्यजन, छत्र-मनिगन बिपुल,
दाम-मुकुतावली-जोति जगमगि रही।
मनहु राकेस सँग हंस-उडुगन-बरहि
मिलन आए हृदय जानि निज नाथ ही ॥ २ ॥

मुकुट सुंदर सिरसि, भालबर तिलक-भ्रू,
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही।
मनहु हरडर जुगल मारध्वजके मकर
लागि स्रवननि करत मेरुकी बतकही ॥ ३ ॥
अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमासदन, हास त्रय-तापही।
बिबिध कंकन, हार, उरसि गजमनि-माल,
मनहु बग-पाँति जुग मिलि चली जलदही ॥ ४ ॥
पीत निरमल चैल, मनहु मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहजही।
ललित सायक-चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुजतनु दनुजबन-दहन, मंडन-मही ॥ ५ ॥
जासु गुन-रूप नहि कलित, निरगुन सगुन,
संभु, सनकादि, सुक भगति दृढ़ करि गही।
दासतुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन करम चहै प्रीति नित निरबही ॥ ६ ॥

आज रघुनाथजीकी छबिका कुछ वर्णन नहीं किया जाता। आज त्रिभुवनसुन्दर सीतारमण भगवान् राम सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हैं। वे सचमुच अनेकों कामदेवोंके समान शोभासम्पन्न हैं ॥ १ ॥ सुन्दर चँवर, व्यजन, छत्र, अनेकों मणिगण तथा मुक्तामालाओंकी लड़ियोंकी ज्योति जगमगा रही है, मानो अपने प्रभुको हृदयमें पहचानकर [छत्ररूप] चन्द्रमाके सहित [चँवररूप] हंस, [मणिगणरूप] तारे और [व्यजन-

रूप] और श्रीरघुनाथजीसे मिलनेके लिये आये हैं ॥ २ ॥ प्रभुके सिरपर सुन्दर मुकुट है, ललित ललाटपर तिलक और भ्रुकुटियाँ शोभायमान हैं, तथा घुँघराली अलकोंके पास कुण्डलोंकी बड़ी शोभा हो रही है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवकी ध्वजाके दो मकर भगवान् शंकरके भयसे [प्रभुको उनके स्वामी जान] कानोंसे लगकर मेलकी बातचीत कर रहे हैं ॥ ३ ॥ भगवान्‌के अरुण कमलदलके समान नेत्र करुणाके भण्डार हैं। उनका मुख सुखमाका आश्रय तथा हास तीनों तापोंको नष्ट करनेवाला है। वे हाथोंमें तरह-तरहके कंकण तथा हृदयमें हार और गजमुक्ताओंकी माला धारण किये हैं मानो दो बगुलोंकी पंक्तियाँ मिलकर मेघकी ओर जा रही हों ॥ ४ ॥ वे अति स्वच्छ पीताम्बर धारण किये हैं, मानो मरकतमणिके पर्वतपर बहुत-सी बिजली अपने स्वभावको छोड़कर छायी हुई हो। उनके हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण हैं तथा पुष्ट भुजाओंमें अतुलित बल है। उनका यह मनुष्य-शरीर दैत्यवन-को जलानेवाला तथा पृथिवीका आभूषण है ॥ ५ ॥ जो निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं तथा जिनके गुण और रूपोंकी कोई गणना नहीं कर सकता; अतः शिव, सनकादि तथा शुकदेवजीने भी जिनके भक्तिभावको ही दृढ़ करके पकड़ा है उन भगवान् रामके चरणकमलोंमें तुलसीदास मन, वचन और कर्मसे सदा प्रीतिका ही निर्वाह चाहता है ॥ ६ ॥

[७]

राम राजराजमौलि मुनिबर-मन-हरन, सरन-
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ, री।
लोक-लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,
रूप-सील-धाम, अंग छबि अनंग को, री ? ॥ १ ॥

भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निरमित मनि-रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहि थोरी।
मनहु चंचरीक-पुंज कंजबृंद प्रीति लागि
गुंजत कल गान तान दिनमणि रिझयो, री ॥ २ ॥
अरुनकंज-दल-बिसाल लोचन, भ्रू-तिलक भाल,
मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी।
मनहु संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि, भ्राजत दुहु ओरी ॥ ३ ॥
सुंदर नासा-कपोल, चिबुक, अधर अरुन, बोल
मधुरे, दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराग-सिखर-निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी ॥ ४ ॥
कंबुकंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर-बास-बिबस, उपमा सुनु सो, री!
जनु कलिंदजा सुनील सैलतें धसी समीप,
कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ॥ ५ ॥
निरमल अति पीत चैल,दामिनि जनु जलद नील
राखी निज सोभाहित बिपुल बिधि निहोरी।
नयनन्हि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष,
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ, री ॥ ६ ॥
सुंदर सीता समेत सोभित करुनानिकेत,
सेवक सुख देत, लेत चितवत चित चोरी।

बरनत यह अमित रूप थकित निगम-नागभूप,
तुलसिदास छबि बिलोकि सारद भइ भोरी ॥ ७ ॥

अरी सखियो ! मुनियोंके मनोंको हरनेवाले तथा शरणके योग्य सुखदायक राजाधिराजशिरोमणि भगवान् रामकी ओर तो देखो । वे सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले, नीलमणि और तमाल-वृक्षके समान श्यामवर्ण तथा रूप और शीलके आश्रय हैं । उनके अंग-प्रत्यंगोंमें करोड़ों कामदेवोंकी छबि है ॥ १ ॥ उनके सिरपर अति सुन्दर मणिजटित सुवर्णमय मुकुट शोभायमान है तथा उसके नीचे अति मनोहर कुटिल अलकावली है। उसकी शोभा भी कुछ कम नहीं है। [वे ऐसे मालूम होते हैं] मानो [मुख एवं नेत्ररूप] कमलोंकी प्रसन्नताके लिये गूँजते हुए भौरोंने अपने सुन्दर गानकी तानसे [मुकुटरूप] सूर्यको रिझा लिया हो ॥ २ ॥ उनके नेत्र अरुण कमलदलके समान विशाल हैं, माथेपर भ्रुकुटि तथा तिलक शोभायमान हैं तथा कानोंमें श्रेष्ठ कुण्डलोंकी अत्यन्त सुन्दर जोड़ी सुशोभित है, मानो श्रीमहादेवजीने कामदेवको मार उसकी ध्वजाके दो मकरोंको सुन्दर जान उन्हें चन्द्रमाको दे दिया हो और वे उसके दोनों ओर शोभायमान हों ॥ ३ ॥ प्रभुकी नासिका, कपोल, ठोड़ी और अरुण अधर बड़े ही सुन्दर हैं तथा उनके बोल अत्यन्त मीठे हैं। जिस समय वे मुख मोड़कर निहारते हैं उस समय उनके दाँत ऐसे शोभायमान होते हैं जैसे किसी कमलकोशके भीतर विधाताद्वारा बिजलीके रंगमें डुबोकर रचे हुए अति सुन्दर पद्मरागके शिखर विराजते हों ॥ ४ ॥ अरी सखि ! प्रभुके कम्बुकण्ठ तथा विशाल वक्षःस्थलपर जो नवीन तुलसीकी माला है और उसकी

सुहावनी सुगन्धके वशीभूत होकर उसपर जो भौंरे गुंजार रहे हैं उनकी उपमा तो सुन। [वे ऐसे जान पड़ते हैं] मानो किसी नीलशिखरसे गिरती हुई कालिन्दीके समीप मेघवृन्द मधुर छबिको घोल-घोलकर बरसा रहे हों [यहाँ भगवान्‌का श्याम शरीर नीलशिखर है, तुलसीकी माला कालिन्दी है, उसपर गुञ्जारते हुए भौंरे मेघ हैं तथा उनके मुखसे जो फूलोंका पराग झड़ता है वही छबिकी वर्षा करना है] ॥ ५ ॥ प्रभुके श्याम शरीरपर अत्यन्त निर्मल पीताम्बर सुशोभित है, मानो किसी नीलमेघने अपनी शोभाके लिये बहुत अनुनय-विनय करके बिजलीको रख छोड़ा हो। अरी! इस सगुण वेषमें प्रकट हुआ यह निर्गुण ब्रह्म नेत्रोंका परम लाभ है, तुम पलक मारना छोड़कर इसे देखो और अपने जीवनको सफल हुआ समझो ॥ ६ ॥ देखो, सुन्दरी सीताके सहित शोभायमान करुणाधाम भगवान् राम अपने सेवकोंको सुख देते हैं और अपनी दृष्टि डालते ही चित्तको चुरा लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, इस अमित रूपका वर्णन करते-करते श्रुति और शेषजी भी थकित हो गये हैं तथा इनकी छबिको देखकर शारदाकी बुद्धि भी चकित हो गयी है ॥७॥

राग केदारा

[८]

सखि ! रघुनाथ-रूप निहारु।
सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिजमानभंजनिहारु ॥ १ ॥
स्याम सुभग सरीर जन-मन-काम-पूरनिहारु।
चारुचंदन मनहु मरकत-सिखर लसत निहारु ॥ २ ॥

रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि-हारु।
मनहु सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु ॥ ३ ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिंदनिहारु।
बदन सुषमासदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥ ४ ॥
सकल अंग अनूप, नहि कोउ सुकबि बरननिहारु।
दासतुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥ ५ ॥

अरी सखि! भगवान् रामका शरच्चन्द्र, अश्विनीकुमार तथा कामदेवका मान मर्दन करनेवाला रूप देख ॥ १ ॥ भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करनेवाले भगवान्के श्यामसुन्दर शरीरपर जो चन्दनका लेप हो रहा है, वह ऐसा जान पड़ता है मानो मरकतमणिके शिखरपर कुहरा सुशोभित हो ॥ २ ॥ भगवान्के मनोहर वक्षःस्थलमें यज्ञोपवीत, पदिक और गजमुक्ताओंका हार शोभायमान है, मानो इन्द्रधनुष और नक्षत्रगणके बीचमें साक्षात् सूर्यदेव विराजमान हों ॥ ३ ॥ प्रभुका निर्मल पीताम्बर बिजलीकी कान्तिका तिरस्कार करनेवाला है तथा उनका सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल कामदेवको भी मोहित करनेवाला है ॥ ४ ॥ भगवान्के सभी अंग अनुपम हैं, उनका वर्णन कर सकनेवाला कोई सुकवि नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं, उसका दर्शन करनेवाले उसे देखते ही सुखी हो जाते हैं ॥ ५ ॥

[९]

सखि! रघुबीर-मुखछबि देखु।
चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥ १ ॥

नयन-सुषमा निरखि नागरि! सफल जीवन लेखु।
मनहु बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु॥ २॥
भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम-रेखु।
भ्रमर द्वै रबिकिरनि ल्याए करन जनु उनमेखु॥ ३॥
सुमुखि! केस सुदेस सुंदर सुमन-संजुत पेखु।
मनहु उडुगन बाँह आए मिलन तम तजि द्वेषु॥ ४॥
स्रवन कुंडल मनहु गुरु-कबि करत बाद बिसेषु।
नासिका, द्विज, अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु बेषु॥ ५॥
रूप बरनि न सकत नारद-संभु, सारद-सेषु।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल नरेषु॥ ६॥

अरी सखि! तू रघुनाथजीके मुखकी छवि देख। तू उनकी उस सुन्दरताको अपनी चित्तरूप भित्तिपर सम्यक् प्रीतिरूप रंगसे अंकित कर ले॥ १॥ अरी आली! प्रभुके नेत्रोंकी सुन्दरता देखकर तू अपने जीवनको सफल जान। वे तो ऐसे जान पड़ते हैं मानो मेषराशिकी पूर्णिमा (शरत्पूर्णिमा) के चन्द्रमामें विधाताने दो कमल बना दिये हों॥ २॥ भगवान्के भ्रुकुटियुक्त विशाल भालपर कुंकुमकी रेखाएँ (तिलक) शोभायमान हैं, मानो भ्रमरगण [नेत्ररूप कमलोंके विकासके लिये] सूर्यकी दो किरणें ले आये हों॥ ३॥ अरी सुमुखि! प्रभुके मनोहर मस्तकपर सुन्दर फूलोंके सहित उनका केशकलाप देख, मानो केशरूप अन्धकार तिलकरूप सूर्यसे मिलनेके लिये द्वेष त्यागकर पुष्परूप तारागण-को बाँह बनाकर आये हों॥ ४॥ उनके कानोंमें जो कुण्डल हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो बृहस्पति और शुक्र विशेष वाद-विवाद कर रहे हों

तथा नासिका, दाँत और अधर तो ऐसे शोभायमान हैं मानो कामदेव ही कई प्रकारके वेष बनाकर बस गया हो ॥ ५ ॥ प्रभुके रूपका तो श्रीशंकर, शेष, शारदा और नारद भी वर्णन नहीं कर सकते; फिर सम्पूर्ण मनुष्योंमें अत्यन्त मन्दमति तुलसीदास ही उसे किस प्रकार कह सकता है ॥ ६ ॥

राग जैतश्री

[१०]

देखौ, राघव-बदन बिराजत चारु ।
जात न बरनि, बिलोकत ही सुख, मुख किधौं छबि बर नारि सिंगारु ॥ १ ॥
रुचिर चिबुक, रद-ज्योति अनूपम, अधर अरुन सित हास निहारु ।
मनो ससिकर बस्यो चहत कमल महँ, प्रगटत, दुरत, न बनत बिचारु ॥२॥
नासिक सुभग मनहु सुक सुंदर, चितवत चकि आचरज अपारु ।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर रीझि, चित चतुर, अपनपौ वारु ॥ ३ ॥
नयनसरोज, कुटिल कच, कुंडल, भ्रुकुटि, सुभाल तिलक सोभा-सारु ।
मनहु केतुके मकर, चाप-सर गयो बिसारि भयो मोहित मारु ॥ ४ ॥
निगम, सेष, सारद, सुक, संकर बरनत रूप न पावत पारु ।
तुलसिदास कहै, कहौ, धौं कौन बिधि अति लघुमति जड़ क्रूर गँवारु ॥५॥

देखो, रघुनाथजीका सुन्दर मुखमण्डल कैसा शोभायमान है ! इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, इसे देखनेसे ही बड़ा आनन्द प्राप्त होता है । यह मनोहर मुख है अथवा छबिरूप सुन्दरी स्त्रीका श्रृंगार है ? ॥ १ ॥ प्रभुकी ठोड़ी सुन्दर है तथा दाँतोंकी ज्योति अनुपम है,

उनके लाल-लाल ओठोंमें श्वेत हासकी आभा तो देखो [वह तो ऐसी जान पड़ती है] मानो चन्द्रमाकी किरण कमलमें निवास करना चाहती हो; किन्तु उसका विचार निश्चित न होनेके कारण वह बार-बार प्रकट होती एवं छिप जाती हो ॥ २ ॥ प्रभुकी सुघड़ नासिका मानो तोतेकी सुन्दर चोंच है। उसे देखकर चित्त अपार आश्चर्यसे चकित हो जाता है। अरे चतुर चित्त! उनके अमोल कपोल तथा महामधुर और मनोहर बोलोंपर रीझकर तू अपनेको निछावर कर दे ॥ ३ ॥ देखो, इनके नेत्र-कमल, कुटिल कुन्तल, कुण्डल, भ्रुकुटि और सुन्दर ललाटपर तिलक शोभाके सार हैं! मानो कामदेव प्रभुके रूपपर मोहित होकर अपनी ध्वजाके मकर, धनुष और बाण पड़े छोड़ गया हो ॥ ४ ॥ भगवान्‌के रूपका वेद, शेष, शारदा, शुकदेव और भगवान् शंकर भी वर्णन करते-करते पार नहीं पाते। फिर, कहो, अत्यन्त मन्दमति, मूर्ख, कठोरहृदय और गँवार तुलसीदास उसे किस प्रकार कह सकता है? ॥ ५ ॥

राग ललित

[११]

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,
सेवक सुरुष, सोभा सरद-ससि सिहाई।
दसन-बसन लाल, बिसद हास रसाल
मानो हिमकर-कर राखे राजीव मनाई ॥ १ ॥
अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि, भाल,
तिलक, चारु कपोल, चिबुक-नासा सुहाई।

बिथुरे कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि
नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ॥ २ ॥
स्रवन सुंदर सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप, उपमा कही न जाई ।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप
कनक-मकरजुत बिधि बिरची बनाई ॥ ३ ॥

आज रघुनाथजीका मुख देखनेसे आनन्द होता है। कारण कि वह सेवकोंपर सुरुष अर्थात् अनुकूल है; शरच्चन्द्र भी उस शोभाको देखकर सिहाता है। उनके ओठ लाल-लाल हैं तथा विशद मुसकान बड़ी ही मधुर है, मानो हासरूप चन्द्रमाकी किरणोंको होंठ-रूप कमलोंने मनाकर रख लिया है ॥ १ ॥ प्रभुके अरुणवर्ण एवं विशाल नेत्र, मनोहर भ्रुकुटि तथा ललाटपरका तिलक, मनोहर कपोल, चिबुक और नासिका बड़ी ही सुन्दर हैं। उनकी कुटिल अलकें बिखरी हुई हैं, मानो मधुके लालचसे दो कमलोंके ऊपर भौंरे लुभाकर रह गये हों ॥ २ ॥ उनके समान और सुन्दर कानोंमें मनोहर कुण्डलोंकी जोड़ी है। तुलसीदासजी कहते हैं, वे तो अनुपम हैं, उनकी उपमा कही नहीं जाती; मानो विधाताने [मुखरूप] सुन्दर चन्द्रमाके समीप [कुण्डलरूप] सुवर्णकी मछलियोंके सहित [कर्णरूप] मरकतमणिकी सीपियोंको रचकर बनाया हो ॥ ३ ॥

राग भैरव

[१२]

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छबि चितै, चतुर चित मेरे ।
होहिं बिबेक-बिलोचन निरमल सुफल सुसीतल तेरे ॥ १ ॥

भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजै।
मनहु मदन तम तकि मरकत-धनु जुगुल कनक सर साजै ॥ २ ॥
रुचिर पलक लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक-सुमन सेज सजि सोए ॥ ३ ॥
बिलुलित ललित कपोलनिपर कच मेचक कुटिल सुहाए।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आए ॥ ४ ॥
सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमूले।
मनहु केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले ॥ ५ ॥
अधर अरुनतर, दसन-पाँति बर, मधुर मनोहर हासा।
मनहु सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा ॥ ६ ॥
चारु चिबुक, सुकतुंड-बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममुख सुखद, समन भवत्रासा ॥ ७ ॥

ऐ मेरे चतुर चित्त ! तू प्रातःकाल होते ही रघुनाथजीके मुखकी शोभा निहारा कर। इससे तेरे विवेकरूपी नेत्र निर्मल, सफल और शीतल हो जायँगे ॥ १ ॥ भगवान्‌के विशाल भालपर बाँकी भ्रुकुटियाँ हैं और उनके बीचमें तिलककी मनोहर रेखा विराजमान है। मानो कामदेवने [अलकावलीरूप] अन्धकारको देखकर [भ्रुकुटियुगलरूप] मरकतमणिके धनुषपर [तिलकरूप] दो सुवर्णमय बाण चढ़ाये हों ॥ २ ॥ सुन्दर पलक-युक्त नेत्रोंमें दो श्यामवर्ण तारे तथा श्वेत और रक्तवर्ण कोये हैं; मानो कमलकोशमें मुँदे हुए दो भौंरे बन्धूक पुष्पकी शय्या बनाकर उसपर शयन कर रहे हों ॥ ३ ॥ प्रभुके मनोहर कपोलोंपर लटकती हुई काली और घुँघराली अलकें ऐसी शोभायमान हैं मानो [मुखरूप] चन्द्रमामें

[नेत्ररूप] कमलकुसुम देखकर कुतूहलवश बहुत-से भौंरे इकट्ठे हो गये हों ॥ ४ ॥ भगवान्‌के कानोंमें दोनों भुजाओंके मूलभागतक लटकते हुए सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हैं। मानो [मुखरूप] चन्द्रमाके प्रतिकूल हुए [भुजारूप] दो सर्पोंको देखकर उन्हें [कुण्डलरूप] दो मयूर पकड़ना चाहते हैं ॥ ५ ॥ भगवान्‌के अधर खूब लाल-लाल हैं, दन्तावली बड़ी सुन्दर है तथा हास्य बड़ा मधुर और मनोहर है, मानो किसी सोनेके कमलमें बिजलीके सहित वज्र बसे हुए हों ॥ ६ ॥ उनकी ठोड़ी बड़ी मनोहर है तथा सुन्दर और उठी हुई नासिका तोतेकी चोंचको भी लजानेवाली है। तुलसीदासजी कहते हैं, छविधाम भगवान् रामका मुख बड़ा सुखदायक और जन्म-मरणरूप भयको शान्त करनेवाला है ॥ ७ ॥

राग केदारा

[१३]

सुमिरत श्रीरघुबीरकी बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं ॥ १ ॥
सुंदर-स्याम-सरीर-सैलतें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन, जनु जनमी सिँगार-सविता हैं ॥ २ ॥
धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं ॥ ३ ॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिरके द्वार बिसाल सुहाईं साहैं।
जे पूजी कौसिक-मख ऋषयनि, जनक-गनप, संकर-गिरिजा हैं ॥ ४ ॥

भवधनु दलि जानकी बिबाही, भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं ।
परसुपानि जिन्ह किए महामुनि, जे चितए कबहू न कृपा हैं ॥ ५ ॥
जातुधान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं ।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं ॥ ६ ॥
दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं ।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहैं ॥ ७ ॥
जे भुज बेद-पुरान, सेष-सुक-सारद सहित सनेह सराहैं ।
कलपलताहुकी कलपलता बर, कामदुहहुकी कामदुहा हैं ॥ ८ ॥
सरनागत-आरत-प्रनतनिको दै दै अभयपद ओर निबाहैं ।
करि आईं, करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनिपर छाहैं ॥ ९ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भुजाओंका स्मरण करते ही संसारसमुद्र, जो कि बड़ा ही दुर्गम है, सुगम हो जाता है । फिर कोई तो उसे लाँघ जाते हैं और कोई थाहकर पार कर लेते हैं ॥ १ ॥ मानो अति सुन्दर श्यामशरीर-रूप पर्वतसे दो यमुनाजीकी धाराएँ निकली हैं; जो बलरूप अथाह एवं निर्मल जलसे भरी हुई हैं तथा शृंगाररूप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २ ॥ बाण उनकी धाराएँ हैं, धनुष ही किनारा है, आभूषण जलचर जन्तु हैं और घाइयाँ (अँगुलियोंके बीचके सन्धिस्थान) भँवर हैं । विजयकी विरुदावली ही उसमें तरंगरूपसे शोभायमान है तथा उसमें कररूप कमलोंकी शोभा हो रही है ॥ ३ ॥ वे मानो सम्पूर्ण लोकोंके कल्याणरूप भवनके द्वारको दो विशाल और शोभायमान खड़ी लकड़ियाँ (खंभे अर्थात् बाजू) हैं, जो विश्वामित्रजीके यज्ञमें ऋषियोंद्वारा पूजित हुईं तथा जिन्होंने जनकजी, गणेशजी, भगवान् शंकर और

पार्वतीजीसे पूजित होकर सबकी कामनाएँ पूर्ण की हैं ॥ ४ ॥ इन्होंने महादेवजीका धनुष तोड़कर जानकीजीसे विवाह किया, जिससे सब राजा लोग मारे शर्मके बेहाल हो गये तथा जिन्होंने कृपाकी ओर कभी दृष्टिपात भी नहीं किया उन परशुरामजीको भी जिन्होंने महामुनि (मुनीश्वरोंके समान क्षमाशील) बना दिया है ! ॥ ५ ॥ जब राक्षसियोंने सीताजीको वियोगिनी जानकर बहुत-सी अप्रिय बातें कहकर व्यथित किया तो जिन भुजाओंसे इन्होंने शत्रुओंका संहार किया उन्हींसे असुरपत्नियोंके सिर उघाड़कर उनसे पतियोंके लिये जलाञ्जलि दिलवायी ॥ ६ ॥ रावणने तीनों लोकोंको विवश करके लोकपालोंको व्याकुल कर उनसे नाकों चने बिनवाये थे । [उसी रावणके मारे जानेसे] जिन भुजाओंका देवता, नाग और मनुष्यगण अपने-अपने धामोंमें सुखपूर्वक बसकर अपनी पत्नियोंके सहित सुयश गान करते हैं ॥ ७ ॥ जिन भुजाओंकी वेद, पुराण, शेष, शारदा और शुकदेवजी भी स्नेहपूर्वक सराहना करते हैं, जो कल्पलताकी भी श्रेष्ठ कल्पलता तथा कामधेनुकी भी कामधेनु हैं ॥ ८ ॥ तथा जो अपने शरणागत दीन एवं प्रणत पुरुषोंको अभयपद देकर अन्ततक उनका निर्वाह करती हैं—तुलसीदासजी कहते हैं, भगवान्‌की वे ही भुजाएँ अपने दासोंपर सदासे छाया करती आयी हैं, अब भी करती हैं और आगे भी करती रहेंगी ॥ ९ ॥

राग भैरव

[१४]

रामचंद्र-करकंज कामतरु, बामदेव-हितकारी ।
सियसनेह-बर-बेलि-बलित बर प्रेम बंधु बर बारी ॥ १ ॥

मंजुल मंगल-मूल मूल तनु, करज मनोहर साखा।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन-अभिलाषा॥ २॥
अबिचल, अमल, अनामय, अबिरल, ललित, रहित छल छाया।
समन सकल संताप-पाप-रुज-मोह-मान-मद-माया॥ ३॥
सेवहिं सुचि मुनि-भृंग-बिहग मन-मुदित मनोरथ पाए।
सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमगि गुन गाए॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके करकमल भगवान् शंकरका प्रिय करनेवाले कल्पवृक्ष ही हैं। वे सीताजीकी स्नेहरूप ललित लतासे लिपटे हुए तथा लक्ष्मणजीके श्रेष्ठ प्रेमरूप सुन्दर बाड़से घिरे हुए हैं॥१॥ भगवान्‌का महा-मनोहर एवं मंगलमय शरीर ही उसका मूल है, अँगुलियाँ मनोहर शाखाएँ हैं, रोमावली पत्ते हैं, नख पुष्प हैं तथा सत्पुरुषोंकी इच्छापूर्ति ही उसके सब कालमें फलनेवाले सुफल हैं॥२॥ उसकी छाया स्थिर, दोष-रहित, अनामय (दुःखरहित), घनी, अति सुन्दर और छलरहित है। वह सब प्रकारके दुःख, पाप, रोग, मोह, मान, मद और माया आदिको शान्त करनेवाली है॥ ३॥ पवित्रचित्त मुनिजनरूप भौंरे और पक्षी मनमें प्रसन्न होकर अपने मनोरथ सिद्ध करते हुए उसका सेवन करते हैं। उसका स्मरण करनेसे तुलसीदास भी हृदयमें आनन्दित होता है और उसके प्रेममें उमँगकर उसने उसके गुण गाये हैं॥ ४॥

[१५]

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
संकर-हृदय-भगति-भूतलपर प्रेम-अछयबट भ्राजै॥ १॥

स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी ।
जनु रबिसुता-सारदा-सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥ २ ॥
अंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग-बिलासा ।
मज्जहिं सुर-सज्जन, मुनिजन-मन मुदित मनोहर बासा ॥ ३ ॥
बिनु बिराग-जप-जाग-जोग-ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे ।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे ॥ ४ ॥

भगवान् रामके सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मनोहर चरण-कमल मानो साक्षात् तीर्थराज होकर विराजमान हैं । श्रीशंकरके हृदय-की भक्तिरूप भूमिपर प्रेममय अक्षयवट शोभायमान है ॥ १ ॥ चरणोंका पृष्ठभाग श्यामवर्ण है, तलुए अरुण हैं तथा उसमें शुक्लवर्ण नखावली शोभायमान है; मानो यमुना, सरस्वती और गंगाजी—ये तीनों मिलकर सुन्दर त्रिवेणीके रूपमें बह चली हों ॥ २ ॥ तलुओंमें जो अंकुश, वज्र, कमल और ध्वजाके चिह्न हैं वे ही सुन्दर भँवर और तरंगावली हैं । उनमें देवता और साधुजन स्नान करते हैं, तथा वे मुनियोंके सुप्रसन्न चित्तोंके मनोहर निवास-स्थान हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, प्रभुके इस चरणरूप प्रयागमें प्रेम करनेसे वैराग्य, जप, यज्ञ, योग, व्रत, तप और शरीरत्यागके बिना ही सब सुख तत्काल सुलभ हो जाते हैं ॥ ४ ॥

राग बिलावल

[१६]

रघुबर-रूप बिलोकु नेकु, मन ।
सकल-लोक-लोचन-सुखदायक, नखसिख सुभग स्यामसुंदर तन ॥ १ ॥

चारु चरन-तल-चिह्न चारि फल चारि देत परचारि जानि जन ।
राजत नख जनु कमल-दलनिपर अरुन-प्रभा-रंजित तुषार-कन ॥ २ ॥
जंघा-जानु जानु कदली उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन ।
रुचिर निषंग, नाभि, रोमावलि, त्रिबलि बलित उपमा कछु आव न ॥ ३ ॥
भृगुपद-चिह्न, पदिक उर सोभित, मुकुतमाल, कुंकुम-अनुलेपन ।
मनहु परसपर मिलि पंकज-रबि प्रगट्यो निज अनुराग, सुजस घन ॥ ४ ॥
बाहु बिसाल ललित सायक-धनु, कर कंकन-केयूर महाधन ।
बिमल दुकूल दलन दामिनि-दुति, यज्ञोपबीत लसत अति पावन ॥ ५ ॥
कंबुग्रीव, छबिसींव, चिबुक, द्विज, अधर, कपोल, बोल भय-मोचन ।
नासिक सुभग, कृपापरिपूरन तरुन अरुन राजीव बिलोचन ॥ ६ ॥
कुटिल भ्रुकुटिबर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुंदरता स्रवन-बिभूषन ।
मनहु मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चाप-सर-मकर अदूषन ॥ ७ ॥
कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर, जटित ज्योतिमय बहुबिधि मनिगन ।
तुलसिदास रबिकुल-रबि-छबि कबि कहि न सकत सुक-संभु-सहसफन ।८।

अरे मन ! तू तनिक रघुनाथजीका रूप तो देख । यह श्यामसुन्दर शरीर तो सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको सुख देनेवाला और नखसे सिखतक शोभायमान है ॥ १ ॥ इनके चरणतलके [वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल—ये] चारों मनोहर चिह्न अपने भक्तजनोंको जानकर उन्हें आग्रहपूर्वक [अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये] चारों फल देते हैं । प्रभुके नख ऐसे शोभायमान हैं मानो कमलदलोंके ऊपर बालसूर्यकी प्रभासे अनुरञ्जित ओसकी बूँदें पड़ी हुई हों ॥ २ ॥ इनकी जंघा और

जानु कदलीकी याद दिलाती हैं, कमरमें किंकिणी तथा सुहावना पीताम्बर है। इनके सुन्दर तूणीर, नाभि, रोमावली और उदरदेशकी त्रिवलीकी तो कोई उपमा ही नहीं बनती ॥ ३ ॥ इनके वक्षःस्थलमें भृगुजीका चरणचिह्न, पदिक, मोतियोंकी माला और केसरका अनुलेपन ऐसा शोभायमान है मानो सूर्य और कमलने आपसमें मिलकर अपने प्रेम तथा महान् सुयशको प्रकट किया है ॥ ४ ॥ वे अपनी विशाल भुजाओंमें मनोहर धनुष-बाण धारण किये हैं, इनके हाथोंमें महामूल्यवान् कंकण और केयूर हैं तथा इनके शरीरपर बिजलीकी छटाको छीननेवाला निर्मल दुकूल तथा पवित्र यज्ञोपवीत शोभायमान है ॥ ५ ॥ इनकी ग्रीवा शंखके समान है, चिबुक, दन्तावली, अधर और कपोल मानो छबिकी सीमा ही हैं, वचन सब प्रकारके भयको दूर करनेवाले हैं, नासिका बड़ी सुघड़ है तथा नवीन अरुणकमल-से नेत्र कृपासे परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥ इनकी सुन्दर भ्रुकुटियाँ बड़ी बाँकी हैं, माथेपर मनोहर तिलक है तथा कर्णभूषणों (कुण्डलों) की भी बड़ी ही सुन्दरता है। मानो महादेवजीने कामदेवको मारकर चन्द्रमाको उसके निर्दोष धनुष-बाण और मकर दे दिये हैं। [यहाँ भगवान्का मुख चन्द्रमा है, भ्रुकुटियाँ धनुष हैं, तिलक बाण हैं तथा कुण्डल मकर हैं] ॥ ७ ॥ प्रभुके कुञ्चित केश हैं, सिरपर सोनेका मुकुट है जिसमें अनेक प्रकारकी कान्तिमयी मणियाँ जड़ी हुई हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, सूर्यकुलसूर्य भगवान् रामकी छबि, कोई कवि क्या, शुकदेव, महादेव और शेष आदि भी नहीं कह सकते ॥ ८ ॥

राग कान्हरा

[१७]

देखो रघुपति-छबि अतुलित अति।
जनु तिलोक-सुषमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग अंगनि प्रति ॥ १ ॥
पदुमरागरुचि मृदु पदतल धुज-अंकुस-कुलिस-कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनिकी जनु अनुरागभरी अंतरगति ॥ २ ॥
सकल सुचिह्न सुजन-सुखदायक, ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहु भानु-मंडलहि सँवारत धर्‍यो सूत बिधि-सुत बिचित्रमति ॥ ३ ॥
सुभग अँगुष्ठ, अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति।
चरन-पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ गुलुफ, जंघा कदलीजति ॥ ४ ॥
काम-तून-तल-सरिस जानु जुग, ऊरू करि-करभहि बिलखावति।
रसना रचित रतन चामीकर, पीत बसन कटि कसे सरसावति ॥ ५ ॥
नाभी सर, त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल-छबि पावति।
उर मुकुतामनि-माल मनोहर मनहु हंस-अवली उड़ि आवति ॥ ६ ॥
हृदय पदिक, भृगु-चरन-चिह्नबर, बाहु बिसाल जानुलगि पहुँचति।
कल केयूर पूर कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति ॥ ७ ॥
सुजव सुरेख सुनख अंगुलिजुत सुंदर पानि मुद्रिका राजति।
अंगुलित्रान-कमान-बानछबि सुरनि सुखद, असुरनि उर सालति ॥ ८ ॥
स्याम सरीर सुचंदन-चरचित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति।
नील जलदपर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति॥९॥
यज्ञोपबीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका, कंबु-कंठ-सोभा मन मानति ॥१०॥

सरद-समय-सरसीरुह-निंदक मुख-सुषमा कछु कहत न बानति ।
निरखतही नयननि निरुपम सुख, रबिसुत-मदन-सोम-दुति निदरति ११
अरुन अधर, द्विजपाँति अनूपम, ललित हँसनि जनु मन आकरषति ।
बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय बरसति ॥१२॥
मंजुल चिबुक, मनोरम हनुथल, कल कपोल, नासा मन मोहति ।
पंकज-मान-बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति ॥१३॥
केस सुदेस, गँभीर बचन बर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति ।
लखि नव नील पयोद, रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥१४॥
भौंहैं बंक मयंक-अंक-रुचि, कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति ।
सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति ॥१५॥
बरनत रूप पार नहि पावत निगम-सेष-सुक-संकर-भारति ।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै यह मन-बचन-अगोचर मूरति ।१६।

श्रीरघुनाथजीकी अति अतुलित छबि तो देखो, मानो विधाताने इनके एक-एक मनोहर अंगमें तीनों लोकोंकी सुन्दरता एकत्रित करके रख दी हो ॥ १ ॥ भगवान्‌के पद्मरागमणिके समान मनोहर और मृदुल तलुओंमें जो ध्वजा, अंकुश, वज्र और कमलके चिह्न हैं वह मानो चारों प्रकारके भक्तोंकी अनुरागमयी अन्तर्गति ही आकर बस गयी है ॥ २ ॥ यों तो वे सभी चिह्न सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले हैं, परन्तु इनमें भी ऊर्ध्वरेखाकी विशेष शोभा है; मानो विचक्षणबुद्धि विश्वकर्माने सूर्यमण्डलको रचते समय उसे नापनेके लिये सूत रख दिया हो ॥ ३ ॥ भगवान्‌का अँगूठा सुन्दर है, अँगुलियाँ सघन हैं, उनमें कुछ-कुछ अरुणवर्ण नखोंकी ज्योति जगमगा रही है, चरणोंका ऊपरी भाग उठा

हुआ तथा दीनोंकी रक्षा करनेवाला है, टखने गूढ़ (छिपे हुए) हैं तथा जंघाएँ कदलीस्तम्भको जीतनेवाली हैं ॥ ४ ॥ दोनों घुटने कामदेवके तरकसके निम्नभागके समान हैं, ऊरु (जाँघें) हाथीके बच्चेका मान मर्दन करती हैं । कमरमें सुवर्ण और मणियोंकी बनी हुई करधनी तथा उसपर कसा हुआ पीताम्बर सुशोभित हो रहा है ॥ ५ ॥ प्रभुकी नाभि मानो सरोवर है, उदरकी तीन रेखाएँ उसकी सीढ़ियाँ हैं तथा रोमावली शिवालकी छवि पाती है । हृदयमें जो मोतियोंकी मनोहर माला पड़ी हुई है वह मानो [उस नाभि-सरोवरपर] हंसोंकी पंक्तियाँ उड़-उड़कर आ रही हैं ॥ ६ ॥ भगवान्के वक्षःस्थलपर पदिक तथा मनोहर भृगुलताका चिह्न है, उनकी लंबी-लंबी भुजाएँ घुटनोंतक लटकती हैं, उनमें सुवर्ण और मणियोंके सुन्दर बाजूबन्द हैं तथा करकमलोंमें मनोहर पहुँचियाँ शोभायमान हैं ॥ ७ ॥ शुभ यव, शुभ रेखा, सुन्दर नख और मनोहर अँगुलियोंसे युक्त सुन्दर हाथोंमें अँगूठी शोभा पा रही है तथा अङ्गुलित्राण, धनुष और बाणोंकी छवि देवताओंको सुख देती है तथा असुरोंके हृदयमें शूल उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥ मञ्जुल चन्दनचर्चित श्याम शरीरमें पीताम्बर बड़ा ही छबिमय जान पड़ता है, मानो नील मेघपर चन्द्रमाकी चाँदनी देखकर बिजली छिपना छोड़कर (स्थिर हो) दमक रही हो ॥ ९ ॥ गलेमें पवित्र यज्ञोपवीत शोभायमान है, जत्रु (गलेकी धनुषाकार हड्डी) छिपी हुई है, कन्धे स्थूल और विस्तृत हैं, कृकाटिका (घाँटी) सुघड़, पुष्ट एवं उन्नत है तथा शंखसदृश (त्रिरेखायुक्त) गलेकी शोभा मनको प्रिय

जान पड़ती है ॥ १० ॥ शरत्कालीन कमलकुसुमोंकी निन्दा करनेवाली मुखकी मनोहरता कुछ कहनेमें नहीं आती; उसे देखनेसे ही नेत्रोंको अनुपम सुख होता है। वह छवि अश्विनीकुमार, कामदेव और चन्द्रमाकी कान्तिका भी निरादर करती है ॥ ११ ॥ प्रभुके लाल-लाल ओठोंमें अनुपम दन्तावली शोभायमान है, उनकी मनोहर मुसकान मानो मनको खींचे लेती है। ऐसा जान पड़ता है जैसे मूँगेके बने हुए विमानमें चढ़ी हुई देवताओंकी मंडली पुष्पावली बरसा रही हो ॥ १२ ॥ सुन्दर ठोड़ी, मनोहर हनुस्थल (ठोड़ीके नीचेका भाग), तथा सुन्दर कपोल और नासिका—ये सब मनको मोहे लेते हैं। प्रभुके नेत्र कमलका मान मर्दन करनेवाले हैं तथा चितवन अति मनोहर अमृतमय जलकी वर्षा करती है ॥ १३ ॥ उनके सिरपर केश सुशोभित हैं, वचन बड़े ही सुन्दर और गम्भीर हैं तथा कानोंमें कुण्डलोंका हिलना हृदयको प्रफुल्लित करता है; मानो किसी नवीन नील मेघको देखकर और उसका शब्द सुनकर मोरोंकी मनोहर जोड़ी नाच रही हो ॥ १४ ॥ चन्द्रमाके श्याम चिह्नके समान [भगवान्‌के मुखचन्द्रपर] बाँकी भ्रुकुटियाँ और माथेपर कुंकुमकी मनोहर रेखाएँ (तिलक) विराजमान हैं तथा सिरपर हीरे और मणियोंसे जड़े हुए सुवर्णमुकुटकी कान्ति सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करती है ॥ १५ ॥ श्रुति, शेष, शुकदेव, शंकर और सरस्वती आदि भी भगवान्‌के रूपका वर्णन करते-करते उसका पार नहीं पाते; फिर इस मूर्तिका, जो मन और वचनकी विषय नहीं है, तुलसीदास किस प्रकार वर्णन कर सकता है ? ॥ १६ ॥

राम-हिँडोला

राग मलार

[१८]

आली री ! राघोके रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ॥
फटिक-भीति सुचारु चहु दिसि, मंजु मनिमय पौरि ।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर-सुफँसौरि ॥
तोरन-बितान-पताक-चामर-धुज-सुमन-फल-घौरि ।
प्रतिछाँह-छबि कबि-साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं, रि ॥ १ ॥
मदन-जयके खंभ-से रचे खंभ सरल बिसाल ।
पाटीर-पाटि बिचित्र भँवरा बलित, बेलिन लाल ॥
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक-रेख-सी मनसिज-भाल ।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत कोमल माल ॥ २ ॥
उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपाँति, सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि-बिभाग ॥
दादुर मुदित, भरे सरित-सर, महि उमग जनु अनुराग ।
पिक-मोर-मधुप-चकोर-चातक-सोर उपबन बाग ॥ ३ ॥
सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि ।
गुन-रूप-जोबन-सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि ॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि ।
लागीं असीसन राम-सीतहि सुख-समाजु निहारि ॥ ४ ॥
झूलहिं, झुलावहिं, ओसरिन्ह गावैं सुहो, गौंडमलार ।
मंजीर-नूपुर-बलय-धुनि जनु काम-करतल-तार ॥

अति मुचत स्रमकन मुखनि,बिथुरे चिकुर,बिलुलित हार।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम-बिहार ॥ ५ ॥
हिय हरषि,बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि।
आनंद-जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरिपूरि ॥
सब कहहिं,अबिचल राज नित, कल्यान-मंगल भूरि।
चिर जियौ जानकिनाथ जग तुलसी-सजीवनिमूरि ॥ ६ ॥

अरी आली ! रघुनाथजीके मनोहर हिंडोलेमें झूलनेके लिये चलो। उसके चारों ओर स्फटिकमणिकी मनोहर भीतें हैं तथा मणियोंके सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी काँचकी गचें देखकर मन मयूरके समान नाचने लगता है, मानो वह कामदेवका फन्दा ही हो। उस हिंडोलेमें जो बन्दनवार, वितान, पताका, चमर, ध्वजा तथा पुष्प और फलोंकी आकृतियाँ बनायी गयी हैं उनकी परछाँही मानो कविकी साक्षी देकर अपने बिम्बोंसे [जिनके अनुरूप उनकी प्रतिछाया मणि और काँचकी गचमें प्रतिबिम्बित है] कहती हैं कि हम तुमसे बड़ी हैं ॥ १ ॥ उस हिँडोलेमें कामदेवके विजयस्तम्भके समान सीधे और बड़े-बड़े खम्भे बनाये गये हैं। उसमें भ्रमरोंसे घिरी हुई अति विचित्र चन्दनकी पाटी तथा लाल रंगका बेलन है। बेलनमें जो सोनेकी डंडी लगी हुई है वह ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवके माथेपर कुङ्कुमके तिलककी रेखा हो तथा पटुली, मानो रतिके वक्षःस्थलपर पदिक तथा सोनेकी कोमल माला हो ॥ २ ॥ सुखदायक श्रावण मास आरम्भ हो गया है, घन-घोर घटाएँ उमड़ी हुई हैं, जलकी मन्द-मन्द फुहारें पड़ रही हैं, बगुलोंकी पंक्ति और इन्द्रधनुष शोभायमान है, बिजली चमक रही है,

सम्पूर्ण भू-भाग हरे-भरे हो रहे हैं, मेढक बड़े प्रसन्न हैं तथा नदी और तालाबोंमें जल भरा हुआ है; मानो सम्पूर्ण पृथिवीमें प्रेमकी बाढ़ आ रही है। बाग-बगीचोंमें सब ओर कोयल, मोर, भौंरे, चकोर और चातकोंका शोर हो रहा है ॥ ३ ॥ वह सुहावना समय देखकर रूप, गुण और यौवनकी सीमारूप बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ सोलहों शृंगार करके दल बाँधकर चलीं और उस हिँडोलेकी शोभा देख अपने अञ्चल फैला-फैलाकर राम और सीताको—उनका सुख-समाज देखकर—आशीर्वाद देने लगीं ॥ ४ ॥ फिर वे सूहो, गौंडमलार आदि राग गाती हुई बारी-बारीसे झूलने और झुलाने लगीं। उस समय जो मंजीर, नूपुर और कंकणोंकी ध्वनि होती थी वह कामदेवके हाथोंकी ताल-सी जान पड़ती थी। [झूलते समय श्रमकी अधिकताके कारण] उनके मुखपर छाई हुई पसीनोंकी बूँदें, बिखरे हुए बाल और उलझे हुए हार ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्धकार, बिजली, नक्षत्रगण, बालसूर्य और चन्द्रमा आकाशमें विहार कर रहे हों [यहाँ बिखरे हुए बाल अन्धकार हैं, अंगकी गौर-कान्ति बिजली है, पसीनेकी बूँदें नक्षत्रगण हैं, हार बालसूर्य हैं तथा मुख चन्द्रमा है] ॥ ५ ॥ इस समय देवाङ्गनाएँ हृदयमें हर्षित हो, फूलोंकी वर्षा कर [नजर न लग जाय इसलिये] तिनका तोड़ती हुई यह सब लीला देख रही हैं। उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छाये हुए हैं, मन प्रसन्न है तथा सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा है। वे सभी यही कह रही हैं कि यह अत्यन्त कल्याण और मंगलमय राज्य सर्वदा अविचल रहे तथा तुलसीदासके जीवनमूल जानकीनाथ भगवान् राम संसारमें दीर्घजीवी हों ॥ ६ ॥

अयोध्याकी रमणीयता

वर्षा-वर्णन

राग सूहो

[१९]

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजूके तीर ।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥
पुर-नर-नारि चतुर अति, धरमनिपुन, रत नीति ।
सहज सुभाय सकल उर श्रीरघुबर-पद-प्रीति ॥
श्रीरामपद-जलजात सबके प्रीति अबिरल पावनी ।
जो चहत सुक-सनकादि, संभु-बिरंचि, मुनि-मन-भावनी ॥
सबहीके सुंदर मंदिराजिर, राउ रंक न लखि परै ।
नाकेस-दुरलभ भोग लोग करहिं, न मन बिषयनि हरै ॥ १ ॥

सरयूनदीके तटपर अति सुहावनी अयोध्यापुरी है, जहाँके राजा महिपालमण्डली-मुकुटमणि महाराज राम हैं । नगरके सभी स्त्री-पुरुष बड़े चतुर, धर्मकुशल और नीतिपरायण हैं । उन सबके हृदयमें स्वभावसे ही श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें प्रीति है । श्रीरामचन्द्रजीके चरण-सरोरुहमें उन सभीका अविच्छिन्न और पवित्र प्रेम है, जिसकी कि शुक, सनकादि, महादेव और ब्रह्मा आदि भी इच्छा करते हैं और जो मुनियोंके मनको भी प्रिय है । सभीके घर और आँगन बड़े सुन्दर हैं, उनमें राजा-रंककी कोई पहचान ही नहीं होती । जो भोग देवराजको भी दुर्लभ हैं उन्हें वहाँके लोग भोगते हैं, तो भी उनका मन विषयोंके वशीभूत नहीं होता ॥ १ ॥

सब रितु सुखप्रद सो पुरी, पावस अति कमनीय।
निरखत मनहि हरत हठि हरित अवनि रमनीय॥
बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहु ओर।
मधुर गरजि घन बरषहिं, सुनि सुनि बोलत मोर॥
बोलत जो चातक-मोर, कोकिल-कीर, पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकनि कूजत, उड़ात सुहावने॥
बकराजि राजति गगन, हरिधनु, तड़ित दस दिसि सोहहीं।
नभ-नगरकी सोभा अतुल अवलोकि मुनि-मन मोहहीं॥ २॥

वह पुरी यों तो सभी ऋतुओंमें सुखदायिनी है, परन्तु वर्षा ऋतुमें तो वह बड़ी ही सुहावनी जान पड़ती है। उस समय वहाँकी हरी-भरी रमणीय भूमि देखते ही बलात्कारसे चित्तको हर लेती है। चारों ओर बीरबहूटियाँ सुशोभित होती हैं, मेढकोंकी ध्वनि सुनायी देती है तथा मेघ मन्द-मन्द गरजकर वर्षा करते हैं और उनका शब्द सुन-सुनकर मयूर बोलने लगते हैं। उस समय चातक, मोर, कोकिल, शुक और कबूतर आदि बहुत-से पक्षी बोलते रहते हैं तथा बालकोंके पाले हुए अनेकों पक्षी कूजते और सुहावनी उड़ान भरते हैं। आकाशमें बगुलोंकी पंक्ति और इन्द्रधनुष तथा दसों दिशाओंमें बिजली शोभायमान होने लगती है। उस समय आकाश और नगरकी वह अतुलित शोभा देखकर मुनियोंके मन भी मोहित हो जाते हैं॥ २॥

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहू दिसि परदा फटिक पगार॥

सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहु बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥३॥

घर-घरमें हिंडोले, पृथिवीपर काँचका सुन्दर और सुढाल गच तथा चारों दिशाओंमें स्फटिककी भीतोंपर चित्र-विचित्र परदे लटक रहे हैं। मूँगेके सीधे, विशाल और सुदृढ़ खंभ सुशोभित हैं तथा सोनेसे मढ़ी हुई सुन्दर पटलियोंपर मरकतमणिके भौंरे झिलमिला रहे हैं। इस प्रकार हिंडोलोंमें मरकतमणिके भौंरे और सोनेकी मणिजटित डंडियोंकी कान्ति जगमगा रही है और पटली तो ऐसी सुशोभित होती है मानो विधाताने सचमुच ही अपनी रचनाचातुरीको प्रकट करके रक्खा हो। उन हिंडोलोंमें मोतियोंकी लड़ियोंके सहित अनेकों रंग-बिरंगे मनोहर चँदोवे शोभायमान हो रहे हैं तथा उनमें लटकी हुई नवीन पुष्पोंकी मालाओंकी सुगन्धपर लोभित होकर भ्रमरगण मनोहर गुंजार कर रहे हैं॥ ३॥

झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनि बर नारि।
कुसुँभि चीर तनु सोहहीं, भूषन बिबिध सँवारि॥
पिकबयनी मृगलोचनी, सारद ससि सम तुंड।
राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड॥

सारंग, गुंड मलार, सोरठ, सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधरब किंनर लाजहीं॥
अति मचत, छूटत कुटिल कच, छबि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त, भूषन खसत, हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥४॥

[उन हिंडोलोंमें] झुंड-की-झुंड गजगामिनी सुन्दर नारियाँ झूलनेके लिये जा रही हैं। उनके शरीरपर कुसूँबी साड़ी तथा तरह-तरहसे सजाये हुए आभूषण शोभायमान हैं। उनके मुख शरच्चन्द्रके समान हैं, वे कोकिलके समान स्वरवाली मृगनयनी बालाएँ सुन्दर स्वरसे सारंग और गौंड रागमें भगवान् रामका सुयश गान कर रही हैं। इस प्रकार अयोध्याके सुन्दर घरोंमें सारंग, गौंडमलार, सोरठ और सोहा रागोंमें मनोहर बाजे बज रहे हैं। उनकी अनेक प्रकारकी तान-तरंगावली सुनकर गन्धर्व और किन्नर भी लज्जित हो जाते हैं। इस प्रकार खूब झूला मचता है, झूलनेवाली नारियोंकी घुँघराली अलकें बिखर जाती हैं जिससे उन रमणियोंकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। हवा लगनेसे उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसक जाते हैं। इसपर अन्यान्य सखियाँ उन्हें हँस-हँसकर झुलाने लगती हैं॥ ४॥

फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार।
बिबुध-बिमान थकित भए देखत चरित अपार॥
बरषि सुमन हरषहिं उर, बरनहिं हरिगुन-गाथ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ'॥
जय जानकीपति, बिसद कीरति सकल-लोक-मलापहा।
सुरबधू देहिं असीस, चिरजिव राम, सुख-संपति महा॥

पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं ।
रघुबीरके गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं ।।५।।

सब सखियाँ अपनी-अपनी बारीसे पुनः-पुनः झूलती हैं । इस अपार चरितको देवताओंके विमान थकित होकर देख रहे हैं । वे पुष्प बरसाकर, हृदयमें हर्षित हो श्रीहरिकी गुणगाथाका बखान करते हैं और 'जानकीनाथकी जय हो, जय हो' ऐसा कहते हुए बारंबार प्रभुकी प्रशंसा करते हैं । 'जानकीनाथकी जय हो; उनकी विशद कीर्ति सम्पूर्ण कलिकलमषोंको नष्ट करनेवाली है ।' इस प्रकार देवांगनाएँ भी 'भगवान् राम चिरजीवी हों और उनका सुख और वैभव बढ़ता रहे' ऐसा कहती हुई उन्हें आशीर्वाद देती हैं । मैंने वर्षाकालीन अयोध्याका कुछ वर्णन किया है; उसे सुननेसे सब पापसमूह नष्ट हो जाते हैं । रघुनाथजीके नित्य-नूतन गुणगणको तुलसीदास सदा ही गाता रहता है ॥ ५ ॥

दीपमालिका

राग आसावरी

[२०]

साँझ समय रघुबीर-पुरीकी सोभा आजु बनी ।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनी ।। १ ।।
फटिक-भीत-सिखरनपर राजति कंचन-दीप-अनी ।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी ।। २ ।।
प्रति मंदिर कलसनिपर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी ।
मानहु प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिये अवनी ।। ३ ।।

घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक-गनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी ॥ ४ ॥

आज सायंकालमें रघुनाथजीकी राजधानीकी खूब शोभा हो रही है। अयोध्यानाथ रामचन्द्रजी प्रीतिपूर्वक मनोहर दीपमालिका देख रहे हैं ॥ १ ॥ स्फटिकमणिकी भीतोंके ऊपर सुवर्णमय दीपकोंकी पंक्ति ऐसी शोभायमान है मानो [रघुनाथजीसे] मिलनेके लिये मणिविभूषित सहस्रफणधारी शेषजी आये हों ॥ २ ॥ प्रत्येक महलके कलशोंके ऊपर मणिगण अपनी कान्तिसे इस प्रकार शोभा पा रहे हैं मानो स्पष्ट ही पृथिवीपर बहुत-से मंगललोक भेज दिये हों ॥ ३ ॥ घर-घरमें मंगलाचार हो रहा है तथा निर्धन और धनी सभी एक समान आनन्दित हैं। तुलसीदास भगवान्की पवित्र कीर्ति गाता है, जो कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली है ॥ ४ ॥

वसन्त-विहार

राग गौरी

[२१]

अवध नगर अति सुंदर बर सरिताके तीर।
नीति-निपुन नर-तिय सबहिं, धरम-धुरंधर, धीर ॥ १ ॥
सकल रितुन्ह सुखदायक, तामहँ अधिक बसंत।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत ॥ २ ॥
बन उपबन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग, पिकबर, गुंजत भृंग ॥ ३ ॥

समय बिचारि कृपानिधि, देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारि-नर, बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥ ४ ॥
नगर-नारि-नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु ॥ ५ ॥
स्याम-तमाल-जलदतनु निरमल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल ॥ ६ ॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल ॥ ७ ॥
कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज-मोति ॥ ८ ॥
बर दर-ग्रीव, अमितबल बाहु सुपीन, बिसाल।
कंकन-हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल ॥ ९ ॥
उर भृगु-चरन बिराजत, द्विज-प्रिय चरित पुनीत।
भगत हेतु नर-बिग्रह सुरबर गुन-गोतीत ॥१०॥
उदर त्रिरेख मनोहर, सुंदर नाभि गँभीर।
हाटक-घटित, जटित मनि कटितट रट मंजीर ॥११॥
उरु अरु जानु पीन, मृदु, मरकत खंभ समान।
नूपुर मुनि-मन मोहत, करत सुकोमल गान ॥१२॥
अरुनबरन पदपंकज, नखदुति इंदु-प्रकास।
जनकसुता-करपल्लव-लालित बिपुल बिलास ॥१३॥
कंज-कुलिस-धुज-अंकुस-रेख चरन सुभ चारि।
जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि ॥१४॥

अंग अंग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ।
एहि सुख मगन होइ मन फिरि नहि अनत लोभाइ ॥१५॥
खेलत फागु अवधपति, अनुज-सखा सब संग।
बरषि सुमन सुर निरखहिं सोभा अमित अनंग ॥१६॥
ताल, मृदंग, झाँझ, डफ बाजहिं पनव-निसान।
सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥१७॥
बीना-बेनु-मधुर-धुनि सुनि किंनर-गंधर्ब।
निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्ब ॥१८॥
निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि।
मनहु हिमालय सिखरनि लसहिं अमर-मृगनैनि ॥१९॥
धवल धामते निकसहिं जहँ तहँ नारि-बरूथ।
मानहु मथत पयोनिधि बिपुल अपसरा-जूथ ॥२०॥
किंसुकबरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत।
जनु बिधु-निबह रहे करि दामिनि-निकर निकेत ॥२१॥
कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर बर नारि।
रितु सुभाय सुठि सोभित देहिं बिबिध बिधि गारि ॥२२॥
जो सुख जोग, जाग, जप, अरु तीरथतें दूरि।
राम-कृपातें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि ॥२३॥
खेलि बसंत कियो प्रभु मज्जन सरजूनीर।
बिबिध भाँति जाचक जन पाए भूषन-चीर ॥२४॥
तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भगति अनूप।
मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥२५॥

श्रेष्ठ नदी सरयूके तटपर बसा हुआ अयोध्या नगर बड़ा ही सुन्दर है। वहाँके सभी स्त्री-पुरुष नीति-निपुण, धर्मधुरन्धर और धैर्यशाली हैं ॥ १ ॥ यों तो वह नगर जहाँ नृपतिशिरोमणि जानकीनाथ भगवान् राम निवास करते हैं सभी ऋतुओंमें सुखदायक है, किन्तु वसन्त ऋतुमें उसकी शोभा अधिक बढ़ जाती है ॥ २ ॥ वहाँके वन और उपवनोंमें नवीन पत्ते और कई रंगके पुष्प खिले हुए हैं, चहचहाते हुए पक्षी और सुन्दर कोकिल सुमधुर बोली बोल रहे हैं तथा भौंरे गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ कृपानिधान भगवान् रामने अनुकूल समय समझकर और द्वारपर बहुत भीड़ लगी देखकर हँसते हुए कहा, 'सब स्त्री-पुरुष प्रसन्नतापूर्वक होली खेलो' ॥ ४ ॥ यह सुनकर नगरके सब नर-नारी प्रसन्न होकर फाग खेलने चले। उस समय महाराज रामकी अनुपम छबि देखकर उनके हृदयमें अपार प्रेम उमड़ने लगा ॥ ५ ॥ भगवान् रामका शरीर श्याम तमाल अथवा श्याम मेघके समान शोभायमान है। उसपर अति निर्मल पीताम्बर है। उनके नेत्र अरुण कमलदलके समान हैं और वे सदा ही अपने सेवकोंपर कृपादृष्टि रखते हैं ॥ ६ ॥ प्रभुके सिरपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और मनोहर मस्तकपर तिलक सुशोभित है। उनकी अलकावली कुञ्चित, भ्रुकुटि बाँकी और चितवन भक्तोंपर कृपा करने-वाली है ॥ ७ ॥ उनके कपोल बड़े सुन्दर हैं, नासिका तोतेकी चोंचके समान है, तथा मनोहर ओठोंके बीचमें दाँतोंकी ज्योति इस प्रकार जगमगा रही है मानो अरुण कमलके बीचमें गजमुक्ताओंकी दो मनोहर पंक्तियाँ हों ॥ ८ ॥ भगवान्की शंखके समान सुन्दर ग्रीवा है, तथा उनकी स्थूल और लंबी-लंबी भुजाओंमें अपार बल है। प्रभु मनोहर

कंकण और हार धारण किये हुए हैं तथा उनके वक्षःस्थलमें वनमाला विराज रही है ॥ ९ ॥ भगवान् ब्राह्मणप्रिय और पवित्रचरित्र हैं। उनके वक्षःस्थलमें भृगुलताका चिह्न सुशोभित है। वे गुण और इन्द्रियोंसे अतीत देवश्रेष्ठ अपने भक्तोंके लिये ही मनुष्यशरीर धारण करते हैं ॥ १० ॥ प्रभुके उदरदेशमें मनोहर त्रिवली और अति सुन्दर गम्भीर नाभि है। उनके कटिप्रदेशमें सोनेकी बनी हुई मणिजटित करधनी मनोहर शब्द कर रही है ॥ ११ ॥ उनके जंघा और जानु मरकतमणिके खम्भोंके समान स्थूल और मृदुल (चिकने) हैं तथा सुमधुर ध्वनि करते हुए नूपुर मुनियोंका मन मोह लेते हैं ॥ १२ ॥ प्रभुके चरणकमल अरुणवर्ण हैं, उनके नखोंकी कान्ति चन्द्रमाके प्रकाशके समान है तथा वे श्रीजनकनन्दिनीके पाणिपल्लवोंद्वारा बड़ी विलासितासे लालित हो रहे हैं ॥ १३ ॥ उन चरणोंमें जो कमल, वज्र, ध्वजा और अंकुशकी चार शुभ रेखाएँ हैं वे मानो भक्तोंके मनरूप मत्स्योंको पकड़नेके लिये सँवारकर बनायी हुई बंसी (मछली पकड़नेका काँटा) ही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार प्रभुके अंग-अंगकी अतुलित शोभा है; उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मन इस सुखमें मग्न हो जानेपर फिर दूसरी जगह नहीं फँसता ॥ १५ ॥ जिस समय अयोध्यापति भगवान् राम अपने छोटे भाई और सखाओंके साथ फाग खेलते हैं उस समय देवता लोग फूलोंकी वर्षा करते हुए उनकी अनन्त कामदेवोंके समान शोभाको निहारते हैं ॥ १६ ॥ उस समय [नगरनिवासी] करताल, मृदंग, झाँझ, डफ, ढोल और दुन्दुभी आदि बाजे बजाते हैं तथा सुन्दर और सरस सहनाइयोंपर समयानुकूल गाना गाते हैं ॥ १७ ॥

वीणा और बाँसुरीकी सुमधुर ध्वनि सुनकर किन्नर और गन्धर्वगण अपने वड़े गुणको भी, अभिमान छोड़कर मन-ही-मन अत्यन्त तुच्छ मानने लगते हैं ॥ १८ ॥ कोकिलभाषिणी कामिनियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मनोहर गान कर रही हैं, मानो हिमालयके शिखरोंपर सुरसुन्दरियाँ विराजमान हों ॥ १९ ॥ जहाँ-तहाँ अपने-अपने उज्ज्वल भवनोंसे स्त्रियोंके झुंड निकलते हैं मानो बहुत-सी अप्सराएँ मिलकर समुद्र मन्थन कर रही हों ॥ २० ॥ वे सुन्दरता और आनन्दसहित वसन्ती साड़ी ओढ़े ऐसी जान पड़ती हैं मानो चन्द्रमाओं-के समूह बिजलियोंके घरोंमें वसे हुए हों ॥ २१ ॥ वे सुचतुर सुन्दरी स्त्रियाँ अबीर घोलकर कुंकुमोंमें भरती हैं तथा ऋतुके स्वभावानुसार तरह-तरहकी पवित्र और सुन्दर गालियाँ देती हैं ॥ २२ ॥ जो सुख योग, यज्ञ, जप और तीर्थ आदिसे परे है वही श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अयोध्याकी गलियोंमें भरा हुआ है ॥ २३ ॥ इस प्रकार फाग खेलनेके अनन्तर भगवान्‌ने सरयू नदीके जलमें स्नान किया। तदनन्तर याचकोंको तरह-तरहके वस्त्र और आभूषण प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ उसी समय तुलसीदासने प्रभुकी अनुपम भक्ति माँगी, तब श्रीरघुनाथजीने मृदुल मुसकान करते हुए कृपादृष्टिपूर्वक वह दे दी ॥ २५ ॥

राग वसंत

[२२]

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर-समाज ॥ १ ॥
सोहैं सखा-अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ॥ २ ॥

बाजहिं मृदंग, डफ, ताल, बेनु। छिरकैं सुगंध भरे मलय-रेनु ॥ ३ ॥
उत जुवति-जूथ जानकी संग। पहिरे पटभूषन सरस रंग ॥ ४ ॥
लिए छरी बेंत सोधैं बिभाग। चाँचरि झूमक कहैं सरस राग ॥ ५ ॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ। ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ ॥६॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाड़हिं नचाइ, हाहा कराइ ॥ ७ ॥
चढ़े खरनि बिदूषक-स्वाँग साजि। करैं कूटि, निपट गई लाज भाजि ॥८॥
नर-नारि परसपर गारि देत। सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥ ९ ॥
बरषत प्रसून बर-बिबुध-बृंद। जय जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद ।१०।
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध-बास। गावत कल कीरति तुलसिदास ॥ ११ ॥

राजाधिराज भगवान् राम फाग खेल रहे हैं; आकाशमें देवता लोग यह कौतुक देख रहे हैं ॥ १ ॥ रघुनाथजीके साथ उनके सखा और छोटे भाई शोभायमान हैं। उनकी झोलियोंमें अबीर है और हाथोंमें पिचकारियाँ ॥ २ ॥ इस समय मृदंग, डफ, करताल और बाँसुरी आदि बाजे बज रहे हैं तथा चन्दनकी रजसे मिला हुआ सुगन्धित जल छिड़का जा रहा है ॥ ३ ॥ उधर जानकीजीके साथ रंग-बिरंगे वस्त्र और आभूषण पहने युवतियोंका झुंड हाथमें बेतकी छड़ी लिये रास्ता खोजता है और अत्यन्त सरस चाँचर और झूमक राग गा रहा है ॥ ४-५ ॥ जब वे स्त्रियाँ दौड़कर किसीको पकड़ती हैं तो उनके नूपुर और करधनीकी ध्वनि बड़ी ही मनोहर जान पड़ती है ॥ ६ ॥ वे जिसे पकड़ती हैं उसके नेत्रोंमें अञ्जन लगा देती हैं तथा उससे फगुआ मनाकर और नाच नचाकर बहुत प्रार्थना करनेपर छोड़ती हैं ॥ ७ ॥

बहुत-से लोग मसखरेका स्वाँग रचकर गधोंपर चढ़े हुए हैं। वे तरह-तरहकी कूटोक्तियाँ बोलते हैं; इस समय उनकी लज्जा बिल्कुल चली गयी है॥ ८॥ स्त्री-पुरुष आपसमें गालियाँ देते हैं; उन्हें सुन-सुनकर श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंके सहित हँसते हैं॥ ९॥ 'सूर्यकुल-कुमुद-कलाधर भगवान् रामकी जय हो, जय हो' ऐसा कहते हुए देवता लोग फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं॥१०॥ अयोध्याके निवासकी ब्रह्मादिक भी प्रशंसा कर रहे हैं। तुलसीदास भी प्रभुकी पवित्र कीर्तिका गान करता है॥ ११॥

अयोध्याका आनन्द

राग केदारा

[२३]

देखत अवधको आनंद।
हरषि बरषत सुमन दिन दिन देवतनिको बृंद॥ १॥
नगर-रचना सिखनको बिधि तकत बहु बिधिबंद।
निपट लागत अगम, ज्यों जलचरहि गमन सुछंद॥ २॥
मुदित पुरलोगनि सराहत निरखि सुखमाकंद।
जिन्हके सुअलि-चख पियत राम-मुखारबिंद-मरंद॥ ३॥
मध्य ब्योम बिलंबि चलत दिनेस-उडुगन-चंद।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद॥ ४॥

अयोध्याका आनन्द देखकर देवता लोग हृदयमें हर्षित हो नित्य-प्रति फूलोंकी वर्षा करते हैं॥ १॥ नगरकी रचना सीखनेके लिये ब्रह्माजी उसके तरह-तरहके भेद देखते हैं; परन्तु उन्हें यह इस प्रकार अत्यन्त

दुर्गम जान पड़ती है जैसे जलचरको पृथिवीपर स्वच्छन्द विचरना * ॥ २ ॥ जिनके नेत्ररूप भौंरे सुखमाकंद भगवान् रामको निहारकर उनके मुखकमलका मकरन्द पान करते हैं उन अयोध्यावासियोंकी वे प्रसन्नतापूर्वक सराहना करते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, भगवान् रामकी पुरीको देखनेसे सारे दुःख और द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं; अतः सूर्य, तारे और चन्द्रमा भी [उसे देखनेके लिये] मध्य आकाशमें कुछ ठहरकर चलते हैं ॥ ४ ॥

राम-राज्य

राग सोरठ

[२४]

पालत राज यों राजा राम धरमधुरीन ।
सावधान, सुजान, सब दिन रहत नय-लयलीन ॥ १ ॥
स्वान-खग-जति-न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन ।
नीचु हति महिदेव-बालक कियो मीचुबिहीन ॥ २ ॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन ।
सकल चाहत रामही, ज्यों जल अगाधहि मीन ॥ ३ ॥
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन ।
लेहु निज करि, देहु निज-पद-प्रेम पावन पीन ॥ ४ ॥

इस प्रकार धर्मधुरन्धर महाराज राम अपने राज्यका पालन करते हैं। वे परम सुजान सर्वदा सावधान रहकर नीतिमें तत्पर रहते

* क्योंकि ब्रह्माजी मायिक सृष्टिके अधिकारी हैं और यह दिव्य रचना है।

हैं ॥ १ ॥ प्रवीण रामचन्द्रजीने श्वान, पक्षी और यतिका न्याय स्वयं बैठकर देखा। तथा शूद्रको मारकर ब्राह्मणके बालकको जीवनदान दिया ॥ २ ॥ भरतजीके समान सारा संसार ही भगवान्से अहैतुक और नित्यनूतन प्रेम करता था। मछली जिस प्रकार अगाध जलको ही चाहती है उसी प्रकार सभी लोग रामचन्द्रजीको ही चाहते थे ॥ ३ ॥ भगवान्के राजसमाजका वर्णन करके दीन तुलसीदास भी यही माँगता है कि मुझे अपनाकर अपने चरणोंका परम पवित्र और सुदृढ़ प्रेम दीजिये ॥ ४ ॥

सीता-बनवास

[२५]

संकट सुकृतको सोचत जानि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंचसतमें कछुक है अब आउ ॥ १ ॥
भोग पुनि पितु-आयुको, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहि और अनघ उपाउ ॥ २ ॥
पालिबे असिधार-ब्रत, प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुबिचारु, नहि चित चाउ ॥ ३ ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख-मनोहरताउ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरष-बिसमय काउ ? ॥ ४ ॥
अनुज-सेवक-सचिव हैं सब सुमति, साध सखाउ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ॥ ५ ॥
राम जोगवत सीय-मनु, प्रिय-मनहि प्रानप्रियाउ।
परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ ॥ ६ ॥

एक समय श्रीरघुनाथजी धर्मसंकट उपस्थित होनेपर मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—'अब मेरी बारह हजार पाँचसौ वर्षकी आयुमें कुछ ही और शेष है ॥ १ ॥ उसके पश्चात् पिताकी आयुका भोग है, और उसे भोगनेसे ही काम चलेगा; किन्तु उसे भोगनेके लिये सीताजीको त्यागे बिना और कोई निर्दोष उपाय नहीं है' * ॥ २ ॥ अब खाँड़ेकी धारके समान कठोर व्रतका तो पालन करना है, और प्रेमको निभानेका भगवान्‌का प्रिय स्वभाव है। ऐसी अवस्थामें किस प्रकार हित हो—इस सतत विचारके कारण उनके चित्तमें प्रसन्नताका अभाव हो गया ॥ ३ ॥ किन्तु ऐसे असमंजसके समय भी मुखपर मनोहरता छायी हुई थी। भला परम धीरधुरन्धर भगवान् रामके हृदयमें भी कभी हर्ष या विषाद हो सकता था ? ॥ ४ ॥ छोटे भाई, सेवक, मन्त्री और मित्रगण—ये सभी बड़े बुद्धिमान् और साधुचरित हैं; परन्तु भगवान्‌की इस दुर्गम और अदृश्य गतिको जानकीजीके सिवा और कोई नहीं जानता था ॥ ५ ॥ क्योंकि भगवान् राम सीताजीके मनको देखते रहते हैं और प्राणप्रिया सीताजी भी अपने प्रियतमका मन देखती रहती हैं। तुलसीदास भी इस परम पवित्र प्रेमकी मर्यादाको समझकर इसका गान करते हैं ॥ ६ ॥

[२६]

राम बिचारि कै राखी ठीक दै मन माहिं।
लोक-बेद-सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं ॥ १ ॥

---

* महाराज दशरथ अपनी अवस्था पूरी होनेसे पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये थे। अतः उनकी शेष आयु श्रीरामचन्द्रजीने भोगी। परन्तु पिताकी आयुमें सीताजीको साथ रखना उन्हें अनुचित जान पड़ा। इसलिये उन्होंने उनका परित्याग कर दिया।

प्रियतमा, पति-देवता, जिहि उमा रमा सिहाहिं।
गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं ॥ २ ॥
मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहू नाहिं।
गेहिनी गुन-गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥ ३ ॥
राम-सीय-सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम-कृपाहिं ॥ ४ ॥

अन्तमें रामचन्द्रजीने बहुत सोच-विचारकर मन-ही-मन उन्हें त्याग देना निश्चित कर लिया। अब परम कृपालु रघुनाथजीके सभी क्षण लौकिक-वैदिक स्नेहका पालन करनेमें बीतने लगे ॥ १ ॥ सीताजी मुझे परम प्रिय हैं, उनके अलौकिक पातिव्रतको देखकर पार्वती और लक्ष्मीजी भी ईर्ष्या करती हैं, तथा इस समय वे गर्भवती हैं तथा परम सुकुमारी नारीरत्न हैं, यह विचारकर प्रभु उन्हें त्यागनेमें सकुचाते हैं ॥ २ ॥ 'सीताजी मेरे ही सुखमें सुखी रहती हैं, इन्हें अपने सुखका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं है' इस प्रकार अपनी गुणखानि गृहिणीके गुणोंको याद कर-करके वे सोचमें डूब जाते हैं ॥ ३ ॥ श्रीराम और सीताजीके अगम स्नेहका वर्णन करनेमें बड़े-बड़े कवि भी शंकित हो जाते हैं। तुलसीदास तो श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे ही राम और सीताके गूढ रहस्यका वर्णन करता है ॥ ४ ॥

[२७]

चरचा चरनिसों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥ १ ॥
प्रिया निज अभिलाष-रुचि कहि, कहति सिय सकुचाइ।
तीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥ २ ॥

जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ॥ ३ ॥
'तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ' ॥ ४ ॥
'भलेहि नाथ,' सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक-धरम अवधि अघाइ ॥ ५ ॥

चतुरशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरोंद्वारा की हुई चर्चाको दूतोंके मुखसे सुनकर और लोकमतको जानकर अपने महलमें आ श्रीसीताजीसे पूछा—॥ १ ॥ 'प्राणप्रिये ! तुम अपनी अभीष्ट रुचि बतलाओ।' तब सीताजीने सकुचाकर कहा—'मैं वनमें जाकर स्त्री और बालकोंके सहित तपस्वियोंका पूजन करना चाहती हूँ' ॥ २ ॥ तब करुणासागर भगवान् रामने होनहारके वश सारी सहायता उपस्थित देख, धैर्य धारणकर सबेरा होते ही लक्ष्मणजीको बुलाया ॥ ३ ॥ और कहा—'भैया ! तुम इसी समय रथ सजाकर उसपर सीताजीको बिठा वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर पहुँचा आओ' ॥ ४ ॥ तब 'प्रभो ! बहुत अच्छा' इस प्रकार कह अपने हाथोंसे भगवान् रामकी आज्ञा सिरपर धारणकर वे सेवकधर्मका पूर्णतया पालन करते हुए वहाँसे चल दिये ॥ ५ ॥

[२८]

आइ लषन लै सौंपी सिय मुनीसहि आनि।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ॥ १ ॥

बालमीकि बिलोकि ब्याकुल लषन गरत गलानि ।
सरबबिद बूझत न, बिधिकी बामता पहिचानि ॥ २ ॥
जानि जिय अनुमानही सिय सहस बिधि सनमानि ।
राम सदगुन-धाम-परमिति भई कछुक मलानि ॥ ३ ॥
दीनबंधु दयालु देवर देखि अति अकुलानि ।
कहति बचन उदास तुलसीदास त्रिभुवन-रानि ॥ ४ ॥

तब लक्ष्मणजीने सीताजीको लाकर मुनिवर वाल्मीकिको सौंप दिया, और सिर नवा उनका आशीर्वाद पा करकमल जोड़े खड़े रहे ॥ १ ॥ लक्ष्मणजीको व्याकुल और ग्लानिसे गलते देख सर्वज्ञ वाल्मीकिजीने विधाताको वाम जानकर उनसे कुछ भी नहीं पूछा ॥ २ ॥ उन्होंने अपने मन-ही-मन अनुमानसे सारी बातें जानकर सीताजीका सहस्रों प्रकार सम्मान किया; किन्तु [यह विचारकर कि] राम तो सम्पूर्ण सद्गुणोंके आश्रय और उनकी सीमा हैं [उन्होंने यह क्या किया ?] उन्हें कुछ खेद भी हुआ ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, त्रिलोकीकी रानी सीताजी अपने दीनबन्धु और दयामय देवरको देखकर बड़ी व्याकुल हो गयीं और उदास होकर ये वचन कहने लगीं ॥ ४ ॥

[२९]

तौलों बलि, आपुही कीबी बिनय समुझि सुधारि ।
जौलों हौं सिखि लेउँ बन रिषि-रीति बसि दिन चारि ॥ १ ॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनिको मनुहारि ।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥ २ ॥

लषनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि ।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ॥ ३ ॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि ।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥ ४ ॥

[सीताजी बोलीं—] 'जबतक मैं चार दिन वनमें रहकर तपस्वियों-की रीति न सीख लूँ [तबतक आप यहीं रहिये; यदि इससे रघुनाथजी कुछ असन्तुष्ट हों तो] आप ही उन्हें विनय करके समझा-बुझाकर ठीक कर लेना ॥ १ ॥ देखो, इसी तरह अबकी बार कोई हितैषी साधु* फिर उसी प्रकार (लङ्कामें अग्नि-परीक्षाकी भाँति) आकर कहेगा कि जो राजाओंके चित्तको भी चुरानेवाली है उस परम सुकुमारीको तुम तपस्विनी बनाकर क्या भेजते हो ॥ २ ॥ हे कृपामय लषणलाल ! तुम मुझे एकाएकी भूल मत जाना और अपना राजधर्म समझकर सब तपस्विनियोंके समान मेरा भी पालन करते रहना' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, सीताजीके ये वचन सुनकर सब लोग नेत्रोंसे जल बरसाने लगे । [औरोंकी तो बात ही क्या,] वाल्मीकिजी भी उस स्नेहके कारण अपनेको न सँभाल सके ॥ ४ ॥

[३०]

सुनि ब्याकुल भए, उतरु कछु कह्यो न जाइ ।
जानि जिय बिधि बाम दीन्हों मोहि सरुष सजाइ ॥ १ ॥

---

* आगे चलकर श्रीरामके प्रति सीताजीकी निर्दोषता प्रमाणित हुई है, उसी भविष्य लीलाको लक्ष्यमें रखकर यह बात कही गयी है ।

कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ ।
आजु अवसर ऐसेहू जौं न चले प्रान बजाइ ॥ २ ॥
इतहि सीय-सनेह-संकट उतहि राम-रजाइ ।
मौनही गहि चरन गौने सिख-सुआसिष पाइ ॥ ३ ॥
प्रेम-निधि पितुको कहे मैं परुष बचन अघाइ ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ ॥ ४ ॥

ये सब बातें सुनकर लक्ष्मणजी व्याकुल हो गये, उनसे कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया; मनमें समझ लिया कि वाम विधाताने कुपित होकर मुझे सजा दी है ॥ १ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—'अहो ! मेरी कठोरता देखकर प्रीति भी लज्जित हो गयी, जो आज ऐसे अवसरपर भी मेरे प्राणोंने कूच नहीं किया'॥ २ ॥ इधर तो उन्हें सीताजीके प्रेमका आकर्षण था और उधर भगवान् रामकी आज्ञाका विचार था । अन्तमें वे चुपचाप ही सीताजीके चरण छू उनसे आशीर्वाद और शिक्षा ग्रहणकर वहाँसे चल दिये ॥३॥ [वे सोचने लगे—] 'मैंने अपने प्रेमनिधि पिताजीको भरपेट कठोर वचन कहे थे उस पापके कारण ही आज यह उचित दुःख सहन करना पड़ा जो सहकर ही चुकेगा' ॥ ४ ॥

[३१]

गौने मौनही बारहि बार परि परि पाय ।
जात जनु रथ चीर कर लछिमन मगन पछिताय ॥ १ ॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय ।
दुसह साँसति सहनको हनुमान ज्यायो जाय ॥ २ ॥

हेतु हौं सियहरनको तब, अबहु भयो सहाय ।
होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन दाय ॥ ३ ॥
तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय ।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यों अवध सुभाय ॥ ४ ॥
घोरहृदय कठोरकरतब सृज्यो हौं बिधि बायँ ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥ ५ ॥

फिर बारंबार चरणोंमें गिर लक्ष्मणजी चुपचाप ही चल दिये । वे पश्चात्तापमें ऐसे डूबे हुए थे मानो रथमें वस्त्रके पुतले ही हैं ॥ १ ॥ [वे मन-ही-मन सोचते थे—] 'हाय ! मैं वनमें बिना भोजनके ही जीवित रहा, युद्धक्षेत्रमें कवच न रहनेपर भी कुछ न बिगड़ा; शक्ति लगते समय भी बच गया, उस समय इस दुःसह दुःखको सहन करनेके लिये मुझे हनुमान्‌जीने ओषधि लाकर जीवित कर दिया ॥ २ ॥ मैं ही सीताहरणका कारण था और अब मैं ही उनके वनवासका हेतु हुआ । हे विधाता ! मेरा दाहिना दिन भी हठ करके तेरा कठोर दाँव ही हो जाता है ! [इसीसे भगवदाज्ञापालन-रूप अनुकूल कर्म करते हुए भी मुझसे सीतावनवास-जैसा कठोर कर्म बन गया] ॥ ३ ॥ अहो ! जिनके लिये यशस्वी जटायुने संग्रामभूमिमें अपना शरीर त्याग दिया उन्हीं सीताजीको मैं वनमें पहुँचाकर स्वभावसे ही अयोध्यापुरीको जा रहा हूँ ॥ ४ ॥ मालूम होता है, वाम विधाताने मुझे कठोर कर्त्तव्य करनेके लिये कुटिलहृदय ही रचा है और इस बातको कृपानिधि श्रीरामचन्द्रजी जानते हैं [इसीलिये ऐसे कठोर कार्योंके लिये वे मुझे ही आज्ञा दिया करते हैं]' ॥ ५ ॥

[३२]

पुत्रि ! न सोचिए आई हौं जनक-गृह जिय जानि ।
कालिही कल्यान-कौतुक, कुसल तव, कल्यानि ॥ १ ॥
राजरिषि पितु-ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगलखानि ।
ऐसेहू थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि ॥ २ ॥
बोलि मुनि कन्या सिखाई प्रीति-गति पहिचानि ।
आलसिन्हकी देवसरि सिय सेइयहु मन मानि ॥ ३ ॥
न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत-दानि ।
सुवन-लाहु, उछाहु दिन दिन, देबि, अनहित-हानि ॥ ४ ॥
पाप-ताप-बिमोचनी कहि कथा सरस पुरानि ।
बालमीकि प्रबोधि तुलसी, गई गरुइ गलानि ॥ ५ ॥

[वाल्मीकिजी कहते हैं—] 'पुत्रि ! तू मनमें यह समझकर कि मैं अपने पिताके घर आयी हुई हूँ किसी प्रकारका शोक न कर । हे कल्याणि ! तुझे कल (शीघ्र) ही आनन्द-मङ्गल प्राप्त होनेवाला है ॥ १ ॥ तेरे पिता और ससुर दोनों ही राजर्षि हैं, साक्षात् भगवान् पति हैं और तू भी सम्पूर्ण मङ्गलोंकी खानि है—ऐसे स्थलमें भी विपरीति गति देखी जाती है, इससे मालूम होता है विधाताका स्वभाव बड़ा ही टेढ़ा है' ॥ २ ॥ फिर वाल्मीकिजीने प्रीतिकी गति जानकर सीताजीको बुलाया और उन्हें अपनी कन्या मानकर यह शिक्षा दी—'हे सीते ! तुम आलसियों-को शुभ गति देनेवाली गंगाजीकी मन लगाकर सेवा करना ॥ ३ ॥ प्रातःकाल ही स्नान करके इच्छित फल देनेवाले वटवृक्षका पूजन करना । हे देवि ! इससे तुम्हें पुत्रोंकी प्राप्ति होगी, दिन-दिन चित्तमें

उत्साह बढ़ेगा और अहितकी हानि होगी' ॥ ४ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, फिर वाल्मीकिजीने पाप और तापको दूर करनेवाली बहुत-सी सरस और पुरानी कथाएँ कहकर सीताजीको सान्त्वना दी। इससे उनका भारी दुःख दूर हो गया ॥ ५ ॥

[३३]

जबतें जानकी रही रुचिर आस्रम आइ।
गगन, जल, थल बिमल तबतें, सकल मंगलदाइ ॥ १ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत, फलत अति अधिकाइ।
कंद-मूल, अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥ २ ॥
मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ।
मुदित-मन मृग-बिहग बिहरत बिषम बैर बिहाइ ॥ ३ ॥
रहत रबि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ ॥ ४ ॥
मोद बिपिन बिनोद चितवत लेत चितहि चोराइ।
राम बिनु सिय सुखद बन, तुलसी कहै किमि गाइ ॥ ५ ॥

जबसे जानकीजीने उस सुन्दर आश्रमपर आकर निवास किया है तबसे आकाश, जल और पृथिवी—सभी निर्मल और सब प्रकारके मंगल देनेवाले हो गये हैं ॥ १ ॥ नीरस वृक्षोंमें भी बहुत अधिकतासे सरस फूल-फल लगने लगे हैं तथा अनेकों प्रकारके कन्द, मूल और अंकुर अपने स्वादसे अमृतको लज्जित करते हैं ॥ २ ॥ मलयवायु, हंस, भ्रमर, मयूर और कोकिलोंके समूह तथा प्रसन्नचित्त मृग और पक्षी आपसका विषम वैर त्यागकर विहार करते रहते हैं ॥ ३ ॥ दिनमें सूर्य अनुकूल

रहता है और रात्रिमें चन्द्रमा स्त्रियोंको प्रिय जान पड़ता है, सखियोंसे ऐसी बातें सुनकर सीताजी प्रसन्न होकर आदरपूर्वक उनकी सराहना करती हैं ॥ ४ ॥ वनमें ऐसा आनन्द-मंगल है कि देखते ही चित्तको चुरा लेता है; परन्तु रामचन्द्रजीके बिना सीताजीको वन सुखदायक है—इसे तुलसीदास किस प्रकार गाकर कह सकता है ? ॥ ५ ॥

लव-कुश-जन्म

[३४]

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ ।
पूत जाये जानकी द्वै, मुनिबधू उठीं गाइ ॥ १ ॥
हरषि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ ।
भुवन, कानन, आस्रमनि रहे मोद-मंगल छाइ ॥ २ ॥
तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे बिधिबस आइ ।
माँगि मुनिसों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ ॥ ३ ॥
मातु-मौसी-बहिनिहूतें, सासुतें अधिकाइ ।
करहिं तापस-तीय-तनया सीय-हित चित लाइ ॥ ४ ॥
किए बिधि-ब्यवहार मुनिबर बिप्रबृंद बोलाइ ।
कहत सब, रिषिकृपाको फल भयो आजु अघाइ ॥ ५ ॥
सुरुष ऋषि, सुख सुतनिको, सिय-सुखद सकल सहाइ ।
सूल राम-सनेहको तुलसी न जियतें जाइ ॥ ६ ॥

जानकीजीने शुभ दिन, शुभ घड़ी, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें दो बालकोंको जन्म दिया। उस समय मुनि-पत्नियाँ गान करने लगीं ॥ १ ॥ देवता लोग प्रसन्न होकर गहगहे बाजे बजाते हुए फूलोंकी

वर्षा करने लगे तथा सम्पूर्ण लोक, वन और आश्रमोंमें आनन्द-मंगल छा गये ॥२॥ उसी रात्रिको दैवयोगसे वहाँ शत्रुघ्नजी आकर टिक गये। यह सुख पाकर वे प्रातःकाल ही मुनिसे विदा माँगकर चले गये ॥ ३ ॥ मुनियोंकी स्त्रियाँ और कन्याएँ सीताजीकी माता, मौसी, सासु और बहिनोंसे भी बढ़कर बहुत मन लगाकर सेवा करती थीं ॥ ४ ॥ मुनिवर वाल्मीकिजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर सब प्रकारके विधि और व्यवहार किये। सब लोग यही कहते हैं कि आज ऋषिकृपाका पूरा-पूरा फल हुआ है ॥ ५ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजीको ऋषिकी अनुकूलता और पुत्रसुख आदि तो सभी सुखदायक और सहायक हो रहे हैं, किन्तु उनके हृदयसे भगवान् रामके स्नेहका शूल नहीं निकलता ॥ ६ ॥

[३५]

मुनिबर करि छठी कीन्हीं बारहेंकी रीति।
बन-बसन पहिराइ तापस, तोषि पोषे प्रीति ॥ १ ॥
नामकरन सुअन्नप्रासन बेद बाँधी नीति।
समय सब रिषिराज करत समाज साज समीति ॥ २ ॥
बाल लालहिं, कहहिं 'करिहैं राज सब जग जीति'।
राम-सिय-सुत, गुर-अनुग्रह, उचित, अचल प्रतीति ॥ ३ ॥
निरखि बाल-बिनोद तुलसी जात बासर बीति।
पिय-चरित सिय-चित-चितेरो लिखत नित हित-भीति ॥ ४ ॥

मुनिवर वाल्मीकिने बालकोंकी छठी करके बारहवें दिनकी रीति की। उस दिन उन्होंने तपस्वियोंको वनके वस्त्र पहनाकर प्रीति-पूर्वक सन्तुष्ट किया ॥ १ ॥ वेदने जो नामकरण और अन्नप्राशन

आदिका नियम बाँधा है, ऋषिराज वाल्मीकिजीने समाज और साजको जोड़कर समय-समयपर वे सभी कृत्य किये ॥ २ ॥ बालकोंको खिलाते समय वे कहते थे, 'ये तो सारे जगत्को जीतकर राज्य करेंगे।' वे बालक प्रथम तो श्रीराम और सीताके पुत्र हैं, दूसरे उनपर गुरुजीकी भी खूब कृपा है; इसलिये उनके लिये यह उचित ही है और सब लोगोंको भी यही विश्वास होता था ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजीका दिन तो बालकोंके चरित्र देखनेमें निकल जाता था, तथापि उनका चित्तरूप चित्रकार प्रेमरूप भित्तिपर प्रियतमके चरित्र चित्रण करता रहता था ॥ ४ ॥

[३६]

बालक सीयके बिहरत मुदित-मन दोउ भाइ।
नाम लव-कुस राम-सिय अनुहरति सुंदरताइ ॥ १ ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना, ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्हके बालबृंद बोलाइ ॥ २ ॥
भूप-भूषन-बसन-बाहन, राज-साज सजाइ।
बरम-चरम, कृपान-सर, धनु-तून लेत बनाइ ॥ ३ ॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात, सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥ ४ ॥

सीताजीके बालक दोनों भाई प्रसन्नचित्तसे वनमें खेलते फिरते हैं। उनके नाम लव और कुश हैं; वे सुन्दरतामें भगवान् राम और सीताजीके ही समान हैं ॥ १ ॥ वाल्मीकि मुनि जब उन्हें मुनिबालकोंवाले खिलौने देते हैं तो वे उन्हें लेकर छिपाकर रख देते हैं। वे

बहुत-से बालकोंको बुलाकर राजकुमारोंके-से खेल खेलते हैं ॥ २ ॥ वे राजाओंके-से आभूषण, वस्त्र, वाहन और राज-सामग्री सजाते हैं तथा कवच, ढाल, तलवार, बाण, धनुष और तरकस भी बना लेते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, सीताजी पतिके वियोगमें तो दुखी हैं किन्तु पुत्रसुख पाकर प्रसन्न भी हैं; जिस प्रकार अग्निपर रक्खा हुआ दूध उफनने लगता है परन्तु जलके छींटे लगते ही फिर बैठ जाता है ॥ ४ ॥

[३७]

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलों बात मातुसों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥ १ ॥
मानी राम अधिक जननीतें, जननिहु गँस न गही।
सीय-लषन-रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही ॥ २ ॥
लोक-बेद-मरजाद दोष-गुन-गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही ॥ ३ ॥

कैकेयी जबतक जीवित रही तबतक भरतजीने भूलकर भी अपनी मातासे मुँह खोलकर बात नहीं की ॥ १ ॥ किन्तु रामचन्द्रजीने उसे अपनी मातासे भी बढ़कर माना और माता कौसल्याने भी उससे किसी प्रकारका मनमुटाव नहीं रक्खा। रामचन्द्रजीका रुख देखकर सीता, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न—इन सबने भी उसका निर्वाह किया ॥ २ ॥ तुलसीदासजी कहते हैं, भरतजीने तो राम-प्रेमको ही सुन और समझकर उसीकी रक्षा की। उन्होंने लोक या वेदकी मर्यादा अथवा गुण-दोषकी गतिकी ओर न तो कभी चित्त ही लगाया और न दृष्टिपात ही किया ॥ ३ ॥

रामचरितका उल्लेख

राग रामकली

[३८]

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधवासी ।
अति उदार अवतार मनुज-वपु धरे ब्रह्म अज अविनासी ॥ १ ॥
प्रथम ताड़का हति, सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी ।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति विप्रनारि तारी ॥ २ ॥
सब भूपनको गरब हर्‍यो, भंज्यो संभु-चाप भारी ।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ॥ ३ ॥
तात-बचन तजि राज-काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‍यो ।
एक नयन कीन्हों सुरपतिसुत, बधि बिराध रिषि-सोक हर्‍यो ॥ ४ ॥
पंचबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं ।
खर-दूषन संहारि कपटमृग-गीधराज कहँ गति दीन्हीं ॥ ५ ॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मार्‍यो ।
बानर-रीछ सहाय, अनुज सँग सिंधु बाँधि जस बिस्तार्‍यो ॥ ६ ॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टार्‍यो ।
परमसाधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सार्‍यो ॥ ७ ॥
सीता अरु लछिमन सँग लीन्हें औरहु जिते दास आए ।
नगर निकट बिमान आए, सब नर-नारी देखन धाए ॥ ८ ॥
सिव-बिरंचि, सुक-नारदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी ।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी ॥ ९ ॥

मिले भरत, जननी, गुर, परिजन, चाहत परम अनंद भरे।
दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥१०॥
बेद-पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो।
तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो ॥११॥

हे रघुनाथजी ! आप परम उदार और अवताररूपसे मनुष्यदेह धारण किये अजन्मा और अविनाशी परब्रह्म ही हैं। आपके पवित्र चरित्रोंको समस्त अयोध्यावासी इस प्रकार गाते हैं—॥ १ ॥ विप्र-हितकारी भगवान् रामने पहले ताडकाको मार सुबाहुका वध करके विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा की; फिर शापके कारण शिलारूप अहल्याको बहुत दुःखी देखकर उसका उद्धार किया ॥ २ ॥ जनकपुरमें शिवजीका भारी धनुष तोड़कर सब राजाओंका गर्व दूर किया; फिर सीताजीके सहित घरको लौटते समय परशुरामजीका मान मर्दन किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर पिताजीके वचनसे राज्य त्यागकर देवताओंका कार्य करनेके लिये मुनिवेष धारणकर चित्रकूट-पर्वतपर रहे। वहाँ इन्द्रके पुत्र जयन्तको एक नेत्रवाला बनाया तथा विराधका वध करके ऋषियोंका शोक दूर किया ॥ ४ ॥ फिर रामचन्द्रजीने पञ्चवटीको पवित्र कर शूर्पणखाको कुरूप किया तथा खर, दूषण और मारीचको मारकर जटायुको शुभ गति दी ॥ ५ ॥ वहाँसे चलकर कबन्धका वध किया तथा सुग्रीवसे मित्रता कर तालवृक्षोंको वेधकर बालिका वध किया। फिर रीछ और वानरोंकी सहायतासे भाई लक्ष्मणके सहित

समुद्रपर पुल बाँधकर अपना सुयश फैलाया ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् रावणको उसके कुटुम्ब और पुत्रोंके सहित मारकर देवताओंका सारा दुःख दूर किया और अपने हृदयमें विभीषणको अत्यन्त साधु जान लंकापुरीमें उसका राज्याभिषेक किया ॥ ७ ॥ फिर सीता, लक्ष्मण और जितने सेवक साथमें आये थे उन सबको संग लेकर विमानपर अयोध्यापुरीके निकट आये; उस समय सब स्त्री-पुरुष भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये दौड़े गये ॥ ८ ॥ तब चौदहों लोकोंके सम्पूर्ण चराचर प्राणी आनन्दित हो गये तथा शिव, ब्रह्मा, शुकदेव और नारदादि मुनिगण विमल वाक्योंसे स्तुति करते हुए भगवान् रामकी राजधानी अयोध्यापुरीमें आये ॥ ९ ॥ उस समय रामदर्शनके लिये लालायित भरतजी, सब माताएँ, गुरुजी और परिवारके लोग अति आनन्दमें भरकर मिले। उनके दुःसह वियोगजनित दारुण दुःख भगवान् रामके चरण देखते ही विस्मृत हो गये ॥ १० ॥ तब वसिष्ठजीने वेद और पुराणसे विचारकर शुभ लग्नमें भगवान्‌का राज्याभिषेक किया। उसी समय तुलसीदासने अपने हृदयमें सुअवसर जानकर प्रभुसे भक्तिका दान माँग लिया ॥ ११ ॥

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

भाषाटीकासहित संस्कृतशास्त्रग्रन्थ

श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य–सरल हिन्दी-अनुवादसहित, इसमें मूल भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है; श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है तथा अन्तमें गीतामें आये हुए हरेक शब्दोंकी पूरी सूची दी गयी है। साइज २२×२९ आठपेजी, पृष्ठ ५१९, ३ चित्र, मू० साधारण जिल्द २॥) बढ़िया जिल्द २॥।)

श्रीविष्णुपुराण–८ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, पृष्ठ ५४८, मू० साधारण जिल्द २॥) बढ़िया जि० २॥।)

अध्यात्मरामायण–सातों काण्ड, मूल और अर्थसहित, ८ सुन्दर चित्र, मू० साधारण जिल्द १॥।) बढ़िया जिल्द २)

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध–मूल और अर्थसहित, सचित्र पृष्ठ ४२०, मू० ॥।) स० १)

श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य–हिन्दी-अनुवादसहित, नित्य पाठके स्तोत्रोंमें विष्णुसहस्रनामका बहुत प्रचार है। मूल्य ॥=) बहुत ही सुलभ रक्खा गया है।

विवेक-चूडामणि–मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित, सचित्र, मू० ।≋) स० ॥=)

श्रुति-रत्नावली–प्रधान-प्रधान श्रुतियोंका अर्थसहित संग्रह, पृष्ठ २८४, मू० ॥)

प्रबोध-सुधाकर–इस छोटे-से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थमें विषय-भोगोंकी तुच्छता दिखाते हुए आत्म-सिद्धिके उपाय बताये गये हैं। सचित्र, पृष्ठ ८०, मूल्य ≋)॥

अपरोक्षानुभूति–वेदान्तका छोटा-सा ग्रन्थ है। सचित्र, मू०=)॥

रामगीता–मूल तथा अर्थसहित, मू०)॥। स० –)॥

प्रश्नोत्तरी–मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित, मू०)॥

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

भक्तोंके चरित्र

भागवतरत्न प्रह्लाद (८ चित्र, ३४० पृष्ठ) मू० १) स० १।)

देवर्षि नारद (५ चित्र, २३४ पृष्ठ) ।॥)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (सचित्र)
- खण्ड १, ।॥=) सजिल्द १=)
- खण्ड २, १=) सजिल्द १।=)
- खण्ड ३, १) सजिल्द १।)
- खण्ड ४, प्रायः छप गया है।
- खण्ड ५, ,, ।

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र (सचित्र) ।॥-)

श्रीएकनाथ-चरित्र (सचित्र) ॥)

श्रीरामकृष्ण परमहंस (३ चित्र) ।≡)

भक्त-भारती (७ चित्र) ।≡)

भक्त बालक (५ चित्र) ।-)

भक्त नारी (६ चित्र) ।-)

भक्त-पञ्चरत्न (५ चित्र) ।-)

आदर्श भक्त (७ चित्र) ।-)

भक्त-चन्द्रिका (७ चित्र) ।-)

भक्त-सप्तरत्न (७ चित्र) ।-)

भक्त-कुसुम (६ चित्र) ।-)

प्रेमी भक्त (६ चित्र) ।-)

यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ (३ चित्र) ।)

एक सन्तका अनुभव -)

श्रीतुकाराम-चरित्र छप रहा है।

कवितामय पुस्तकें

प्रेम-योग—ले० श्रीवियोगी हरिजी, प्रेमपर अद्भुत ग्रन्थ, १।) स० १॥)

श्रीकृष्ण-विज्ञान—श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद (सचित्र) मू० ॥।) सजिल्द १)

विनय-पत्रिका—श्रीतुलसीदास-जीकृत, मूल भजन और हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, मूल्य १) सजिल्द १।)

भक्त-भारती—सात चित्रोंसहित, सात भक्तोंकी सरस कथाएँ, मूल्य ।≡) सजिल्द ॥=)

श्रुतिकी टेर (सचित्र) ... ।)

वेदान्त-छन्दावली (सचित्र) =)॥

मनन-माला (सचित्र) ≠)॥

भजन-संग्रह प्रथम भाग ... =)
- ,, द्वितीय भाग ... =)
- ,, तृतीय भाग ... =)
- ,, चतुर्थ भाग ... =)
- ,, पञ्चम भाग (पत्र-पुष्प) =)

हनुमानबाहुक सचित्र-सटीक -)॥

हरेरामभजन दो माला ...)॥।

सीतारामभजन ...)॥

श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन ...)।

गजलगीता आधा पैसा

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर